राजस्थान में स्वामी विवेकानन्द

(राजस्थान सरकार से सहायता प्राप्त)

(स्वामी विवेकानन्द की एक सौ छब्बीसवीं
जयन्ती के अवसर पर प्रकाशित)

प्राकृत भारती पुष्प : ५६

प० झाबरमल्ल शर्मा

प्रकाशक भीलवाडा संस्कृति प्रकाशन, भीलवाडा भवन ४०-४१,
कम्यूनिटी सेन्टर, न्यू फ्रेंडस कालोनी, नई दिल्ली-११००६५
प्राकृत भारती अकादमी
३८२६, यति श्यामलालजी का उपासरा,
मोतीसिंह भौमिया का रास्ता, जौहरी बाजार,
जयपुर-३०२००३
प्रथम सस्करण : १९८९
सम्पादन एव © श्यामसुन्दर शर्मा
मूल्य पचहत्तर रुपये
आवरण . सुकुमार चटर्जी
मुद्रक जितेन्द्र प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-११००३२
सौजन्य · गौरव गाथा सगम
१/४७९९ बलबीर नगर विस्तार,
शाहदरा दिल्ली-११००३२

RAJASTHAN ME SWAMI VIVEKANAND
by JHABARMALL SHARMA Price Rs. ७५ ००

विषय-सूची

चित्र-सूची

प्राक्कथन

डा० शंकरदयाल शर्मा, भारत के उपराष्ट्रपति

उन्नीसवी सदी के मध्य मे हमारे यहा पुनर्जागरण की जो वायु वही थी, स्वामी विवेकानन्द उसके पुरोधा थे। भारतीय चिन्तन के इतिहास मे विवेकानन्द इसलिए विशिष्ट हैं, क्योकि उन्होंने आधुनिक भारत की कल्पना की। उनका यह चिन्तन वायवीय नही था, वल्कि तर्काश्रित था। धर्म मे गहरी आस्था के बावजूद वे तर्क के समर्थक थे। वे अधविश्वास तथा दैव प्रेरित ज्ञान के विरोधी थे। उनका मानना था कि कोई भी सच्ची प्रेरणा तर्क का खण्डन नही करती। जहा वह इसका खण्डन करती है वह प्रेरणा नही है। इसलिए उन्होने अधविश्वास, धार्मिक कर्मकाड और सामाजिक कुरीतियो का जवर्दस्त विरोध किया। उन्होने धर्म के क्षेत्र मे तर्क की उपयोगिता को स्थापित करके आधुनिक भारत के निर्माण की भूमिका प्रस्तुत की।

स्वामी विवेकानन्द की सम्पूर्ण चिंता का केन्द्र बिन्दु मनुष्य था। ईश्वर का निवास झोपडियो और मछुओ के घरो मे बताते हुए उन्होने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि मनुष्य एकमात्र देवता हैं, जिसमे मैं यकीन करता हू। इसी मनुष्य की सेवा मे वे ईश्वर-भक्ति का रूप देखते थे। वे मनुष्य मे ही ईश्वर को ढूढते थे। उन्होने तत्कालीन भारत को बहुत नजदीक से महसूस किया था। उनका विश्वास था कि देश मे गरीबी की समस्या के समाधान के बिना धर्म की स्थापना नही की जा सकती। उनका धर्म समाज सापेक्ष था, काल सापेक्ष था। वह उनकी बहुत वडी देन थी।

स्वामीजी की एक देन यह भी थी कि उन्होंने भारतीयो के सोये पौरुष और सकल्प को जगाया। एक चेतनाहीन समाज मे उन्होने स्वाभिमान और स्वदेशाभिमान के वीज बोए। सन् १८९३ मे शिकागो मे उनके तेजस्वी उद्बोधन ने भारत की प्रतिष्ठा का प्रभाव बढाया, भारतीयो मे आत्मविश्वास की भावना वढाई। उनके समय मे देश गुलाम था। इसलिए उन्होने बताया कि एक गुलाम देश का धर्म केवल यही हो सकता है कि अपने अन्दर के पौरुष को जागृत कीजिए, और उसके बल से देश के लुटेरो, बाहरी आक्रमणकारियो को अपने देश से खदेड

दीजिए। उनके निधन के तीन वर्षों के वाद ही वगाल मे विद्रोह हुआ। वाद मे तिलक-गाधी के आदोलन हुए। क्रातिकारियो का आविर्भाव हुआ और इस प्रकार समाज की सामूहिक चेतना आन्दोलित हुई। यह कहना गलत नही होगा कि उसकी पृष्ठभूमि स्वामीजी ने तैयार की थी।

महान व्यक्तियो के बारे मे विस्तार से जानने की आकाक्षा सवमे होती है। मुझे यह देखकर अच्छा लगा कि स्व० झावरमल्ल शर्माजी द्वारा लिखित इस पुस्तक का प्रकाशन किया गया है। इसमे तथ्यो को विस्तार के साथ सप्रणाम प्रस्तुत किया गया है। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तित्व और चिन्तन पर और भी प्रकाश डाल सकेगी।

उपराष्ट्रपति निवास
नई दिल्ली
४-२-१९८९

शंकर दयाल शर्मा

भूमिका

स्वर्गीय पण्डित झावरमल्लजी शर्मा से मेरा परिचय बरसो पुराना रहा है। उनके जीवनकाल मे उनसे लगभग 5-6 बार मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। वे विवेकानन्द के भाव से इतना भरे हुए थे और विवेकानन्द-राग के ऐसे भाव-भरे गवैये थे कि इन सभी मुलाकातो मे वे बस विवेकानन्द की ही चर्चा करते रहे। उनसे घण्टो स्वामी विवेकानन्द के सम्बन्ध मे बातें की जा सकती थी। जब मैं उनके देहावसान के लगभग तीन वर्ष पूर्व उनसे जयपुर मे मिला था, तो उन्होने मुझे बतलाया था कि वे स्वामी विवेकानन्द पर और भी काम कर रहे हैं, तथा एक नया ग्रन्थ लिखने का उनका मानस है, जिसके लिए वे सामग्री इकट्ठी कर रहे हैं। उनके द्वारा लिखित 'खेतडी-नरेश और स्वामी विवेकानन्द' नामक पुस्तक को मैंने पढा था। वह पुस्तक मुझे अच्छी लगी थी। फिर, श्री रामकृष्णदेव के एक अन्तरग सन्यासी शिष्य, स्वामी अखण्डानन्दजी ने उस पुस्तक की भूमिका लिखी थी। अत स्वाभाविक था कि मैं पण्डित झावरमल्लजी से आग्रह करता कि वे शीघ्र ही यह दूसरी रचना भी तैयार कर लें।

पर काल की गति को कौन रोक सकता है? पण्डितजी यह दूसरी पुस्तक लिखने की अपनी कामना पूरी न कर सके। पर उन्होने सामग्री तो तैयार कर ही ली थी। जब उनके पौत्र श्री श्यामसुन्दर शर्मा से मेरा परिचय हुआ, तो मैंने उनसे आग्रह किया कि वे अपने स्व० दादाजी द्वारा छोड़े गये अधूरे काम को पूरा करें।

आज जब श्यामसुन्दरजी ने अपूर्ण कार्य को पूर्ण करते हुए पाण्डुलिपि मेरे हाथ मे रखी, तो मैंने विशेष प्रसन्नता का अनुभव किया और उनके अनुरोध करने पर यह 'भूमिका' लिखने के लिए भी सहर्ष सहमत हो गया।

ग्रन्थ का नाम 'राजस्थान मे स्वामी विवेकानन्द 'विविदिषानन्द से विवेकानन्द' रखा गया है। यह एक सार्थक नाम है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि वह यह बताने के साथ कि स्वामीजी ने अपना नाम विविदिषानन्द से विवेकानन्द कैसे रखा स्वामीजी के राजस्थान-भ्रमण की कहानी भी विस्तार से चित्रित करता है। ग्रन्थ की अधिकाश सामग्री, जैसा कि हम कह चुके हैं, स्व०

पण्डित झाबरमल्लजी द्वारा तैयार करके रख दी गयी थी, पर श्री श्यामसुन्दर शर्मा ने उसे इस प्रकार सजाया और सँवारा है कि ऐसा नही लगता कि ग्रन्थ को दो व्यक्तियो ने मिलकर लिखा है। वस्तुत. श्यामसुन्दरजी ने वडी खूबी के साथ अपने दायित्व का निर्वाह किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे स्वामीजी के सुसवाद, भक्त, विचरण स्थल इत्यादि का विवरण भी प्रस्तुत किया गया है। फिर कई ऐसे पत्र भी उसमे समाविष्ट किये गये हैं, जो स्वामी विवेकानन्द और खेतडी के महाराजा अजितसिह से सम्बन्धित हैं। साथ ही स्वामीजी का खेतडी और राजस्थान के जिन व्यक्तियो से विशेष सम्वन्ध था, उनके सम्बन्ध मे सक्षिप्त टिप्पणी भी दे दी गयी है। इस सबसे ग्रन्थ की उपादेयता वढ गयी है।

मैं श्री श्यामसुन्दर शर्मा को उनके इस सुन्दर प्रयास के लिए बधाई देता हूँ। मुझे विश्वास है कि सुधी पाठको ने जिस स्नेह और आतुरता से 'खेतडी-नरेश और स्वामी विवेकानन्द' (सन् १९२७ मे प्रकाशित) ग्रन्थ को अपनाया था, उसी स्नेह और आतुरता से वे प्रस्तुत ग्रन्थ को भी अपनाएगे।

—स्वामी आत्मानन्द
अध्यक्ष : रामकृष्ण मिशन
रायपुर (मध्य प्रदेश)

प्रवास . रामकृष्ण मिशन, नई दिल्ली
दिनाक २ दिसम्बर, १९८८

प्रकाशकीय

स्वामी विवेकानन्द भारत के तेज थे। उनके ओजस्व ने भारत को चकाचौंध कर दिया। एक सदी पूर्व परतत्र भारत मे उन्होंने चेतना जगाई और आत्म-विश्वास का मंत्र फूंका। उन्होंने धर्म को वास्तविक स्वरूप दिया और आत्म-कल्याण के साथ सेवा से जुडा 'मातृदेवो भव', 'पितृदेवो भव', 'आचार्यदेवो भव', 'दरिद्रदेवो भव' का नारा दिया जो उनकी दूरदृष्टि का परिचायक और आज भी अधिक सामयिक है। महिलाओ के उत्थान के लिए उन्होंने उद्घोष किया। सर्वधर्म समन्वय को क्रियान्वित किया। युवाओ मे राष्ट्रीय चेतना जगाई। देश और युवाओ के लिए उनका बीज-मत्र था "जागो, उठो और तब तक मत रुको जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो।" एक कर्मयोगी ने सारे देश को कर्मयोग के पथ पर चलाने का प्रयास किया।

स्वामी विवेकानन्द का राजस्थान से विशेष सम्बन्ध रहा है। उनके प्रारभिक सन्यासकाल का कुछ अश राजस्थान मे भी बीता। उन्होने अपने छोटे-से जीवन मे राजस्थान की तीन यात्राएँ की। खेतडी नरेश से उनका सम्बन्ध सर्वविदित है। उनका नामकरण भी राजस्थान मे हुआ, विविदिषानन्द से विवेकानन्द वे राजस्थान मे ही बने। उनकी अमेरिका यात्रा, जिसने उनको विश्वविख्यात कर दिया, की व्यवस्था भी राजस्थान से ही हुई। यह राजस्थान का सौभाग्य था, उनके लोकोपकारी कार्य—जैसे शिक्षा व सेवा को रामकृष्ण मिशन-जैसी जनकल्याणकारी सस्था के माध्यम से फैलाने का सर्वप्रथम प्रयास राजस्थान से ही शुरू हुआ। इसके लिए उन्होंने अपने सहयोगी कार्यकर्त्ता एव गुरुभाई स्वामी अखण्डानन्दजी को राजस्थान मे इस कार्य हेतु प्रोत्साहित किया।

ऐसे महान एव युगपुरुष के अल्पज्ञात अध्याय को प्रकाश मे लाना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझकर 'प्राकृत भारती अकादमी' एव 'भीलवाडा संस्कृति प्रकाशन' ने इस पुस्तक का प्रकाशन किया है। यहा यह कहना भी उपयुक्त होगा कि 'प्राकृत भारती अकादमी' एव 'भीलवाडा सस्कृति प्रकाशन' भारतीय संस्कृति के प्रस्तुतीकरण के प्रति समर्पित रहे हैं। भारतीय सस्कृति के विभिन्न पहलुओ पर दोनो सस्थाओ ने कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं जो सौभाग्यवश राष्ट्रीय एव अतर्राष्ट्रीय ख्याति भी प्राप्त कर चुकी हैं। इन दोनो सस्थाओ का प्रमुख उद्देश्य यह है कि आधुनिक भारत अपनी सस्कृति के विशद एव विशुद्ध

रूप का अवलोकन कर सके और आधुनिक विचार तथा कार्यप्रणाली से भारतीय संस्कृति को उजागर करते हुए प्रगति पथ पर अग्रसर हो सके। जापान इत्यादि कई देशो ने आज यह सिद्ध कर दिया है कि बिना सांस्कृतिक धरोहर के कोई देश और समाज आगे नहीं बढ सकता।

इस पुस्तक के प्रकाशन का तात्कालिक कारण स्वामी विवेकानन्द की राजस्थान से सम्बन्धित एक विशेष घटना रही है। स्वामी विवेकानन्द संन्यासी होने के नाते खेतड़ी नरेश श्री अजितसिंहजी के दरबार मे नर्तकी की उपस्थिति मे बैठने को तैयार नही थे, पर नर्तकी और खेतडी नरेश के आग्रह पर कि 'कम-से-कम एक भजन तो सुन लें' वे उस आग्रह को टाल न सके और सभा मे बैठ गये। नर्तकी ने सूरदास का भजन—'प्रभु मेरे अवगुन चित न धरो, समदरसी प्रभु नाम तिहारो ⋯'सुनाया। स्वामीजी को यह आभास हुआ कि नर्तकी ने उनके अहकार को चूर-चूर कर दिया और भेदभाव का विकार हटाने का इस भजन के माध्यम से प्रभावी उपदेश दिया। अपने अहकार पर उनको ग्लानि हुई और वे रो पडे। ज्ञानदात्री नर्तकी के प्रति आभार व्यक्त करने के लिए उन्होने उसके पैर छू लिये और उसे "माँ" सम्बोधित किया। नर्तकी भी यह भूल गई कि समाज उसको हेय दृष्टि से देखता है। और वह विवेकानन्दजी की वास्तविक माँ बन गई। फलत स्वतः ही उसने यह आशीर्वाद दे डाला—"जुग-जुग जिओ मेरे लाल!" उसका आशीर्वाद फलित हुआ और विश्वभर मे विवेकानन्दजी को ख्याति प्राप्त हुई और वे युगजीत हो गये।

प्रकाशकीय लिखनेवालो मे से एक (डी० आर० मेहता) ने यह घटना उसी स्थल पर पं० झाबरमल्लजी से सुनी। आज के इस युग मे समता की बात तो होती है पर उसे वास्तविक रूप से क्रियान्वित नही किया जा रहा है व भेद-भाव और अधिक बढता जा रहा है, इस प्रकार की अनुभूति सामयिक भी है और प्रेरणादायक भी।

स्वर्गीय प० झाबरमल्लजी शर्मा के प्रति भावसिक्त श्रद्धाजलि अर्पित करने का भी यह सुअवसर है, विशेष रूप से जबकि उनके शताब्दी वर्ष मे यह पुस्तक छप रही है।

प० श्याम सुन्दर शर्मा जिन्होने इस पुस्तक को यह स्वरूप देने और इसके प्रकाशन मे अथक प्रयास किया, उसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी है।

लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला
अध्यक्ष
भीलवाड़ा संस्कृति प्रकाशन, नयी दिल्ली
एवं प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर

डी० आर० मेहता
(सचिव)
प्राकृत भारती अकादमी,
जयपुर

कृति और कृतिकार

भारत की पुण्यभूमि ने अनेक ऐसे महापुरुषो को जन्म दिया है जिन्होंने अपने चरित्र, वैदुष्य, आचरण और महान् जीवनदर्शन से विश्व मे उत्कृष्ट स्थान पाया और देश की गरिमा को उज्ज्वल किया। ऐसे महापुरुषो मे एक हैं स्वामी विवेकानन्द। स्वामीजी का जन्म हुआ था वगभूमि मे, उनके अनुयायियो की बहुत वडी सख्या है दक्षिण भारत मे और उनका कीर्तिस्तभ—'स्वामी विवेकानन्द शैल' है कन्याकुमारी मे, पर उनके स्वयं के निर्माण मे राजस्थान का कितना हाथ है, यह बात उतनी सुज्ञात नही है, जितनी होनी चाहिए थी। प्रस्तुत कृति इसी दिशा मे एक वरेण्य लेखक का स्तुत्य प्रयास है।

स्वामी विवेकानन्द का जन्म-नाम था नरेन्द्र। रामकृष्ण परमहस से प्रभावित हुए और ले लिया सन्यास। भारत के अध्यात्म और गौरव को विश्व विदित बनाने का बीडा उठा लिया। पर यह कार्य था साधन-सापेक्ष। दासता की बेडियो मे जकडे शैक्षिक, सास्कृतिक दृष्टि से पिछडे और आर्थिक दृष्टि से अकिंचन बने भारत मे भावना होते हुए भी साधन जुटाना कठिन था। साधनो की तलाश मे नव संन्यासी पश्चिम दिशा मे चला—विविदिषानन्द बनकर। वह दिल्ली आया, मेरठ गया, यहा भटका, वहा भटका पर उसे साधनो की आशा दिखायी दी तो राजस्थान मे। जहा देसी राज्य थे। वहा के राजाओ मे कुछ धर्म के प्रति आस्थावान् थे और साधन-सपन्न भी। कदाचित् यही सोचकर स्वामी विविदिषानन्द आये राजस्थान मे। दिल्ली से निकटतम राज्य था अलवर का। वही प्रवेश किया विविदिषानन्द ने। स्वामीजी के व्यक्तित्व से 'वैदुष्य' से, आचरण से और उपदेश से अलवर के राजा-प्रजा सब प्रभावित हुए। अगला पडाव था जयपुर, जहा के प्रधान सेनापति हरीसिंह लाडखानी ने स्वामी को सिर माथे लिया। पर परिव्राजक तो परिव्रजन करता है, एक जगह टिकता नही। अगला पडाव था अजमेर और उससे अगला आबू। आबू मे उन्हें एक मुसलमान गुणग्राही भक्त मिले और उन्ही के माध्यम से साक्षात्कार हुआ खेतडी के राजा अजितसिंह से।

अजितसिंह को मानो अपने मार्गदर्शन के लिए एक गुरु की आवश्यकता थी और उसे मिल गये गुरु। गुरु को ऐसे साधन-सपन्न शिष्य की तलाश थी, जो उतने साधन जुटा दे, जितनो की आवश्यकता हो भारत की गरिमा को विश्वविदित करवाने के लिए। अजितसिंह की रियासत तो बहुत वडी न थी पर हृदय बहुत

बड़ा था। उसने स्वामीजी को अपना मार्गदर्शक चुन लिया और परिव्राजक को लगा कि खेतडी के प्रासाद विलास भूमि होते हुए भी तपस्वी की कुटिया बना सकते हैं। जो सन्यासी राजसभा मे वेश्या के सगीत का प्रस्ताव सुनते ही उबल पडा था, वही 'प्रभुजी मेरे अवगुण चित न धरो' की तान सुनते ही झूम उठा था और वेश्या के चरणो मे लेट गया था, 'माता-माता' पुकारता हुआ।

परिव्राजक ने खेतडी मे रहते हुए तपस्या की, मनन किया और स्थानीय पण्डित से व्याकरण का अध्ययन किया ताकि भारतीय महाग्रथो को समझने की पूरी क्षमता हो जाए और भारत के महान् ज्ञान का विश्व के सम्मुख उद्‌घाटन करने के लिए अपने पास यथेष्ट ज्ञान राशि संचित हो जाए। परिव्राजक तो परि-व्रजनशील होता है। खेतडी की भूमि मनोमोहक थी पर उसी से मोह जाना परिव्रजनशील को शोभा नही देता। उसने राजस्थान के मेवात अचल की यात्राएं पहले कर ली, अब शेखावाटी अचल की भी यात्राए कर डाली।

खेतडी मे रहते हुए विविदिषानन्द के जीवन मे एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया, नाम का। सन्यासी अब नरेन्द्र नही था, विविदिषानन्द था, पर बडा अट-पटा लगता था लोगो को यह नाम। अजितसिह को भी लगा। उसने पूछ ही लिया, "महाराज, यह नाम हमे तो अटपटा लगता है, क्यो ढो रहे हैं इसे।" सन्यासी बोला, "मैं जिज्ञासु हू, ज्ञान-पिपासु हू। विविदिषा का यही अर्थ है—जिज्ञासा, ज्ञान-पिपासा। इसे कैसे छोड दू।" राजा बोला, "हम शिष्यो को विश्वास है कि आप को विवेक प्राप्त हो चुका है, इसलिए हम आपके अनुयायी बनना चाहते हैं। हमारे विश्वास को आप बना रहने दीजिए। हमारी दृष्टि मे आप 'विवेक' की पराकाष्ठा पर पहुच चुके हैं। हम आपको 'विवेकानन्द' कहना चाहते हैं, कह लेने दीजिए।" सन्यासी ने अनुयायी का आग्रह मान लिया और बचपन का नरेन्द्र और सन्यासी विविदिषानन्द बन गया 'विवेकानन्द'।

विवेकानन्द को आवश्यक लगा कि वह अपने ज्ञान का आलोक व्यापक क्षेत्र मे प्रसारित करे। निकल पडा देशाटन करने। दक्षिण भारत भी गया। वहा स्वागत-सत्कार भी बहुत हुआ, शिष्यानुयायी भी बहुत बने। पर तभी सूचना मिली कि शिकागो मे विश्वधर्म सम्मेलन होगा। विवेकानन्द की इच्छा थी कि वहा हिन्दू धर्म का भी प्रतिनिधित्व हो। सभी का मत था कि उस सन्यासी से अधिक उपयुक्त प्रतिनिधि ढूढ़ना कठिन है। पर इतनी लबी यात्रा के लिए चाहिए बडी द्रव्य राशि। वह कैसे जुटे? तभी खेतडी नरेश के पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ था। राजा की इच्छा हुई कि बालक को स्वामी का आशीर्वाद मिले। राजा का प्रति-निधि स्वामीजी के पास गया और उसे खेतडी लाया। राजा को शिकागो यात्रा की समस्या ज्ञात हुई और उसने कर दी वह सब व्यवस्था, जो अपेक्षित थी। सपूर्ण विश्व जान सका कि भारत का धर्म-दर्शन क्या है, उसकी गरिमा-महिमा क्या है।

परिव्राजक ने स्वय यह स्वीकार किया है कि यदि उसे राजा अजितसिंह न मिला होता तो वह अपने छोटे से जीवन मे वह सब न कर पाता जो वस्तुत. कर सका। यह सर्व विदित है कि अजितसिंह का समागम तभी सभव हुआ जब सन्यासी राजस्थान आया। यो नरेन्द्र के विश्व विदित विवेकानन्द बनने मे राजस्थान की वहुत वडी भूमिका है। पर कितने लोग जानते थे इस रहस्य को ?

इस विषय पर प्रकाश डालनेवाली एक पुस्तक वहुत पहले लिखी थी स्वर्गीय प० झावरमल्ल शर्मा ने। पुस्तक का नाम था 'खेतडी नरेश और विवेकानन्द'। उसमे 'खेतडी' के साथ स्वामी के सवधो का तो विवेचन था पर स्वामी पूरे राजस्थान से किस प्रकार जुडा था, उस पर उतना विस्तार से प्रकाश नही डाला गया था। उस व्यापक क्षेत्र से सवधित पुस्तक भी लिख दी थी वयोवृद्ध शर्माजी ने, पर वह अव तक प्रकाश मे न आ सकी थी। वही कृति अब प्रकाश मे आ रही है, यह हर्ष की वात है।

जिस महामानव ने इस वरेण्य कृति की रचना की, उसका परिचय भी अपेक्षित है। पूरे एक शताब्द पूर्व खेतडी अचल के जसरापुर ग्राम मे पण्डित रामदयालु जी के घर एक बालक ने जन्म लिया। उसने पचानवे वर्ष का दीर्घ आयुष्य पाया था। यदि आज जीवित होता तो आगामी माघ मे शतक पूरा होता। उस महामानव का मर्त्य शरीर आज हमारे बीच नही है, पर यश शरीर तो है और युग-युग तक रहेगा। उसकी कृतिया उसके यश: शरीर को तब तक सुरक्षित रखेंगी जब तक भूतल पर सरिता-गिरि रहेगे—'यावत् स्थास्यन्तिगिरय सरितश्च महीतले।'

बालक झावरमल्ल का जन्म हुआ था राजस्थान के छोटे-से गाव मे, पर छोटी-सी आयु मे ही पिता के साथ कलकत्ते जाना पड गया। कलकत्ता तब भारत का सबसे बडा नगर था, आज भी है। कलकत्ते पहुचकर उस बालक ने भी कलकत्ते के अनुपात मे ही महानता पायी। शिक्षा-दीक्षा घर मे ही आरभ हुई थी, पर उसे परिपक्वता मिली आयुर्वेद पचानन महामहोपाध्याय गणनाथ सेन के टोले मे। बालक आयुर्वेद का विद्वान् बना। चिकित्सा वह व्यवसाय है जो अर्थ की दृष्टि से सर्वोपरि माना जाता है। पर वह युग था—स्वतत्रता सग्राम का। लोकमान्य तिलक का 'स्वाधीनता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है' का नारा देशभर मे गूज रहा था, कलकत्ते मे सबसे अधिक गूजता था। उस नारे ने महामानव को अर्थकरी वृत्ति (चिकित्सा) से नही चिपटने दिया। पत्रकारिता वह क्षेत्र था जिसमे प्रविष्ट होकर कोई भी देशभक्त अपने सकल्प को पूरा कर सकता था। इसीलिए चिकित्सक युवक ने उसी क्षेत्र को चुना और समाज सुधार तथा स्वतत्रता-सग्राम का बीडा एक साथ उठाया। वह बगभग विरोधी आन्दोलन का काल था और हर देश-भक्त स्वतत्रता की भावना से ओतप्रोत था। पण्डित झावरमल्ल शर्मा की वह

भावना उनके दैनिको के अग्रलेखो मे यत्र-तत्र सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। पत्र-कारिता का गुरु मिला बाबू हरिश्चद्र के समसामयिक 'भारतमित्र' और 'वैश्योपकारक' पत्र का जन्मदाता पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र।

पडितजी ने पत्रकारिता मे प्रवेश किया था कलकत्ते मे, पर वहा से पहुचे बबई—देश के पूर्वी कोने से पश्चिमी कोने मे। पर लगता है, उन्हे कलकत्ता अधिक प्रिय था। बबई से उसी दिशा मे चल पडे और पडाव हुआ नागपुर मे। पर वह अल्पकालिक पडाव ही था और वापस कलकत्ते आ गये। कलकत्ते मे 'कलकत्ता समाचार' का सपादन किया। उस दैनिक ने यथेष्ठ ख्याति अर्जित की और उसी से प्रभावित होकर लोग उनके पीछे पडे दिल्ली आने के लिए। 'कलकत्ता समाचार' ही 'हिन्दू ससार' नाम से दिल्ली से प्रकाशित होने लगा, वही सपादक के 'सपादक धर्म' को कसौटी पर कसने का अवसर आया। सपादक खरा उतरा। सपादन छोडना स्वीकार किया पर शासन से दबना नही। 'हिंदू ससार' के साथ पत्रकारिता समाप्त हुई।

पर पत्रकार रहते हुए एक शौक पाल लिया था—इतिहास-लेखन का, जिसे जीवनभर न छोड पाये। सीकर और खेतडी के इतिहास बहुत पहले प्रकाशित हो चुके थे, पर लेखक पिल पडा—शेखावाटी के विस्तृत इतिहास के लेखन मे। शेखा-वाटी के इतिहास की सग्रह की हुई प्रचुर सामग्री प्रतीक्षा मे है, उस दिन की जब उसे प्रकाश मे आने का अवसर मिलेगा। पर वह प्रकाश मे आयेगा, तो यह अवश्य ज्ञात होगा कि इतिहास की सही दिशा क्या है। वह इतिहास राजवशो और युद्धो का ही इतिहास नही है, सही अर्थ मे सास्कृतिक जीवन का इतिहास है। लेखक न तो क्षेत्र के विद्वानो-महात्माओ को भूला है, न व्यापारियो-व्यवसायियो को, न लोक जीवन को और न जन साधारण को।

साहित्य सेवा तो मानो पण्डितजी का व्रत ही था। सैकडो लेख प्रकाशित हुए हैं, जिनसे सस्कृत और हिंदी वाड्मय के अनेक अछूते पक्ष प्रकाश मे आये। हिंदी और सस्कृत आदि के भाषा रूप पर भी भरपूर प्रकाश डालने की क्षमता थी पण्डितजी मे। अनेक भाषाओ का ज्ञान उसमे साधक था।

लोकसाहित्य और लोकसस्कृति की ओर विद्वानो का ध्यान कम जाता है, पर पण्डितजी ने उसकी उपेक्षा नही की। अनेक लोक देवताओ के परिचय दिये। अनेक लोकोक्तियो के अर्थ स्पष्ट किये। अनेक लोक कवियो के साहित्य का सक-लन किया

अपने काल के महापुरुषो को श्रद्धा सुमन चढाने मे भी पण्डितजी पीछे नही थे। तिलक, महर्षि अरविंद, गाधी, रवि बाबू, बालमुकुद गुप्त, माधवप्रसाद मिश्र, गणेश-शकर विद्यार्थी, श्री चद्रधर शर्मा गुलेरी आदि के यश शरीर को चिरस्थायी बनाने की दिशा मे भी पण्डितजी ने बहुत काम किया। ऐसे ही महापुरुषो मे एक थे

स्वामी विवेकानन्द। उनकी गरिमा को पण्डितजी भूल नही सकते थे। उसीका परिणाम है यह पुस्तक। खेतडी के महलो को आश्रम के लिए समर्पित कराने मे भी पण्डितजी को को कम श्रम नही करना पडा था। पर उनके श्रम का ही परिणाम है कि खेतडी और स्वामीजी का अभेद्य सबंध हो गया है।

पण्डितजी खेतडी अचल के थे, अतः खेतडी के प्रति उनका मोह स्वाभाविक था। पर स्वामी विवेकानन्द राजस्थान के खेतडी क्षेत्र तक ही सीमित नही रहे थे। अन्य क्षेत्रो के प्रति भी उनकी आत्मीयता थी। पण्डितजी ने भी कृपणता नही दिखायी। सभी का यथोचित उल्लेख किया है। यही है इस पुस्तक की विशेषता।

स्वामीजी तो राजस्थान से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने बगाली वेशभूषा और अशन-पान की रीति तक को छोडा। सिर पर साफा और चोगा, उनके राजस्थान-प्रेम के नमूने हैं। वे भोजन करते थे तो राजस्थानी पद्धति से पट्टे पर बैठकर, पर प्रमुख बात यह कि उन्होने इस सत्य को उद्घाटित करने मे कोई सकोच नही किया कि 'यदि खेतडी का राजा न मिला होता तो मैं शायद वह सब नही कर पाता जो कर पाया।' यो 'विवेकानन्द' नाम पाने मे ही नही, 'विवेकानन्द' की गरिमा पाने मे भी राजस्थान का योगदान था। इसीलिए स्वामीजी ने अपने सहयोगियो-अखण्डानन्द आदि से भी यही आग्रह किया कि राजस्थान से जुड कर रहे।

ये सब बातें इस पुस्तक मे जिस महामानव ने जुटाईं, उन्हें सादर शत-शत प्रणाम। पण्डितजी के पौत्र श्यामसुन्दर शर्मा ने इस अपूर्णता को पूर्णता प्रदान की इसके लिए साधुवाद।

—काशीराम शर्मा

भूतपूर्व निदेशक, केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो

दो शब्द

श्रद्धेय स्वर्गीय पण्डित झावरमल्लजी शर्मा जन्मजात लेखक थे। उन्होंने विविध विषयो पर अनेक पुस्तकें लिखी जो समाज और देश मे समादृत हुईं। सामान्य पारिवारिक, आञ्चलिक और देशीय रीतिरिवाजो तथा मेलो-खेलो से लेकर गहन और गम्भीरतम आध्यात्मिक विषयो पर समान रूप से उनकी लेखनी चली। पत्रकार की स्थिति मे उन्होंने जो निर्भीक होकर तीखी टिप्पणिया और सम्पादकीय लेख लिखे वे सब अब भी सम्मान की वस्तु हैं। इतिहास-लेखन का उनको शौक था। तथ्यो की गहराई तक जाकर शोध करते थे। उनका मानना था कि केवल राजाओ की ही जन्म और मृत्यु की तिथियाँ लिखकर या युद्धो का वर्णन कर देने मात्र से इतिहास-लेखक के कर्त्तव्य की इतिश्री नही हो जाती, अपितु उसे तत्कालीन लोक-समाज-व्यापार-व्यवसाय और सास्कृतिक जीवन का भी स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करना चाहिए। इस प्रसग मे वे टटोल-टटोलकर राजाओ के ही नही, सामान्यजनो के भी निजी जीवन और सामाजिक आचार-व्यवहार सम्बन्धी सूचनाएँ एकत्र करते थे और फिर अपने निष्कर्ष प्रतिपादित करते थे। उनकी मान्यता थी कि सब मे बुराई-ही-बुराई नही होती, गुणो का चयन करना चाहिए। एक लहर चली थी कि राजा सभी दुर्गुणो के भडार होते हैं परन्तु पण्डितजी उनके चरित्रो मे से भी सद्‌गुण-रूपी रत्नो को ढूंढ लेते थे। खेतडी के राजा अजितसिहजी के स्पृहणीय गुणो को उजागर करना उन्ही का श्रेयस्कर कार्य था। इसी प्रकार लेखको, साहित्यकारो, लोक-नेताओ और साधु महात्माओ का गुण-वर्णन करने और उनकी स्मृतिरक्षा के उपायो मे भी उनकी विशेष रुचि थी। इनके जीवन की वे ऐसी घटनाएं सामने लाते थे जो आकर्षक, चमत्कारिक और तथ्योद्‌घाटक होती थी। विशिष्ट गुण-सम्पन्न व्यक्तियो को वे विभूतिमत्-सत्व कहा करते थे।

ऐसे ही अनुसन्धान मे बहुत पहले से ही उनका ध्यान स्वामी विवेकानन्द पर केन्द्रित हुआ था और वे अपने जीवन के अन्तिम समय तक प्रासगिक सामग्री का सकलन करते रहे। खेतडी मे रामकृष्ण मिशन का केन्द्र स्थापित कराने का श्रेय उन्ही को है। इसी केन्द्र से सम्बद्ध तत्कालीन स्वामी मुख्यानन्दजी को साथ बैठाकर वे स्वामी विवेकानन्दजी के जीवन प्रसगो, यात्राओ और उनके सहचरो के विषय मे टिप्पणियाँ लिखा करते थे। यह मैंने देखा है।

अपने गुरु स्वामी रामकृष्ण परमहस के प्रसाद से दिव्यदृष्टि प्राप्त करके

स्वामी विवेकानन्द (पूर्वनाम नरेन्द्रनाथ और विविदिषानन्द) ने भारतीय चिन्तन की गौरवमयी परम्परा को समझ लिया था और इसी मे विश्वकल्याण की सम्भावनाओ का दर्शन किया था। उन्होने सत्य सनातन भगवद् वाक्यो पर आधारित भारतीय आदर्शों का सन्देश ससार के कोने-कोने तक पहुँचाने का ही लक्ष्य अपनाया। कन्याकुमारी मे बैठकर स्वामीजी ने सच्चे ज्ञान की राशि को विकीर्ण करने का व्रत लिया। कन्याकुमारी वह स्थान है, जहाँ बैठी 'कुमारी' हिमालय पर बैठे शम्भु से एकात्मक भाव स्थापित करने मे तपोलीन है।

स्वामीजी ने प्राय: पूरे भारत मे भ्रमण किया परन्तु उनके मन को सबल मिला भारत के हृदय प्रदेश राजस्थान के मर्मस्थल खेतडी मे। सयोग यह हुआ कि अपने परिव्रजन प्रसग मे स्वामीजी आबू पहुँचे, जहाँ खेतडी के राजा से मिलन के मिष से विधाता ने 'योग्य से योग्य' का सयोजन किया। स्वामीजी दक्षिण मे गये। वहाँ उन्हें सूचना मिली कि अमेरिका के शिकागो नगर मे विश्वधर्म सम्मेलन हो रहा है। स्वामीजी का मन वहाँ जाकर भारतीय सत्य सनातन सन्देश प्रसारित करने का हुआ। परन्तु इतनी लम्बी यात्रा के लिए धन और अन्य सुविधा जुटाने की समस्य सामने आई। उसी समय विश्व नाटक सूत्रधार ने पटकथा को नया मोड दिया। राजा के पुत्र उत्पन्न हुआ, स्वामीजी को साग्रह आमन्त्रित किया गया, वे आए और उनकी अमेरिका यात्रा की पूर्णरूपेण व्यवस्था हो गई। स्वामीजी सम्मेलन मे भाग लेने शिकागो गये और वहाँ उन्होने ससार, भर से आए प्रतिनिधियो को बताया कि भारत का धर्म-दर्शन क्या है, उसका रहस्य क्या है। यही प्रसग स्वामीजी के वर्चस्व और भारत की प्रतिष्ठा बढने का कारण हुआ। स्वामीजी ने स्वय लिखा है कि यदि उन्हे राजा अजितसिंह न मिले होते तो वह अपने छोटे-से जीवन मे वह सब न कर पाते जो हो सका।

पण्डित झाबरमल्लजी शर्मा ने अपनी 'दिवगतो की स्मृति रक्षा' योजना मे स्वामी विवेकानन्द सम्बन्धी अनेक अनजाने तथ्यो को उजागर करके वैसा ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया है जैसा उन्होने 'राजस्थान ओर नेहरू परिवार' के सम्बन्धो को द्योतित करके किया था। इससे इस प्रदेश का मस्तक उन्नत हुआ है।

खेद है कि पण्डितजी के जीवनकाल मे यह पुस्तक प्रकाश मे नही आ पाई जो अब उनके ज्येष्ठ पौत्र श्री श्यामसुन्दर शर्मा के प्रयासो से पडितजी की जन्म-शताब्दी पर सामने आ रही है।

पुस्तक के चरित्र नायक स्वामी विवेकानन्द, राजा अजितसिंह और इसके लेखक स्व० प० झावरमल्ल शर्माजी सभी पुण्यश्लोक हैं, और इस कृति के साथ-वंदनीय हैं।

४ १२ ८८ **गोपालनारायण बहुरा**

पोथीखाना अधिकारी, सवाई मानसिंह (द्वितीय) म्यूजियम, जयपुर

अपनी बात

मेरे पितामह ने स्वामीजी के अनेक बार दर्शन किये। खेतडी मे दर्शन करने के अलावा कलकत्ता कार्यरत होने पर वहा दर्शन लाभ उठाया। खेतडी से स्वामीजी के सुसबधो की चर्चा अपने अग्रजो से सुनकर-पढकर स्वामीजी के विषय मे घटो चर्चा करते रहते थे।

स्वतत्रता प्राप्ति के बाद देशी राज्यो का विलीनीकरण होने पर खेतडी ठिकाने के सीनियर आफीसर (वरिष्ठतम अधिकारी) स्व० करमचद टडन ने मेरे पितामह से कहा कि ठिकाने के पुराने कागजात देख लें कोई महत्त्व के दस्तावेज, कागज, पत्रादि अज्ञानता मे नष्ट न हो जाए। उन्होंने पुराने कागजो को खोजना प्रारम्भ किया जिसमे स्वामीजी के उनके गुरु भाई स्वामी शिवानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी अखण्डानन्दजी, स्वामीजी के अनुज महेन्द्रनाथ दत्त के पत्र मिले। इन पत्रो के आधार पर स्वामी जी के जीवन पर प्रकाश डालने वाली अन्य सामग्री के आधार पर इतिहासविद पण्डितजी ने नवीन ग्रथ रचना का मन बना लिया। इसी के आधारपर स्वामी विवेकानन्द और राजस्थान के सुसबधो को चिरस्थायी बनाने के लिए तत्कालीन राजा सरदारसिंह(अजितसिंह के प्रपौत्र)को यह कहकर उत्साहित किया कि 'राजाओ का नाम लेनेवाला कोई नही रहेगा किंतु खेतडी सदैव जीवित रहेगी चूंकि स्वामी विवेकानन्द से जुडी हुई है। इसके लिए स्थायी महत्त्व का स्मारक बनना चाहिए। रामकृष्ण मिशन को राजप्रासाद दान करने (जहाँ स्वामीजी खेतडी प्रवासकाल मे ठहरते थे सर्व धर्म परिषद् मे भाग लेने के लिए जहाँ से शिकागो के लिए प्रस्थान किया) का सत्परामर्श दिया। स्वर्गीय करमचद टडन के मन बात भा गई थी, उन्होने राजाजी को इस कार्य के लिए प्रोत्साहित ही नही किया राजी भी किया। टडनजी के सामने ठिकानो के विलय के बाद नियमित खर्चे कम करने की समस्या थी। राजप्रासादो के रख-रखाव के लिए १०० नौकरो (कर्मचारियो) का खर्चा कम करने का प्रश्न भी उनके सामने था। अत स्वर्गीय पण्डित झाबरमल्ल शर्माजी को अपने प्रयासो मे सफलता मिली।

आज राजस्थान मे स्वामी विवेकानन्द पाठको की सेवा मे उपस्थित करते हुए विशेष प्रसन्नता हो रही है। यह मेरे पितामह स्व० पण्डित झाबरमल्ल शर्मा के 'शेखाबाटी इतिहास' के अन्वेषण कार्य का ही सुफल है। स्वामी विवेकानन्द के राजस्थानी भक्तो, विशेषकर उनके प्रमुख सहायक स्तम्भ खेतडी के राजा

अजितसिंह और स्वामीजी के पत्रो का आदान-प्रदान (सन् १८९२ से १९०० तक) बडा ही महत्त्वपूर्ण रहा है। मुन्शी जगमोहनलाल, लाला गोविन्द सहाय, प० शकरलाल शर्मा, स्वामी अखण्डानन्दजी को लिखे पत्र भी स्थायी महत्त्व के हैं।

शेखावाटी के इतिहास के लिए जब मेरे स्वर्गीय पितामह खोज पूर्ण सामग्री सन् १९१४ ई० से एकत्रित कर रहे थे तभी उनके स्वजनतुल्य, 'उसने कहा था' के अमर कथाकार प० श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के सुझाव पर राजा अजितसिंह का जीवन चरित्र लिखने का काम आरम्भ किया था। यह बात १९२० की है। इमी प्रसग मे राजाजी की पुत्री स्वर्गीय चन्द्रकुमारीजी ने अपने पिता का निज का वस्ता दिया जिसमे अनेक पत्र प्राप्त हुए थे। इसके अतिरिक्त स्वामीजी और राजा अजितसिंह के जीवन सबधी महत्त्वपूर्ण सामग्री खेतडी ठिकाने के कागजातो, वाकआत रजिस्टर (स्टेट की दैनिक डायरी) से मिली। इसके अतिरिक्त स्वामीजी के अनुरक्त भक्त मुन्शी जगमोहन लालजी, इतिहास प्रेमी ठाकुर भूरसिहजी शेखावत, स्वामीजी के सहकारी कार्यकर्ता स्वामी अखण्डानन्दजी, हरविलासजी शारदा, मुशी समर्थदानजी से मौखिक-लिखित सामग्री एकत्रित करते रहे थे। ये महानुभाव स्वामीजी के समसामयिक तो थे ही उनके घनिष्ठ सम्पर्क मे भी रहे थे। मेरे पितामह के नाम लिखे उक्त महापुरुषो के सख्या मे शतश. पत्र 'नेहरू मैमोरियल म्यूजियम एण्ड लाइब्रेरी (तीन मूर्ति भवन) में सुरक्षित हैं।

पण्डितजी और टडनजी (खेतडी ठिकाने) के पत्राचार (जो सुरक्षित हैं) इसके साक्षी हैं। तदनुसार खेतडी के प्रमुख महल दीवानखाना और जनानी ड्योढी (दो राजप्रासाद) रामकृष्ण मिशन को दान मे मिले। इस तरह उदारमना राजा सरदार सिंह को ५० लाख से अधिक मूल्य के राजप्रासाद मठ को दान करने के लिए पण्डितजी ने प्रोत्साहित किया।

अब पण्डितजी ने कलकत्ते मे पडाव डाला—मठ के कार्यकर्त्ताओ, को घेरा। खेतडी मे रामकृष्ण मिशन की शाखा स्थापित करने का प्रयत्न प्रारभ हुआ। मठ के पदाधिकारियो ने प्रारभ मे असमर्थता प्रकट की और तर्क दिया कि स्वामीजी ने अनेक स्थानो का भ्रमण किया था—हमारे लिए हर जगह केंद्र स्थापित करना सभव नही। पण्डितजी कब हार माननेवाले थे। रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष से अनुरोध किया कि महाराज अजितसिंहजी तो अनेक नही हुए जिन्होने स्वामीजी को सर्वधर्म परिषद मे भेजने की सुव्यवस्था करने के अतिरिक्त उनकी माँ और भाई के लिए १००/-मासिक खेतडी से भेजने की व्यवस्था भी की थी। इस तरह स्वामीजी को अपने स्वजनो की आर्थिक चिंता से मुक्त करने का श्रेय राजस्थान के इसी सपूत को जाता है जिसे स्वामीजी ने स्वयं स्वीकारा है।

दस्तावेजो के आधार पर इस तर्कपूर्ण विवेचना से रामकृष्ण मिशन के बेलूड मठ केन्द्रीय कार्यालय से इस आधार पर शाखा खोलने की स्वीकृति मिली कि 'रामकृष्ण मिशन' के सचिव का भार पण्डितजी सम्हालें तो केंद्र स्थापित किया जा सकता है। केंद्रीय कार्यालय से साधु(स्वामी) कार्यकर्त्ता नही मिलेंगे। अततोगत्वा पण्डितजी को ही खेतडी शाखा केंद्र का प्रथम सचिव पद सम्हालना पडा और बड़ी कुशलता से प्रबंध भार सम्हाला भी ऐसे गृहस्थी सन्यासी थे पण्डित झावरमल्ल शर्मा। यह कहानी है खेतडी मे मिशन स्थापित होने की। नाम भी रखा गया है 'विवेकानन्द स्मृति मदिर' (रामकृष्ण मिशन)।

'राजस्थान मे स्वामी विवेकानन्द' प्रबन्ध रचना के लिए सामग्री एकत्रित करनी प्रारंभ हुई, स्वामी मुख्यानन्दजी महाराज इसमे सहयोगी हुए—और साक्ष्य बने पण्डित गोपाल नारायणजी बहुरा (सवाई मान सिंह द्वितीय म्यूजियम जयपुर के पोथीखाना के प्रमुख, जिन्हे पण्डितजी अपने साहित्यिक अनुष्ठानो के दाहिने हाथ कहकर सबोधित किया करते थे)। कार्य प्रारम्भ हुआ किंतु 'मेरे मन कछु और है कर्त्ता के मन कछु और' वाली बात चरितार्थ हुई। सन् १९८३ मे पण्डितजी ने ९५ वर्ष की अवस्था मे ब्रह्मलोक की यात्रा की। काम मे ठहराव आ गया। भगवान् को यह काम मुझसे लेना था पण्डितजी के शताब्दी वर्ष मे इस शुभ यज्ञ की पूर्णाहुति करते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे स्वामीजी से सम्बद्ध जीवन प्रसगो, भाषणो, सवादो और कविताओ विशेषकर राजस्थान सम्बन्धी आदि के विषय मे ही अधिक से अधिक अवगति देने का प्रयत्न किया गया है। ग्रन्थ मे स्वामीजी के राजस्थानी भक्त, विचरण स्थल, विवेकानन्द नाम राजस्थान की देन के अतिरिक्त सर्वधर्म परिषद मे भेजने की सुव्यवस्था एव राजस्थान से ही शिकागो के लिए प्रस्थान, रामकृष्ण मिशन के राजस्थान मे सेवा और शिक्षा के कार्य का सर्वप्रथम शुभारम्भ करने की अवगति दी गई है। स्वामीजी के पारिवारिक सहयोगी एव शुभेच्छुक राजा अजितसिंह के सुकृत्यो पर भी प्रकाश डाला गया है। ग्रन्थ का कलेवर बढाने का प्रयास नही किया है फिर भी कोई विशेष घटना छूटने नही पाई है।

ग्रन्थ का सकलन कैसा हुआ है, इसका मूल्याकन तो पाठक ही करेंगे। परन्तु हम आशा करते हैं कि इससे स्वामीजी के पारिवारिक एव मैत्रीभाव से सबधित स्वामीजी के भक्तो अनुसधानकर्ताओ को कितने ही अज्ञात और स्वल्पज्ञात तथ्य प्राप्त हो सकेंगे और उनसे नये-नये स्थायी निष्कर्ष निकालने मे सहायता मिल सकेगी।

सयोग की बात है कि इसी वर्ष (१९८८ ई० मे) स्व० पण्डित झावरमल्लजी शर्मा का जन्मशती वर्ष है। इसी अवधि मे प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन भी उनके

'मन की बात' और उनकी स्मृति मे सहायक होगा और स्व० पण्डितजी की आत्मा को भी इससे सतोष होगा।

आशा करते हैं स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरु के आदर्शों पर चलकर युवा वर्ग को आध्यामिक विकास के माध्यम द्वारा विश्व बन्धुत्व के दर्शन का जो पाठ पढाया था पाठकगण उस पर चलेंगे 'आत्मनो मोक्षार्थंक जग द्वितीय च' तो हम अपना श्रम सार्थक मानेंगे।

पडितजी ने सामग्री एकत्रित की और सदैव उनकी यह इच्छा रही कि राजस्थान के गौरवमय अज्ञात अध्याय को प्रकाश मे आना चाहिए और इस सामग्री का सदुपयोग होना चाहिए। उनके मन मे राजस्थान के गौरवपूर्ण इतिहास की कडी के रूप मे इन उज्ज्वल धाराओ को प्रकाश मे लाने की बात बलवती रही। सामग्री एकत्रित थी ही, रूपरेखा भी बनी हुई थी। इस सत्कार्य मे जुटना पडा—आज इसका स्वरूप पाठको के सामने है।

बन्धुवर धनजय सिंह, डॉ. श्याम निर्मम, डॉ मस्तराम कपूर, डॉ मनोहरलाल, डॉ शैलेन्द्र श्रीवास्तव, डॉ ज्ञानप्रकाश पिलानिया, आई पी एस. सम्प्रति महानिदेशक पुलिस, राजस्थान सरकार, श्री निहालचदजी जैन, आई ए एस ने समय-समय पर परामर्श देकर मुझे उपकृत किया है। श्री धर्मदत्तजी आई ए एस, सम्प्रति नई दिल्ली महापालिका के प्रशासक मेरे साहित्यिक अनुष्ठानो मे सदैव सम्बल रहे हैं। मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ और उनकी निरतर उन्नति की कामना करता हूँ।

यह भी सयोग ही कहा जायेगा कि पूज्यास्पद चाचाजी पण्डित गोकुल प्रसाद जी शर्मा विवेकानन्द स्मृति मन्दिर, रामकृष्ण मिशन खेतडी शाखा के अध्यक्षीय काल मे इस ग्रन्थ का लोकार्पण हो रहा है। ग्रन्थ की पूर्णता उनके उत्साहित करने का ही सुफल है। हृदय से आभार ज्ञापित करता हूँ। चि०जितेन्द्र कुमार वशिष्ठ ने प्रूफ देखने मे मेरी सहायता की, हृदय से आशीर्वाद। स्वजनतुल्य राजस्थान के वरिष्ठ प्रशासक श्री त्रिलोकीनाथजी चतुर्वेदी, आई ए एस (सप्रति भारत सरकार के नियत्रक-महालेखापरीक्षक) भी सदैव मुझे इन कार्यों के लिए प्रोत्साहित करते रहे उनके प्रति भी आभार व्यक्त न करना कृतघ्नता होगी।

रायपुर (म.प्र.) रामकृष्ण मिशन के प्राण स्वामी आत्मानन्दजी महाराज ने इस ग्रन्थ को आद्योपान्त पढने का कष्ट कर इसकी भूमिका लिखने की कृपा की है। इसके लिए मैं उनका अनुगृहीत हूँ। सात्विक प्रवृत्ति के भक्तहृदयी श्री लक्ष्मी निवासजी झुझनूवालाजी, भाई श्री डी. आर. मेहताजी, आई ए एस. को इस प्रकाशन के लिए हम हृदय से आभारी हैं। सुप्रसिद्ध विद्वान प. काशीरामजी शर्मा इस पुस्तक को देखकर इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने इसके लिए खासतौर से 'कृति

और कृतिकार' लिखने की अनुकम्पा की है। मैं अपनी ओर से सभी कृपालुओ का धन्यवाद करता हूँ और अपनी त्रुटियो के लिये पाठको से क्षमा मागता हूँ।

पुरातत्त्वाचार्य, भाषातत्वविद् सम्प्रति भूतपूर्व जयपुर महाराजा के म्यूजियम, सिटी पेलेस मे पोथीखाना के अधिकारी ने 'दो शब्द लिखने' की कृपा की है। इसके लिए मैं उनका अनुगृहीत हू। मेरे कनिष्ट अनुज सत्यनारायण शर्मा जो आरम्भ से ही सामाजिक-सास्कृतिक कार्यों मे सक्रिय रुचि लेते रहे हैं और वर्तमान मे रायपुर (म० प्र०) से विधायक हैं का भी सहयोग मिलना स्वाभाविक ही था। वह आशीर्वाद प्राप्ति का अधिकारी है। व्याख्यान वाचस्पति प० दीनदयालु जी शर्मा की पौत्री श्रीमती कमला बक्शी का मार्गदर्शन के लिए आभारी हू।

सुधी पाठको की सूचनार्थ निवेदन है कि अपूर्ण ग्रथ को पूर्णता देने मे मेरी लेखन शैली का पुट भाषा मे आया है। इससे कही-कही पूज्य पण्डितजी श्री झावरमल्ल शर्मा की भाषा से भिन्नता की प्रतीति हो सकती है।

खेतडी के राजा साहब के नाम के शुद्ध पाठ 'अजितसिंह' के स्थान पर अनेक बार 'अजीतसिंह' इसलिए प्रयोग किया गया है कि वे स्वय अपना नाम 'अजीतसिंह' ही लिखते थे। अतएव मूल नाम को ज्यो-का-त्यो ही रहने दिया गया है—एकरूपता के लिए बदला नही गया।

राज्य की सौ वर्ष पुरानी डायरी 'वाकआत रजिस्टर' की भी भाषा को सपादित न करके मूलरूप मे ही रखा गया है। अतएव उस अश की भाषा आधुनिक नही है। इससे पाठको को एकरूपता का अभाव प्रतीत हो सकता है। तदर्थ पाठकगण क्षमा करें।

कार्तिक शुक्ला एकादशी,
स० २०४५ वि०

—श्यामसुन्दर शर्मा
(जसरापुर निवासी)

परमहंस और उनके पार्षद स्वामी विवेकानन्द

प्रात स्मरणीय रामकृष्ण परमहस स्वामी विवेकानन्द के गुरु थे। रामकृष्ण जी का जन्म हुगली जिले मे खुदीराम चट्टोपाध्याय के गृह मे हुआ था। उनका मन पढने-लिखने मे नही लगता था। परन्तु उनकी बुद्धि वडी तीक्ष्ण थी। रामायण-महाभारतादि की कथा पण्डितो से सुनकर ही उन्होने ज्ञान प्राप्त कर लिया था। कलकत्ते से प्राय तीन कोस उत्तर, दक्षिणेश्वर नामक स्थान मे अपने ज्येष्ठ भ्राता की मृत्यु के वाद रामकृष्ण कालीजी के पुजारी-पद पर नियत हुए थे। श्रद्धासमन्वित भाव से पूजा करते-करते ही इन्होने योगाभ्यास आरम्भ किया। उन्हे एक सन्यासी गुरु मिल गये थे। उनसे सन्यास ग्रहण करने के वाद रामकृष्ण परमहस ने कामिनी-काञ्चन का सर्वथा त्याग कर दिया। उनकी लोगो ने कई प्रकार से परीक्षा ली। वङ्गाल मे उनके त्याग और महात्मापन की घूम मच गयी। वडे-वडे शिक्षित उनके शिष्य हुए। 'रामकृष्ण मिशन' उन्ही परमहसदेव के नाम पर उनके शिष्य-सप्रदाय द्वारा प्रतिष्ठित हुआ। भारतवर्ष मे यह सेवा-सस्था अपने ढङ्ग की एक ही है। वावन वर्ष की अवस्था मे परमहस देव ने इह-लीला सवरण की। वे महापुरुष थे।

स्वामी विवेकानन्द

विश्ववन्दनीय स्वामी विवेकानन्द, वाल्यकाल के नटखट नरेन्द्र का विद्वान एटर्नी विश्वनाथ दास व मातुश्री भुनेश्वरी देवी के घर 12 जनवरी, 1863 को जन्म हुआ। मुक्तहस्त पिता कुछ भी छोडकर नही गये। तीन भाइयो मे अग्रज नरेन्द नगे पैर और खाली पेट हो गये। गरीबी के अभिशाप को झेला। विद्यासागर कालेज में शिक्षा देना, पुस्तको का अनुवाद करना और कभी-कभी निराहार रह जाना 'दारिद्रयदोषो गुणराशिनाशी' हो गये। 'दरिद्रदेवोभव' के मूल मत्र के भावी उद्घोषक को, निर्धनता की प्रत्यक्ष अनुभूति देने के लिए ही यह घटना घटी। श्रीरामकृष्ण देव के शरणागत होने पर परमहस ने नरेन्द्र के योगी के लक्षण पहचानकर शिष्य बनाया। काम जो लेना था, 'मानवता के उपकार के लिए। श्री रामकृष्णदेव ने कहा, "मैं कितने दिनो से तेरी प्रतीक्षा मे बैठा हूँ। तुम नररूप मे नारायण हो—जीवो के कल्याण के लिए इस शरीर को धारण किया है।" अपनी विकट समस्या बताने पर परमहस ने कहा, "जाओ मा काली के

सम्मुख प्रणाम करके प्रार्थना करो, माँ समस्या का निवारण अवश्य करेंगी।" तीन वार माँ के समक्ष उपस्थित होकर हर वार भाव-विभोर होकर वह केवल इतना ही कह सके, "माँ! विवेक, वैराग्य, ज्ञान और भक्ति दो।"

इम तरह नरेन्द्र का मोह-माया-पाश टूटा! परमहस के 1886 मे ब्रह्मलीन होने पर उनके शिष्यो ने स्वामीजी की प्रधानता नतमस्तक होकर स्वीकार की। गुरुभाई स्वामी शिवानन्द, ब्रह्मानन्द, अखण्डानन्द, त्रिगुणातीतानन्द, रामकृष्णानन्द, की पलकें स्वामीजी पर लगी थी, एक दिन स्वामी त्रिगुणातीतानन्द ने अचानक मठ छोड दिया—इस घटना से सव शिष्यो की आखो के सामने से मोह-माया-जाल का पर्दा हटा— तत्पश्चात् स्वामीजी ने भी परिव्राजक रूप मे प्रस्थान किया।

आज देश के सामने विकट समस्याए खडी हैं। भारतवर्ष को स्वामी विवेकानन्द की जरूरत है। आवश्यकता है उनके आदर्श उपदेशो की जो एक शताब्दी पूर्व उन्होने देश के कल्याण हेतु उदघोषित किये थे।

आज हमे आवश्यकता है स्वामीजी ने 'दरिद्रदेवोभव', (गरीवो के उद्धार हेतु) [महिलाओ के उत्थान की कल्पना (शिक्षा-दीक्षा) सर्वधर्म-समन्वय, जातिपाति का वन्धन तोडने भेदभाव मिटाने, कर्मयोग, और प्रेमभाव का जो सन्देश दिया था—उस पर चलने मे ही मानवता की अधोगति है—कल्याण है।

हमारी सरकार भी, स्वामीजी एक शती पूर्व प्रकट किये मन्तव्य को वीस सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत आधार वनाकर चलने का प्रयास कर रही है। इनको कार्यान्वित करने के लिए कार्यक्षमता, सगठनक्षमता, दक्षता, युवावर्ग मे राष्ट्रीय एकता की क्रांति फूकने का भाव भरने-जैसे वड़े कार्य स्वामीजी की जैसी त्याग-तपस्या से ही फलीभूत होते हैं।

विज्ञान ने ससार को छोटा वना दिया है और प्रकृति के सभी व्यवधानो पर विजय प्राप्त की है किन्तु हृदयो की दूरी को कम नही कर पाया। आज आवश्यकता इस वात की है कि हृदयो की दूरी को समाप्त किया जाए, मानव-मानव मे प्रेम की भावना को, सह अस्तित्व को वल प्रदान किया जाए। यह काम-अध्यात्म के प्रचार-प्रसार से तथा भारतीय सस्कृति के इस विचार को कि 'समस्त वसुधा हमारा घर है, परिवार है, घर-घर पहुचाकर ही किया जा सकता है।'

धर्म का रहस्य सिद्धांतों में नहीं है, प्रत्युत आचरण मे है

स्वामीजी ने कहा कि जिस गुरुदेव ने हमे मुक्त हस्त से जो दिया है, वह है—उनकी भाव-सम्पदा, उनकी शिक्षाए, उनके उपदेश! उन्ही का हमे प्राण-प्रण से प्रचार करना है। "ज्ञेय· स नित्य संन्यासी यो न द्वेष्टि न कांछति।"

वन्धुओ! सन्यासी उसे ही समझो जो न द्वेष करता है और न किसी वस्तु

की इच्छा करता है। "त्यागात् शातिरनतरम्" जिसने सब इच्छाओं को त्याग दिया है, वही सुखी है। इस ससार मे ठोकरें खाने से, सकटो के साथ टकराने से, हमे ज्ञान का यह जीवन-सूत्र मिलता है कि हम सब इस धरती पर बिखर जाएं और मनुष्य जाति को पुकारकर कहे—'उत्तिष्ठत्, जाग्रत'—उठो जाग जाओ। 'कार्यं वा साधेय शरीर नष्ट.' (या तो कार्य की सिद्धि होगी या शरीर ही चला जाएगा)अपने गुरु की वाणी का प्रचार-प्रसार ही हमारा एकमात्र कर्म है। इसके लिए त्याग करना ही हमारा धर्म है। यही धर्म का सार है और कुछ नही!"

उन्होने निश्चय किया कि जिस राष्ट्र की उन्हें सेवा करनी है—जिसके लिए वे सन्यासी बने है उस राष्ट्र के सुख-दु ख को एक बार अपनी आखो से घर-घर, द्वार-द्वार जाकर देख लें। उस सुख-दु.ख को अच्छी तरह पहचान लें।

जीवन में संघर्ष ही संघर्ष

स्वामी विवेकानन्द की आत्मा जानती थी कि उन्हे इस ससार मे घोर सघर्ष करना होगा। इसी सघर्ष की तैयारी के लिए वे तीर्थों मे जहा-तहा बिखरी कन्दराओ मे बैठे योगियो-तपस्वियो से मिलते-जुलते रहे। जहा कही भी उन्हें दर्शन योग के पण्डित मिलते, उन्ही से इस देश का सनातन गुप्त ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करते।

परिव्राजकीय जीवन-यापनकाल मे गाजीपुर मे एक महान् साधक से उनका साक्षात्कार हुआ। उनसे मिलकर उन्हे कैसी अनुभूति हुई वह स्वामीजी की कलम से लिखे एक पत्र मे पढिए। यह पत्र उन्होने ७ फरवरी, १८९० मे श्री प्रमदादास को लिखा था—

"·· बाबा जी आचारी वैष्णव प्रतीत होते हैं। उन्हे योग-भक्ति एव विनय की प्रतिभा ही कहना चाहिए। उनकी कुटी के चारो ओर ऊची दीवारें हैं। परकोटे के भीतर एक बडी गुफा है, जहा वे समाधिस्थ पडे रहते हैं। गुफा से बाहर आने पर अदर ही खडे-खडे खिडकी से बात करते हैं।

"कोई नही जानता कि वे क्या खाते-पीते हैं। इसलिए लोग उन्हे पवनाहारी बाबा (केवल पवन का आहार करने वाला बाबा) कहते हैं।

"जितनी मीठी वाणी उनके पास है वैसी वाणी मैंने जीवन मे कही नही सुनी—कभी नही जानी। वे प्रश्नो का सीधा उत्तर नही देंगे। बस कहते हैं—'दास क्या जाने? कुछ दिन यहा ठहरकर मुझे कृतार्थ कीजिए! यह दास—मेरा भाग्य!!'

वे निस्सदेह बडे विद्वान हैं। वे शास्त्रोक्त कर्मकाण्ड करते हैं। पूर्णिमा से सक्राति तक होम होता रहता है। चाहता हू उनसे कुछ प्राप्ति हो जाए। समझ नही पाता अपने गुरु से सब कुछ पाकर मेरे मन मे और कुछ पाने का लोभ क्यो जागा है ··?"

एक दिन स्वामीजी ने पवनाहारी बाबा के ज्ञान, उनकेतत्त्वदर्शन, योग-चिंतन-मनन से प्रभावित होकर प्रार्थना की कि वे उन्हे योग की दीक्षा दें। बाबाजी ने स्वीकार कर लिया। एक रात स्वामीजी बाबा के पास योग की दीक्षा लेने के लिए तैयार हुए। इसी के साथ उनके मन मे एक शका उठी—"गुरु तो एक होता है! क्या करू? पवनाहारी बाबा या परमहस श्री रामकृष्ण?" उसी समय उन्होने प्रत्यक्ष देखा—उनके समीप श्री रामकृष्ण परमहस सदेह खडे हैं।

इस दिव्य-दर्शन के बाद स्वामी विवेकानन्द ने गाजीपुर से प्रस्थान किया—उसके बाद स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक के रूप मे भारत के नगर-नगर व गाव-गाव परिभ्रमण करने लगे।

"उठो! जागो! और रुको मत, जब तक कि लक्ष्य तक न पहुंच जाओ!!!"

हाथरस स्टेशन के निकट ही स्टेशन मास्टर शरतचन्द्र गुप्त से भेंट हुई। धर्मनिष्ठ शरतचन्द्र गुरु की खोज मे थे। स्वामीजी से आत्मज्ञान के उपदेश देने की प्रार्थना की—स्वामीजी ने कहा, "त्याग तपस्या करनी होगी।"

गुप्त जी ने कहा, "मुझे जो भी कहेगे वह सब करने के लिए प्रस्तुत हू।"

"वत्स! मैं अपने कधो पर एक बहुत बडे काम का बोझ लिए घूम रहा हू। मैं तुम सबकी उसमे सहायता चाहता हू।" "स्वामीजी मैं आपके उस काम के लिए अपने प्राण तक दे सकता हू।" यह सुनकर स्वामीजी ने कहा—"क्या सचमुच ही तुम एक महान् उद्देश्य के लिए सन्यासी बन सकते हो?" "आप आज्ञा दीजिए।" "यह लो मेरी भिक्षा की झोली और अपने स्टेशन से ही कुलियो, बाबुओ से भिक्षा मागकर ले आओ।" श्री शरतचन्द्र अपने स्टेशन पर गए और भिक्षा मागकर लौट आए। उन्हें लौटा देखकर स्वामीजी आनन्द-विभोर हो उठे। बोले—"मैं तो कल्पना तक नही कर सकता था कि भारत मा के ये रत्न घर-घर मे बिखरे पडे है। वत्स! 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत'—उठो जागो लक्ष्य तक पहुचे बिना ठहरो मत। आज हर भारतवासी के लिए यही मेरा गुरु-मत्र है।" स्वामीजी ने उन्हे दीक्षा दी और उनका नाम सदानन्द हो गया। वे अपने मां-बाप से आज्ञा लेकर स्वामीजी के साथ हो लिए। आगे चलकर स्वामी सदानन्द अपने गुरु के उस महान् उद्देश्य की पूर्ति मे बडे सहायक सिद्ध हुए।

स्वामीजी मेरठ-दिल्ली का परिभ्रमण करते हुए राजस्थान मे सर्वप्रथम अलवर पहुचे। बात फरवरी महीने की सन् १८९१ ई की है अलवर मे महाराजा मगलसिंह से 'मूर्तिपूजा' पर सार्थक वादविवाद हुआ। अलवर मे उनके अनेक

भक्त बने । वहा से चलकर जयपुर—किशनगढ—अजमेर होते हुए अप्रैल,१८९१ ई को माउट आबू पहुचे ।

सयोग और सुयोग का मधुर मिलन

आबू मे खेतडी के राजा अजितसिंह से मिलन हुआ—आगे चलकर वे स्वामीजी के प्रधान सहायक स्तम्भ बने । खेतडी महाराज ने बडी भक्ति से उनकी सेवा की, स्वामीजी मे महाराज को सन्तान का आशीर्वाद दिया । एक दिन वे बोले—"महाराज ! कुछ आत्म-दर्शन का उपदेश दीजिए ।" स्वामीजी बोले—"आपको आत्मदर्शन का नही कर्मयोग का उपदेश ग्रहण करना होगा । आपको कर्म करना होगा, मन का दास बनकर नही । मन का स्वामी बनकर । सघर्प, निरतर सघर्ष ही क्षत्रियधर्म है ! निष्काम कर्म ही सुख का मूलमत्र है । राजन् सघर्ष करो अपने मन से । सघर्ष करो अपनी प्रजा के सुख के लिए ! क्षत्रिय का धर्म सघर्ष है । सघर्ष निरन्तर सघर्ष !"

राजस्थान के इसी खेतडी नगर से स्वामीजी ने सर्वधर्म-परिषद् मे भाग लेने के लिए प्रस्थान किया था ।

पहले आज्ञा पालन करना सीखो, आज्ञा देना स्वयं आ जाएगा

स्वामीजी ने अखण्डानन्दजी को लन्दन से १३ नवम्बर, १८९४ को पत्र मे लिखा—

"चार आदमी मिलकर कोई काम करें, यह हमारी आदत नही। इसलिए हमारी इतनी दुर्दशा हो रही है । जो आज्ञापालन करना जानते हैं, वे ही आज्ञा देना भी जानते हैं । पहले आदेशपालन करना सीखो । इन सब पाश्चात्य जातियो मे स्वाधीनता का भाव जैसा प्रबल है, आदेशपालन करने का भाव भी वैसा ही प्रबल है । हम सभी अपने आपको बडा समझते हैं, इससे कोई काम नही बनता । महान् उद्यम, महान् साहस, महावीर्य और सबसे पहले आज्ञापालन—ये सब गुण व्यक्तिगत या जातिगत उन्नति के लिए एकमात्र उपाय हैं । और, ये गुण हममे हैं ही नही ।"

श्रीयुत आलासिंह पेरूमल को सन् १८९४ ई अमेरिका से लिखा—सजीवनी शक्ति का चारो ओर प्रसार करो । धीरे-धीरे आरम्भ करो । पहले गृहस्थ प्रचारको से श्रीगणेश करो, धीरे-धीरे वे लोग भी आने लगेंगे जो इस काम के लिए अपना जीवन समर्पण कर देंगे । शासन करनेवाले न बनो—वही सबसे अच्छा शासन करता है जो सबकी सेवा कर सकता है । मृत्युपर्यन्त सत्यपथ से विचलित न होओ । हम काम चाहते है—हमे धन, नाम और यश की चाह नही । जब कार्यारम्भ इतना सुन्दर हुआ है तब आवश्यकता होने पर एव अपने कार्य की सिद्धि

के लिए आग मे कूदने को भी तैयार रहना चाहिए। इस समय केवल काम, काम, काम—बाद मे किसी समय काम स्थगित कर किसने कितना किया है यह देखेंगे। धैर्य, अध्यवसाय और पवित्रता चाहिए।

महान् कार्य महान् त्याग से ही सिद्ध हो सकते है

शिकागो मे एक सर्व धर्म-सम्मेलन होने वाला था। उसमे सारे देशो से अपने-अपने धर्मों के प्रतिनिधि उनमे सम्मलित होने के लिए जानेवाले थे।

मद्रास के युवको ने थोडे दिनो मे ही पाच सौ रुपये इकट्ठे करके स्वामीजी के चरणो पर रख दिए और कहा—"स्वामीजी ! हम इस देश के युवक मानते है कि आप ही हैं इस देश के एक ऐसे विद्वान धर्मोपदेशक जो विदेशो मे जाकर हमारे हिन्दू-धर्म का प्रतिनिधित्व कर सकते है।"

स्वामीजी ने मुस्कराकर कहा—

"तुम लोग इन रुपयो को दरिद्र नारायण की सेवा मे खर्च कर दो। तुम चिन्ता न करो, अगर जगतमाता की इच्छा हुई तो वे रुपयो का प्रबन्ध करके मुझे अवश्य ही उस धर्म सभा मे भेज देंगी। तुम्हारा उत्साह और जागरूकता देखकर मुझे लगता है कि हमारा देश जाग रहा है। देश के युवक राष्ट्र की प्रगति व उसके भविष्य के बैरोमीटर होते हैं। तुम लोगो की उत्साह भरी इन पुतलियो मे मैं अपने राष्ट्र का उज्ज्वल भविष्य स्पष्ट देख रहा हू।"

दिग्विजय के पथ पर

राजस्थान से विदा होकर ३१ मई, १८९३ ई. को जहाज से स्वामीजी ने बम्बई बन्दरगाह से प्रस्थान किया—पहला पडाव लका था और फिर जापान। उसके बाद वहा की राजधानी, वहाँ का औद्योगिक नगर ओसाका देखकर स्वामी ने अपने भारतीय शिष्य को पत्र मे लिखा—

"····जापान को देखकर मुझे लग रहा है जैसे वहा का हर नागरिक कमर कसकर अपने देश की उन्नति मे लग गया है। मैं चाहता हू हमारे देश के नवयुवक कूप-मडूक (कुए का मेढक) न रहे। वे अपने देश से निकलकर अपने इन पडौसी देश मे आकर देखें कि इन्होने यहा क्या-क्या बना लिया है—किस तरह अपनी हर जरूरत को पूरा कर लिया है। यहाँ आकर पता लगता है कि आजाद और गुलाम देश मे क्या अन्तर होता है ? यहा लगता है कि हर इनसान एक देशभक्त जापानी है। यहा उनकी एक पहचान है। इनके मन का विकास देखकर अपने देश के उन लोगो से कुछ कहना चाहता हू जो जीवन भर केवल खाने-पीने, छुआछूत के विवादो मे ही उलझे रहे—ओ सठिआई बुद्धिवालो ! तुम्हारी तो देश से

तुम मे जातीयता का सम्मान भरा भाव शेष है ?

मैं अपने देश के युवको से कहना चाहता हू···किताबें हाथ मे लिए केवल यूरोपियनो के मस्तिष्क से निकली हुई इधर-उधर की बातो को लेकर बेसमझे दुहराये जा रहे हो। तीस रुपये की मुशीगिरी के लिए ही न ?

उसके बाद झुण्ड-के-झुण्ड बच्चे पैदा करके उन्हे 'रोटी-रोटी' कहकर तडपन के लिए छोड दोगे। इससे कल्याण नही होगा।

सबसे और प्रत्येक से प्रेम करने की चेष्टा करो

कलकत्ते के एक व्यक्ति को शिकागो से २ मई, १८९५ को पत्र मे लिखा—

"प्रेम मे ग्रामीण-शहरवासी, आर्य-म्लेच्छ, ब्राह्मण-चाण्डाल, यहा तक कि पुरुष-नारी आदि कोई भी भेद नही है। समग्र विश्व को वह अपना घर-जैसा बना लेता है। वास्तविक उन्नति धीरे-धीरे, किन्तु निश्चित रूप से होती है। जो सच्चे हृदय से भारतीय कल्याण का व्रत ले सकें तथा उसे ही जो अपना एकमात्र कर्त्तव्य समझें—ऐसे युवको के साथ कार्य करते रहो, सगठित करो तथा उनमे त्याग का मन्त्र फूंक दो। भारतीय युवको पर ही यह कार्य सम्पूर्ण रूप से निर्भर है।

"एकमात्र अपने धर्मविश्वास को छोडकर बाकी सभी विषयो मे नियमानुवर्ती बनो। गुरुजनो के अधीन हुए बिना कभी भी शक्ति केन्द्रीभूत नही हो सकती और बिखरी हुई शक्तियो को केन्द्रीभूत किये बिना कोई महान कार्य नही हो सकता।"

शुद्ध रहना और परोपकार करना ही उपासना का सार है
'दरिद्र देवो भव'

ओ देश के शक्तिपुत्र! आओ मनुष्य बनो!! उन पाखण्डी पुरोहितो को जो सदा-सदा हमारी प्रगति के बाधक रहे हैं, उन्हे ठोकर मारकर निकाल दो क्योकि उनका सुधार कभी नही होगा। वे कभी उदार नही होगे। पहले पुरोहितो-पाखण्ड को अपने देश से निकाल दो। देखो जिस तरह अन्य देश आगे बढ रहे हैं, तुम भी बढो।

अगर तुम मेरी ही तरह भारत माँ की सन्तान हो तो उन लोगो को त्याग दो जो तुम्हारी प्रगति रोकना चाहते हैं। उनकी ओर मुडकर नही देखो। आगे बढो! आगे बढो!!

भारत माता ऐसे आगे बढनेवाले एक हजार युवको का बलिदान माँगती है। मस्तिष्क वाले मनुष्यो का—पशुओ का नही। तुम्हे सोते युग बीत गए। जागो—उठो और इस देश के जन-जन के कानो तक नवजागरण का यह भैरव गान पहुँचा दो।

एक दूसरा पत्र जो अपने एक शिष्य को लिखा था—

"इस यात्रा मे मुझे रह-रहकर भगवान् बुद्ध की वह प्रतिमा याद आती रहती है, जो मैंने कोलम्बो मे देखी थी।

बार-बार लगता है कि मैं तुम सब भारतीय नर-नारियो के समीप बैठा हूँ और कहना चाहता हूँ—

'भारत के दरिद्रो, पतितो और कमजोरो का कोई साथी नही। उन्हें सहायता देनेवाला कोई भी नही है। कभी भगवान् बुद्ध इसी आत्म-पीड़ा को लेकर तुम सबके बीच आये थे।

तुम्हे गरीबो दु खियो के लिए और काम करना सिखाया था। पर वे तुम्हें कुछ भी न सिखा पाये। तुम्हारे पुरोहितो ने तुम सबको बहका दिया। भगवान् बुद्ध के बारे मे एक नई कथा गढी कि वे भ्रान्त मत का प्रचार करके असुरो को मोहित करने आये थे। सच यह है कि असुर हम ही लोग हैं। असुर वे नही जिन्होंने उनका विश्वास किया।

जो जाति तुम पर राज्य करता चाहती है, उसी के गुलाम बनकर चुपचाप जी रहे हो। अत्याचार और गुलामी दोनो एक ही सिक्के के पहलू हैं। हमारी जातियो ने एक-दूसरे से नफरत की, एक-दूसरे पर अत्याचार किया। यही कारण है कि आज तीस करोड इनसान भारत की धरती पर केंचुए की तरह रेंग रहे हैं। समाज की यह दशा दूर करनी होगी। जाति पर नही देश पर मिटना होगा। जाति के लिए नही—देश के लिए जीना होगा। देश के एक छोर से दूसरे छोर तक संकुचित जाति का नही—राष्ट्रीयता...उदार राष्ट्रीयता का सदेश देना होगा, जिसमे किसी के लिए भी घृणा नही होगी...केवल अपने राष्ट्र के प्रति सम्मान होगा, भक्ति होगी। कैसी अद्भुत बात है कि ससार का कोई भी धर्म हिन्दू धर्म-जैसा उदार नही है। पर क्या यह सच नही है कि संसार मे कोई धर्म नही होगा, जिसके माननेवाले अपने ही बन्धुओ का गला इतनी क्रूरता से घोट रहे हो?

राष्ट्रीयता का पाठ

हरिदास बिहारीदास देसाई को शिकागो से १ जनवरी १८९४ को पत्र मे लिखा—

"प्रत्येक मनुष्य एव प्रत्येक राष्ट्र को बडा बनाने के लिए तीन बातें आवश्यक हैं—

१. सौजन्य की शक्ति मे विश्वास।

२ ईर्ष्या और सन्देह का अभाव।

३. जो धर्म-पथ पर चलने मे, और सत्कर्म करने मे सलग्न हो, उनकी सहायता करना।

"क्या कारण था कि हिन्दू राष्ट्र अपनी अद्भुत बुद्धि एव अन्यान्य गुणों के रहते हुए भी टुकडे-टुकडे हो गया ? मैं इसका उत्तर दूंगा—ईर्ष्या। कभी भी कोई जाति एक दूसरे से क्षुद्रभाव से ईर्ष्या करनेवाली, या एक दूसरे से सुयश से ऐसी डाह करनेवाली न होगी जैसी कि यह अभागी हिन्दू जाति, और यदि आप कभी पश्चिमी देशो मे आयें, तो सबसे पहले पश्चिमी राष्ट्रो मे इसके अभाव का अनुभव करेंगे।

"भारत मे तीन मनुष्य एक साथ मिलकर पाँच मिनट के लिए भी कोई काम नही कर सकते। हरएक मनुष्य अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रयास करता है और अन्त मे पूरे सगठन की दुरवस्था हो जाती है। भगवान्! कब हम ईर्ष्या करना छोडेंगे ? ऐसे राष्ट्र मे विशेपत बगाल मे एक ऐसे दल का निर्माण करना जो कि परस्पर मत-भेद रखते हुए भी अटल प्रेम के सूत्र मे बँधे हुए हो, क्या यह आश्चर्यजनक बात नही है ? यह सघ क्रमश बढता रहेगा, यह अद्‌भुत उदारता अविरुद्ध गति से सारे भारतवर्ष मे फैल जायगी एव घोर अज्ञान, द्वेष, जाति-भेद पुराने अन्ध-विश्वास और ईर्ष्या—जो इस दासो के राष्ट्र की पैतृक सम्पत्ति है—इनके होते हुए भी यह उदार भाव इस राष्ट्र मे सजीवनी शक्ति का सचार करेगा।"

विश्वास में अपूर्व शक्ति

'किडी' को शिकागो, से ३ मार्च, १८९४ को लिखित पत्र मे :—

"मुझे तुम्हारा पत्र मिला था, परन्तु मैं निश्चय नही कर सका कि इसका क्या जवाब दूं। तुम्हारा अन्तिम पत्र पाने से कुछ आश्वासन मिला। मैं तुमसे यहाँ तक सहमत हूँ कि विश्वास से अपूर्व अन्तर्दृष्टि मिलती है और केवल विश्वास से भी मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है, पर उससे सकीर्णता आ जाने और भविष्य मे उन्नति होने मे बाधा पडने की आशका रहती है।

" · पाप या अधर्म वही है जो उन्नति मे बाधा डालता हो, या पतन मे सहायता करता हो, और धर्म वही है जिससे श्रीराम-कृष्ण के तुल्य बनने मे सहारा मिले।"

नारी उत्थान में ही देश की उन्नति

श्रीयुत हरिपद मित्र को शिकागो से २८ दिसम्बर, १८९३ को लिखा—

"मैंने जैसी शिक्षित महिलाए यहा देखी वैसी और कभी कही नही देखी ! हमारे देश मे सुशिक्षित पुरुष हैं, परन्तु अमेरिका-जैसी महिलाए मुश्किल से कही और दिखायी देंगी। यह बात सत्य है कि सच्चरित्र पुरुषो के घरो मे स्वय देविया

वास करती हैं—'या श्री स्वय सुकृतिना भवनेषु' (चण्डी, ४-५)। मैंने यहा हजारो महिलाए देखी जिनके हृदय हिम के समान पवित्र और निर्मल हैं। अहा! वे कैसी स्वतन्त्र होती हैं! सामाजिक और नागरिक कार्यों का निरीक्षण वे ही करती है। पाठशालाए और विश्वविद्यालय महिलाओ से भरे हैं और हमारे देश मे महिलाए निर्भीक होकर चल भी नही सकती!

"महर्षि मनु ने भी कहा है कि जिन परिवारो मे स्त्रियो से अच्छा व्यवहार किया जाता है और वे सुखी हैं, उन पर देवताओ का आशीर्वाद रहता है—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता.'। यहा के पुरुष स्त्रियो का यथायोग्य आदर करते हैं। इसलिए ये इतने समृद्धिशाली, इतने विद्वान्, इतने स्वतत्र और इतने तेजस्वी है। और हम लोग स्त्री-जाति को नीच, अधम, तुच्छ, एव अपवित्र कहते है। फल हुआ—हम लोग, पशु, दास, उद्यमहीन एव दरिद्र हो गये। और हम क्या कर रहे है? हम लोग नियमपूर्वक अपनी कन्याओ का विवाह ११ वर्ष की आयु मे कर देते हैं, जिससे वह भ्रष्ट और दुश्चरित्र न हो जाए। हमारे मनुजी हमे क्या आज्ञा दे गये हैं? 'पुत्रियो का पुत्रो के समान सावधानी और ध्यान से पालन और शिक्षण होना चाहिए।' "कन्याप्येव पालनीया शिक्षणीयातियत्नत.।" जैसे ३० वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करके पुत्रो का विवाह करना चाहिए, इसी तरह माता-पिता को पुत्रियों को भी शिक्षा देनी चाहिए, और उनसे ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कराना चाहिए। परन्तु हम असल मे क्या कर रहे हैं? क्या तुम अपने देश की महिलाओ की अवस्था सुधार सकते हो? तब तुम्हारे कुशल की आशा की जा सकती है, नही तो तुम ऐसे ही पिछडे पड़े रहोगे।

"अगर हम ।ं देश मे कोई नीच जाति मे जन्म लेता है तो उसे व इन सब कष्ट को ध्यान मे रखकर काम मे जुट जाओ। मैं तुम्हारे अन्तिम श्वास तक साथ दूगा—तुम्हारे सत्कार्य मे हाथ बटाऊगा।"

सेवा और शिक्षा

श्रीयुत आलासिगा पेरूमल को शिकागो से २७ नवम्बर, १८९३ को लिखित-पत्र .—

"हिन्दुओ को अपना धर्म छोडने की आवश्यकता नही। उन्हे चाहिए कि धर्म को एक उचित मर्यादा के भीतर सीमित रखें और समाज को उन्नतिशील होने के लिए स्वाधीनता दे दें। भारत के सभी समाज-सुधारको ने पुरोहितो के अत्याचारो और अवनति का उत्तरदायित्व धर्म के मत्थे मढने की एक भयकर भूल की और एक दुर्भेद्य गढ को गिराने का प्रयत्न किया। नतीजा क्या हुआ? असफलता।। बुद्धदेव से लेकर राममोहन राय तक सब ने जातिभेद को धर्म का एक अग माना और जातिभेद के साथ ही धर्म पर भी आघात किया और असफल रहे। पुरोहित-

गण चाहे कुछ भी कहे, जाति-भेद केवल एक सामाजिक विधान ही है। उसका काम हो चुका, अब तो वह भारतीय वायुमडल मे दुर्गन्ध फैलाने के अतिरिक्त कुछ नही करता। यह तभी हटेगा जब लोगो को उनका खोया हुआ सामाजिक व्यक्तित्व पुन. प्राप्त हो जाएगा। इस देश मे जन्म लेनेवाला प्रत्येक व्यक्ति अपने को एक 'मनुष्य' समझता है। भारत मे जन्म लेनेवाला प्रत्येक व्यक्ति समझता है कि वह समाज का एक दास है। और, उन्नति की एकमात्र सहायक स्वाधीनता है। उसके अभाव मे अवनति अवश्यम्भावी है। आधुनिक प्रतिस्पर्धा के युग मे जाति-विचार अपने आप नष्ट होता जा रहा है। हम लोग ससार के लिए बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य करेंगे और वे सब निस्स्वार्थ भाव से, नाम अथवा यश के लिए नही।

"क्यो ? —यह प्रश्न करने का हमे अधिकार नही, हमे तो अपना कार्य करते करते प्राण छोडने हैं। (Our is not to reason why, our is but to do and die)। साहसी बनो और इस बात का विश्वास रखो कि हमारे और तुम्हारे द्वारा महान् कार्य होने हैं। भगवान ने बडे-बडे कार्य करने के लिए हमे निर्दिष्ट किया है और हम उन्हें करेंगे। उसके लिए तैयार रहो, अर्थात् पवित्र, विशुद्ध एवं निस्स्वार्थ प्रेम-सम्पन्न बनो। दरिद्र, दु खी और पद-दलित से प्रेम करो। प्रभु तुम्हारा कल्याण करेंगे।"

भगिनी निवेदिता को लिखा पत्र—अलमोडा २९ जुलाई, १८९७

"प्रिय कुमारी नोबल,

श्री स्टर्डी का एक पत्र कल मुझे मिला जिससे मुझे यह मालूम हुआ कि तुमने भारत आने की और स्वय सब चीजो को देखने की मन मे ठान ली है। उसका उत्तर मैं कल दे चुका हू, परन्तु मैंने कुमारी मूलर से तुम्हारे इस संकल्प के विषय मे जो कुछ सुना उससे यह दूसरा सक्षिप्त पत्र आवश्यक हो गया और अच्छा है कि मैं तुम्हे सीधा ही लिखू। मैं तुम्हे स्पष्ट रूप से कहना चाहता हू कि मुझे विश्वास है कि भारत के काम मे तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल रूप धारण करेगा। आवश्यता है स्त्री की, पुरुष की नही। सच्ची सिंहनी की जो भारतीयो के लिए, विशेषकर स्त्रियो के लिए काम करे। भारत अभी तक भी महान् महिलाओ को उत्पन्न नही कर सका, उसे दूसरे राष्ट्रो से उन्हे उधार लेना पडेगा। तुम्हारी शिक्षा, सच्चा भाव, पवित्रता, महान प्रेम, दृढ निश्चय और सबसे अधिक तुम्हारे सेटिक (Cetic) रक्त ने तुमको वैसी ही नारी बनाया है, जिसकी आवश्यकता हैं। परन्तु कठिनाइया भी बहुत हैं। यहा जो दु ख, कुसस्कार और दासत्व है उसकी तुम कल्पना नही कर सकती। तुम्हे एक अर्द्धनग्न स्त्री-पुरुषो के समूह मे रहना होगा। और सफेद चमडे वाले जिनसे वे स्वय अत्यन्त घृणा करते हैं। दूसरी ओर श्वेत जाति के लोग तुम्हे सनकी समझेंगे और तुम्हारे आचार-व्यवहार को वे

सशकित दृष्टि से देखते रहेगे।"

तुम इस संसार में आये हो, तो अपने पीछे कोई चिह्न छोड़ जाओ

भगवान श्रीरामकृष्ण के जन्मोत्सव पर भक्तो को लिखा—

"महाशय परमहस के जन्म की तिथि से सत्ययुग आरम्भ हुआ है। इसलिए अब सब प्रकार के भेदो का अन्त है और चाण्डालसहित सब लोग उस दैवी प्रेम के भागी होंगे। पुरुष और स्त्री, धनी और दरिद्र, शिक्षित और अशिक्षित, ब्राह्मण और चाण्डाल—इन सब भेद-भावो का मूल नष्ट करने के लिए उनका जीवन व्यतीत हुआ था। वे शान्ति के दूत थे—हिन्दू और मुसलमानो का भेद, हिन्दू और ईसाइयो का भेद—ये सब भूतकालीन हो गये हैं। श्रेष्ठता के झगडे—वे दूसरे युग से सम्बन्ध रखते हैं। इस सत्ययुग मे श्रीरामकृष्ण के प्रेम की विशाल लहर ने सब को एक कर दिया है।

"उससे कहो कि इन विचारो को वह विस्तार-पूर्वक अपनी शैली सब स्त्रियो को उस जगन्माता की ही मूर्तिया मानना चाहिए। भारत मे दो बडी बुरी बाते हैं। स्त्रियो का तिरस्कार और गरीबो को जाति-भेद के द्वारा पीसना। वे स्त्रियो के रक्षक थे, जनता के रक्षक थे, ऊच और नीच सब के रक्षक थे, अक्षय उनकी उपासना सब घरो मे प्रचलित कर दे, चाहे ब्राह्मण हो या चाण्डाल, पुरुष हो या स्त्री—सब को उनकी पूजा का अधिकार है। जो प्रेम से उनकी पूजा करेगा उसका सदा के लिए कल्याण हो जायेगा।

(१) पक्षपात ही सब अनर्थों का मूल है, यह न भूलना। अर्थात् यदि तुम किसी के प्रति अन्य की अपेक्षा अधिक प्रीति प्रदर्शन करना चाहते हो तो याद रखो उसी से भविष्य मे कलह का बीजारोपण होगा।

(२) यदि कोई तुम्हारे समीप अन्य किसी साथी की निन्दा करना चाहे तो तुम उस ओर बिल्कुल ध्यान न दो—ऐसा सुनना भी महान् पाप है, उससे भविष्य मे विवाद का सूत्रपात होगा।

(३) दूसरो के दोषो को सर्वदा सहन करना, लाख अपराध होने पर भी उसे क्षमा करना। यदि निस्स्वार्थ भाव से तुम सबसे प्रीति करोगे तो उसका फल यह होगा कि सब कोई आपस मे प्रीति करने लगेंगे। एक का स्वार्थ दूसरे पर निर्भर है, इसका विशेष रूप से ज्ञान होने पर सब कोई ईर्ष्या को त्याग देंगे, दस व्यक्ति मिलकर किसी कार्य को सम्पादन करने की भावना हमारे जातीय चरित्र मे सुलभ नही है; अत. इस प्रकार की भावना को जाग्रत करने के लिए हमे अत्यधिक परिश्रम करना पडेगा तथा उसके लिए हमे अपेक्षा भी करनी होगी।"

स्वामी रामकृष्णानन्द को १८९५ मे लिखा—

१ सब शास्त्रो का कथन है कि ससार मे जो त्रिविध दुःख हैं वे नैसर्गिक नही

हैं, और वे हट सकते हैं ।

२ बुद्ध-अवतार मे भगवान् कहते हैं कि इस आधिभौतिक दु ख का कारण भेद ही है, अर्थात् जन्मगत, गुणगत या धनगत—सब तरह का भेद इन दुःखो का कारण है। आत्मा मे लिग, वर्ण या आश्रम या इस प्रकार का कोई भेद नही होता और जैसे कीचड के द्वारा कीचड नही धोया जाता उसी तरह से भेदभाव से अभेद साधित होना असम्भव है।

३. कृष्ण-अवतार मे वे कहते हैं कि सब दु:खो का मूल अविद्या है और निष्काम कर्म चित्त को शुद्ध करता है। परन्तु "किं कर्म किमकर्मेति" इत्यादि, "कर्म क्या है और अकर्म क्या है" इसका निर्णय करने मे महात्मा भी मोह मे पड जाते है ।—(गीता)

४ जिस कर्म के द्वारा इस आत्म-भाव का विकास होता है वही कर्म है। और जिसके द्वारा अनात्म-भाव का विकास होता है वही अकर्म है।

५. अतएव कर्म या अकर्म का निर्णय व्यक्तिगत, देशगत और कालगत परिस्थिति के अनुसार होना चाहिए।

६ यज्ञ इत्यादि कर्म प्राचीन काल मे उपयोगी थे तथा जातिगत कर्म भी परन्तु वर्तमान काल के लिए वैसा नही है।

७ रामकृष्ण-अवतार की जन्मतिथि से सत्ययुग का आरम्भ हुआ है।

८. रामकृष्ण-अवतार मे नास्तिक विचार ज्ञान रूपी तलवार से नष्ट होंगे और सम्पूर्ण जगत् भक्ति और प्रेम से एकरूप होगा। इससे अधिक—इस अवतार मे रजस् अर्थात् नाम-यश इत्यादि की इच्छा का सर्वथा अभाव है। दूसरे शब्दो मे उसका जीवन धन्य है जो इस अवतार के उपदेश को व्यवहार मे लाये, चाहे वह उन्हे (इस अवतार को) स्वय माने या न माने।

९ आधुनिक या प्राचीन समय के विविध सम्प्रदायो के निर्माणकर्ता अनुचित मार्ग पर न थे। उन्होंने अच्छा किया परन्तु उससे भी अच्छा करना है। श्रेष्ठ—श्रेष्ठतर—श्रेष्ठतम।

१० इसलिए जो जिस स्थान पर है वही उसे ग्रहण करना होगा अर्थात् उसके इष्ट के भाव मे आघात न कर उसे उच्चतर भाव मे ले जाना होगा। जो इस समय की सामाजिक परिस्थिति है, वह अच्छी है, पर उसे उत्कृष्टतम करना होगा।

११ स्त्रियो की अवस्था को बिना सुधारे जगत् के कल्याण की कोई सभावना नही है। पक्षी का एक पख से उडना सम्भव नही है।

१२ इस कारण रामकृष्ण-अवतार मे 'स्त्री-गुरु' को ग्रहण किया गया है, इसीलिए उन्होने स्त्री के रूप और भाव मे साधना की और इस कारण ही जगत् जननी की प्रतिरूप, स्त्रियो के मातृभाव का प्रचार हुआ।

१३. इसलिए मेरा पहला प्रयत्न स्त्रियो के मठ को स्थापित करने का है। इस मठ से गार्गी और मैत्रेयी और उनके भी अधिक योग्यता रखनेवाली स्त्रियो की उत्पत्ति होगी…।

१४ पाखण्ड से कोई बडा काम पूरा नही हो सकता। प्रेम, सत्यानुराग और महावीर्य की सहायता से सभी कार्य सम्पन्न होते हैं। 'ततः कुरु पौरुषम्' इसलिए पुरुषार्थ को प्रकट करो।

१५ किसी से लडने-झगडने की आवश्यता नही है। अपना सन्देशा दे दो तथा औरो को अपने-अपने भाव लेकर रहने दो। 'सत्यमेव जयते नानृतम्'—"सत्य की ही जय होती है असत्य की नही", 'तदा किं विवादेन'—"तब क्यो लडते हो ?"

…गम्भीरता के साथ शिशुवत् सरलता को मिलाओ। सब के साथ मेल से रहो। अहकार के सब भाव छोड दो और साम्प्रदायिक विचारो को मन मे न लाओ। व्यर्थ विवाद महापाप है।

गरीबी तथा जातिभेद

स्वामी ब्रह्मानन्द को १५ मार्च, १८९४ को शिकागो से लिखा

"इस देश की-सी महिलाएँ दुनिया भर मे नही हैं। वे कैसी पवित्र, स्वावलम्बी और दयावती है। महिलाए ही यहा की सब कुछ हैं। विद्या, बुद्धि आदि सभी उन्ही मे है। "या श्री स्वय सुकृतिना भवनेपु" (जो पुण्यात्माओ के घरो मे स्वय लक्ष्मीरुपिणी हैं) इसी देश मे हैं, और "पापात्मना हृदयेष्वलक्ष्मी." (पापियों के हृदय मे अलक्ष्मीरूपिणी हैं) हमारे यहा हैं—बस यही समझ लो। यहा की महिलाओ को देखकर तो मेरे होश उड गये। "त्व श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्री" (तुम्ही लक्ष्मी हो, तुम्ही ईश्वरी हो, तुम्ही लज्जारूपिणी हो) इत्यादि। "या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण सस्थिता" (जो देवी सब प्राणियो मे शक्तिरूप से विराजती हैं) इत्यादि। यहा की वर्फ-जैसी सफेद है वैसी शुद्ध मनवाली हजारो नारिया यहा हैं। फिर अपने देश की दस वर्ष की उम्र मे बच्चो को जन्म देनेवाली बालिकाए !!! प्रभु, मैं अब समझ रहा हूँ। हे भाई, "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" (जहा नारियो की पूजा होती है वहा देवता प्रसन्न रहते है)—वृद्ध मनु ने कहा है। हम महापापी हैं; स्त्रियो को 'घृणित कीडा', 'नरक का द्वार' इत्यादि कहकर हम अध पतित हुए हैं। बाप रे बाप ! कैसा आकाश-पाताल का अन्तर है ! "याथातथ्यतोऽर्थान व्यदधात्।" (जहा जैसा उचित हो, ईश्वर वहा वैसा कर्मफल का विधान करते है।—ईश उप०) क्या प्रभु झूठी गप्प से भूलने-वाले हैं ? प्रभु ने कहा है, "त्व स्त्री त्वं पुमानसि त्व कुमार त्व वा कुमारी" (तुम्ही स्त्री हो और तुम्ही पुरुष, तुम्ही कुँवारे हो और तुम्ही क्वारी।—

श्वेताश्वर उप०) इत्यादि और हम कह रहे है, "दूरमपसर रे चाण्डाल" (ऐ चाण्डाल, दूर हट) "केनैषा निर्मिता नारी मोहिनी" (किसने इस मोहिनी नारी को बनाया है ?) इत्यादि"

राष्ट्र : झोंपड़ी में बसा हुआ है

मद्रासी शिष्यो को २४ जनवरी, १८९४ को शिकागो से लिखित—

"मेरा विचार है कि भारत और भारत के बाहर मनुष्य-जाति मे जिन उदार भावो का विकास हुआ है, उसकी शिक्षा गरीब से गरीब और हीन से हीन को दी जाय और फिर उन्हे स्वय विचार करने का अवसर दिया जाय। जातिभेद रहना चाहिए या नही, महिलाओ को पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए या नही, उन्हे स्वय निर्णय लेना चाहिए। विचार और कार्य की स्वतन्त्रता ही जीवन, उन्नति और कुशल-क्षेम का एकमेव साधन है। जहा स्वतन्त्रता नही है, उस मनुष्य, उस जाति या राष्ट्र की अवनति निश्चय होगी।

"परिश्रम करो, अटल रहो और भगवान पर श्रद्धा रखो। काम शुरू कर दो। मैं भी शीघ्र ही आ जाऊँगा। "धर्म को बिना हानि पहुँचाये जनता की उन्नति"— इसे अपना आदर्श-वाक्य बना लो। याद रखो कि राष्ट्र झोपडी मे बसा हुआ है, उन लोगो के लिए कभी किसी ने कुछ नही किया·· और मरते दम तक गरीब और पद दलितो के लिए सहानुभूति रखना, यही हमारा आदर्श वाक्य है। वीर युवको आगे बढो!"

राष्ट्रीय एकता

श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल को लिखित न्यूयार्क ९ अप्रैल, १८९४

"मेरे भाई, बिना अवरोध के कोई भी अच्छा काम नही हो सकता। जो अन्त तक प्रयत्न करते हैं उन्हे सफलता प्राप्त होती है।·· मेरा विश्वास है कि जब एक जाति, एक वेद, शान्ति और एकता होगी, तब सत्ययुग आयेगा। वह सत्ययुग का विचार ही भारत को पुन. जीवन प्रदान करेगा। विश्वास रखो।···

"उठो बच्चो, काम मे लग जाओ! ··चिरकाल तक सनातन धर्म का डका बजेगा! ·· उठो-उठो, मेरे पुत्रो! हमारी जीत निश्चित है।···जब हम एक बार काम आरम्भ कर लेंगे तब बडी भारी धूम मचेगी, परन्तु मैं बिना काम किये बात नही करना चाहता। ·

"शिक्षित युवको पर प्रभाव डालो और उनको इकट्ठा कर एक सघ बनाओ। बडे-बडे काम केवल पूर्ण स्वार्थत्याग से ही बन सकते हैं। स्वार्थ की आवश्यकता नही, न काम की, न यश की—तुम्हारे भी नही, मेरे भी नही, यहाँ तक कि

हमारे गुरुदेव के भी नहीं। जिससे उद्देश्य एवं लक्ष्य, कार्य मे परिणत हो जाय उसी का प्रयत्न करो। ऐ मेरे साहसी, महान् सदाशय बच्चो! काम मे जी-जान से लग जाओ। नाम, यश अथवा अन्य तुच्छ विषयो के लिए पीछे मत देखो। स्वार्थ को विलकुल त्याग दो और कार्य करो। याद रखना—"तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिन"—अर्थात् बहुत से तिनको को एकत्र करने से रस्सी बन जाती है जिससे कि मतवाला हाथी बँध सकता है। तुम सब पर भगवान का आशीर्वाद वरसे।"

विश्व-धर्म-महासभा, शिकागो, ११ सितम्बर, वर्ष १८९३ को स्वामीजी ने कहा—"साम्प्रदायिकता, हठधर्मिता और उनकी वीभत्स वशधर धर्मान्धता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुकी है। वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रही हैं, उसको वारम्वार मानवता के रक्त से नहलाती रही हैं, सभ्यताओं को ध्वस्त करती और पूरे-पूरे देशों को निराशा की गर्त मे डालती रही हैं। यदि ये वीभत्स दानवी न होती, तो मानव समाज आज की अवस्था से कही अधिक उन्नत हो गया होता। विश्व के इतिहास मे पहली वार सर्वधर्म समन्वय के महान आलोक ने विभिन्न सम्प्रदायो के एकत्रित हुए धर्मावलम्बियो के हृदय की सकीर्णता के अधकार को नष्ट कर दिया था—'तमसो मा ज्योतिर्गमय'।

'वहुजन हिताय वहुजन सुखाय' हेतु ही संन्यासी का जन्म होता है। स्वामी विवेकानन्द यह महसूस करते थे कि, "भारत के जातीय जीवन मे पुनर्गठन की आवश्यकता है। धर्म को जीता-जागता और समाज को गतिशील बनाकर उत्साही व वीर्यवान मनुष्यो को पैदा करना होगा। मैं एक ऐसे धर्म का प्रचार करना चाहता हू, जिससे 'मनुष्य' तैयार हो।" इसी सदर्भ मे स्वदेश प्रेमी सन्यासी ने कहा था कि "अब भारत ही केन्द्र है।"

महान देशभक्त, दार्शनिक, समाज सुधारक, व्याख्याता, भारतीय सस्कृति के पोषक, स्वामी विवेकानन्द के जीवन एव कार्यकलापो के विषय मे बहुत लिखा गया है। स्वामीजी ने भारतीयो को युग-कालीन निद्रा से झकझोर कर जगाया और नवजीवन और नसो मे नवीन रक्त का सचार किया।

'जीवन चरित्र' इतिहास का ही—अग है और प्रमाणिक सदर्भ के विना सम्भव नही। स्वामीजी के राजस्थानी भक्तो को लिखे शताश पत्रो के आधार पर नवीन निशकर्ष निकालने सम्भव हुए है। तथ्यात्मक दस्तावेजो-पत्रो के आधार पर आधारित उक्त ग्रन्थ स्वामीजी के ज्ञात-अल्पज्ञात अध्याय को प्रकाश मे लायेगा, जिससे स्वामीजी के जीवन मानवीय पक्ष का पता चलेगा।

प्रथम यात्रा

[स्वामी विवेकानन्द का एकांकी भ्रमण के लिये मेरठ से प्रस्थान—दिल्ली होकर—राजस्थान में पर्दापण—अलवर-जयपुर-अजमेर-आबू-खेतड़ी-गुजरात होते हुए वम्बई-पूना-मद्रास-मंशोर-हैदराबाद-मद्रास से फिर खेतड़ी]

जनवरी १८६१ के अंत मे स्वामी विवेकानन्द ने एकाकी भ्रमण के लिए प्रस्थान किया। मेरठ मे तीन महीनोसे भी अधिक ठहरने के बाद स्वामीजी हरिद्वार, हृषिकेश आदि स्थानो के सर्वत्यागी साधुओ की भाति पूर्ण स्वाधीन रूप से रहने को उत्कण्ठित हो उठे। अपने पूर्ववर्ती तपस्याकाल मे जिन महापुरुषो के वे दर्शनलाभ कर चुके थे उनके सन्दर्भ मे कहा करते थे कि एक महात्मा तो उन्मादी रूप से पागल की तरह घूमते रहते और लडके उनके पीछे दौडते और ईंट-पत्थर फेंकते जाते। उनका सर्वाङ्ग क्षतविक्षत और लोहूलुहान हो रहा है परन्तु वे उन लडको की ओर आख उठाकर भी नही देखते प्रत्युत हस रहे हैं। जब उनको पकडकर उनके घावो को धोया तथा एक कपडा जलाकर राख चोटो के घावो मे दवाई तो रक्त का वहना तो वन्द हुआ, किन्तु वे उसी भाति हसते रहे कि 'क्या मजेदार खेल है।' स्वामीजी यह भी कहते कि उन महापुरुषो को यद्यपि तपस्या, तीर्थयात्रा किंवा पूजादि से कोई प्रयोजन नही, तथापि तीर्थों से जगह-जगह भ्रमण कर वे जो कठोर अनुष्ठान करते हैं वह केवल अपने पुण्यबल से लोक कल्याणार्थ ही होता है। अतएव स्वामीजी ने स्वय भी इसी प्रकार लोक कल्याण-कामना से अकेले घूमने की आवश्यकता अनुभव की। उन्होने अपने सब गुरु भाइयो को बुलाकर और समीप वैठाकर कहा, 'मेरे जीवन का व्रत स्थिर हो गया है, अब से मैं एकाकी रहूगा, तुम मेरे साथ मत रहो।' अब मैं गुरु भाइयो की मोहमाया का बन्धन तोडना चाहता हूं। स्वामी अखण्डानद की बार-बार अनुनय प्रार्थना भी उन्होंने ठुकरा दी। अन्त मे दृढ निश्चय हो विवेकानन्द ने १८६१ जनवरी मास के प्रारभ मे दिल्ली के लिए प्रस्थान किया।

हिन्दू-मुसलमानो की पुरानी राजधानी दिल्ली नगरी आज भी अतीत की बहुत-सी स्मृतियो को लिए हुए देश-विदेश के शत-शत पर्यटको का मन मुग्ध कर रही है। योरप खण्ड मे जिस प्रकार रोमनगरी गरीयसी प्राचीन सभ्यता और

संस्कृति की खान है, उसी प्रकार भारत की गौरवशालिनी नगरी दिल्ली भी तदनुरूप महिमामयी है। दिल्ली मे स्वामी जी ने साँवलदास सेठ के मकान मे निवास किया। वहा कुछ दिनो के अनन्तर सुप्रसिद्ध डाक्टर हेमचन्द्र सेन महाशय से उनका परिचयालाप हुआ। धर्म विषयक तर्क-वितर्क सुनकर स्वामीजी के पाण्डित्य से हेम वावू वडे प्रभावित हुए।

दिल्ली से मेरठ पहुच कर स्वामीजी त्रैलोक्यनाथ घोष के मकान मे ठहरे। उस समय दुर्गा (काली) पूजा हो चुकी थी। वह शरत् का सुरम्य प्रारभ काल था। स्वामी अखण्डानन्द स्वामी जी की रोगाक्रान्त देहावस्थामूलक दुर्वलता को देखकर वहुत चिन्तित हुए। अपने गुरुभाइयो के साथ वे उस समय यज्ञेश्वर मुखर्जी के स्थान पर ठहरे हुए थे। यज्ञेश्वर मुखर्जी ही परवर्ती निगमागम मण्डली के सस्थापक एव भारत धर्म महामण्डल के सर्वेसर्वा स्वामी ज्ञानानन्द थे।

अस्तु, श्री स्वामीजी अपने जीवन की उद्देश्यसिद्धि के लिए व्याकुल थे। वे जानते थे कि उनके जीवन का शुभ विजय मुहूर्त अति सन्निकट है और उसकी प्रस्तुति के लिए समय वहुत ही स्वल्प है। उस अज्ञात महान कार्य के लिए उनके हृदय-देवता श्री रामकृष्ण ने उन्हे सहाय सवल हीन एकाकी जीवन यापन करने के लिए अनुप्राणित किया। अतः त्यागी सन्यासी स्वामीजी इतिहास की क्रीड़ास्थली, सतियो के रक्त से रजित, समुज्जवल वीरप्रसविनी भूमि राजस्थान की ओर अग्रसर हुए।

स्वामीजी अलवर में

१८९१ ई० के फरवरी मास के आरम्भ मे एक दिन प्रातःकाल ट्रेन से उतरकर अलवर नगर मे प्रविष्ट हुए। दोनो ओर उद्यानो से सुशोभित राजपथ पर चलते-चघते पंक्तिवद्ध मनोहर भवनो का अतिक्रमण कर अन्त मे वे एक राजकीय दातव्य चिकित्सालय के सम्मुख पहुचे। वहा एक वगीय सज्जन को खडा देखकर उन्होंने वगभाषा मे ही पूछा, 'इधर साधु संन्यासियो के ठहरने योग्य कोई स्थान है क्या ?' जो सज्जन खडे थे उनका नाम श्री गुरुचरण लश्कर था और वही उस चिकित्सालय के चिकित्सक थे। डाक्टर साहव को वगाल से वाहर आये वहुत समय हो गया था। अत' कमनीय वदन करुण सन्यासी के मुख से मातृभाषा को श्रवण कर वे विशेष आनन्दित हुए और ससम्मान साग्रह वोले, 'पधारिए, आज्ञा दीजिए क्या सेवा करू ?' फिर उन्हे अपने साथ ले जाकर चिकित्सालय के समीप ही वाजार मे एक दो मंजिला मकान (चौवारा) दिखाकर पूछा—'इस घर मे ठहरने मे कोई कष्ट तो नही होगा ?' सस्मित वदन स्वामीजी ने कहा, 'नही, कोई कष्ट नहीं होगा।' डाक्टर साहव ने उसी समय उनके लिए आवश्यक वस्तुए लाकर दी। स्वामी जी के पास उस समय गेरुआ वस्त्र, दण्ड-कमण्डलु और कम्वल

मे लिपटी हुई दो-चार पुस्तको के अतिरिक्त कुछ भी नही था।

प्राथमिक व्यवस्था हो जाने पर डाक्टर गुरुचरण बाबू अपने एक मुसलमान मित्र के पास जाकर बोले, 'मौलवी साहब, एक बगाली दरवेश अभी यहा आये हैं, चलिए, उनसे मिलिए। ऐसा महात्मा मैंने पहले कभी नही देखा। आप उनसे बातचीत कीजिए। मैं भी अपना काम निपटाकर जल्दी ही आपके पास आऊगा।' यह कहकर उन्होने मौलवी साहब को स्वामी जी के पास उसी समय पहुचा दिया। मौलवी साहब स्थानीय उच्च अग्रेजी विद्यालय मे उर्दू फारसी के शिक्षक थे। वे तत्काल नगे पैरो ही चल पडे और स्वामी जी के पास पहुचकर उन्होंने सलाम किया। स्वामी जी ने उनको अपने पास बिठाकर बातचीत करते हुए कहा, 'कुरान के सम्बन्ध मे यह एक विशिष्ट आश्चर्य की बात है कि ग्यारह सौ वर्ष पहले उसका जो स्वरूप था, आज भी वैसा ही है। उसकी प्राचीनतम शुद्धता सुरक्षित है और किसी को भी उस पर कलम चलाने की हिम्मत नही हुई।'

उधर गुरुचरण बाबू ने अपने पास समागत सभी सज्जनो को स्वामी जी के विषय मे सूचित किया और उनकी प्रशसा करते नही अघाए। इससे सभी श्रोताओ के मन मे परम उत्कण्ठा उत्पन्न हुई और वे लोग स्वामीजी के दर्शन के लिए लालायित हो उठे। मौलवी साहब ने भी अपने जातीय बन्धुओ मे स्वामीजी के आगमन की खूब चर्चा की और वे लोग भी स्वामीजी से साक्षात्कार करने आने लगे। फलस्वरूप स्वामीजी वाले मकान मे इतना लोक समागम होने लगा कि पूरा घर भर कर बरामदे मे भी जगह नही रहती थी। बीच-बीच मे हिन्दी-उर्दू मे कथा-कहानी, गायन-भजन, चण्डीदास, रामप्रसाद, सूरदास आदि के पद और कविताए भी सुनाते। कभी-कभी वेदो और उपनिषदो के उद्धरण भी उपस्थित करते। मधुर गायन और सारगर्भित भाषण सुनकर श्रोता मुग्ध होकर उनके सामने बैठे रहते।

कुछ दिनो मे ही स्वामीजी के अनुरागी भक्तो की सख्या बढ जाने पर अनेक गण्यमान्य सज्जनो ने निश्चय किया कि अब से सत्सग का स्थान अलवर राज्य के अवकाश प्राप्त इजीनियर पडित शम्भुनाथ जी के मकान पर रखा जाय। यहा अपने ध्यान-धारणादि से निवृत होकर प्रातः नौ बजे स्वामी जी आगन्तुको से मिलने बाहर बैठक खाने मे आते। उस समय तक वहा जाति— वर्ण-निर्विशेष भक्तजन एकत्रित हो जाते। उनमे शिया-सुन्नी, शैव-वैष्णव और गरीब-अमीर सभी तरह के लोग होते थे। दोपहर तक बैठकर स्वामी जी सभी की सब तरह की शकाओ का समाधान करते थे। कभी-कभी अनिश्चित और अवान्तर विषय भी उपस्थित हो जाते थे परन्तु निरूद्विग्न भाव से उत्तर देकर स्वामीजी सबका समाधान करा देते थे।

स्वामी जी के अगाध पाण्डित्य से आकर्षित होकर अलवर के दीवान मेजर

रामचन्द्र उनसे मिले और फिर महाराजा मगलसिंह को भी उनके दर्शनार्थ बुलाया। अपने दीवान का सन्देश पाकर महाराजा तुरन्त ही स्वामीजी के स्थान पर पहुच गये और उनको श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। महाराजा और साथ मे समागत दरबारी यथास्थान बैठ गए।

महाराजा मंगलसिंह और स्वामीजी में मूर्ति पूजा पर वाद-विवाद

महाराजा ने सबसे पहला प्रश्न यह किया, 'स्वामीजी महाराज, सुना है, आप तो अद्वितीय विद्वान हैं, सहज ही बहुत अर्थोपार्जन कर सकते हैं, वह न करके भीख मागते क्यो घूमते फिर रहे है ?' यह सुनते ही किंचितमात्र भी न विचलित होकर स्वामी जी ने उल्टा उनसे पूछा, 'महाराज ! क्या आप बता सकते है कि राज्य कार्य की अवेहलना करके आप अंग्रेजो के साथ शिकार खेलते क्यो डोलते-फिरते हैं ?' स्वामीजी के इस बेलाग उत्तर को सुनकर दरबारी लोग घबराए और सोचने लगे कि न जाने साधु को अपने इस दुस्साहस का क्या फल भुगतना होगा ? किन्तु महाराजा ने धीर भाव से ही सुना और कुछ सोचकर बोले, 'मैं नहीं जानता कि मैं ऐसा क्यो करता हू, परन्तु मुझे यह अच्छा लगता है।'

महाराज ने फिर जानना चाहा, 'सब लोग जो मूर्ति पूजा करते हैं उसमे मेरा बिलकुल विश्वास नही है, तो कहिए, मेरी क्या दशा होगी ?' यह बात महाराजा ने व्यग्यात्मक स्वर मे कही और फिर वे हस दिये। स्वामी जी ने यह देखकर सोचा, क्या हिन्दू होकर भी कोई ऐसा बोल सकता है ?' अतः उन्होंने भी अविश्वास की भावभगी मे कहा, 'महाराज, क्या आप मजाक कर रहे हैं ?' महाराजा ने सहज भाव से उत्तर दिया, 'नही, स्वामीजी बिलकुल नही। देखिए, वास्तव मे ही मैं अन्य लोगो की तरह काठ, पत्थर, मिट्टी और धातु की पूजा नही कर सकता। इससे क्या परजन्म मे मेरी अधोगति होगी ?' कुछ उदास भाव से ही स्वामीजी बोले, 'जिसका जैसा विश्वास।'

यह सुनकर दरबारियो ने सोचा, यह क्या हुआ ? यह तो महाराजा के अश्रद्धाभाव को ही प्रश्रय देना हुआ। यह स्वामी जी का निज का भाव नही है। ऐसा इनका मन रखने के लिए ही कह रहे हैं। तभी इधर-उधर दृष्टि दौडाते हुए स्वामीजी को दीवार पर टगी हुई अलवर महाराजा की तस्वीर दिखाई दी। उन्होंने एक दरबारी से कह कर वह तस्वीर उतरवाई और हाथ मे लेकर बोले, 'यह किसकी छवि है ?' दीवानजी ने उतर दिया, 'हमारे महाराजा की।' तब स्वामीजी ने दीवान जी से कहा, 'इस पर थूकिए।' उस समय सभी उपस्थित जन भय-सवस्त हो गये। परन्तु स्वामीजी फिर भी कहते ही रहे, 'क्या आप मे से कोई भी इस पर नही थूक सकता ? यह कागज ही तो है, और कुछ नही है।

ऐसा करने मे आपको क्या आपत्ति है ?' उस समय दीवान जी भय और विस्मय से विस्फारित नेत्रो से कभी महाराजा और कभी स्वामीजी की ओर देखने लगे। स्वामी जी बराबर कहते रहे, 'थूकिए, इस पर थूकिए।' अन्त मे दीवान जी ने कहा, 'क्या कह रहे हैं स्वामीजी ? यह हमारे महाराजा की प्रतिकृति है, हम ऐसा कैसे कर सकते हैं ?'

स्वामीजी ने कहा, 'इसमे न हाड है, न मास है। यह आकृति न हिलती है, न डोलती है, न बोलती है, फिर आप इस पर क्यो नही थूकते ? इसलिए न कि ऐसा करने से महाराजा का अपमान होगा।' इसके बाद महाराजा मगलसिह से अभिमुख होकर स्वामीजी ने कहा, 'देखिए महाराज, एक तरह से आप इस छवि मे मौजूद हैं, और एक तरह से आप इसमे नही हैं। इसीलिए आपके एकान्त भक्त दरबारी आपको इस छवि से भिन्न देखते हुए भी थूकने को तैयार नही हुए क्योकि वे इस छवि का भी उतना ही सम्मान करते हैं जितना आपका। इसी प्रकार जो सब भक्त काठ, पत्थर, धातु आदि की प्रतिमा को भगवान समझकर उसकी पूजा करते हैं उनके विषय मे भी ठीक यही बात घटती है। उनकी ध्यान धारणा मे ये प्रतिमाए सहायक होती हैं। वे उसे पत्थर या धातु समझ कर पूजा नही करते हैं। मैं इतनी जगह घूमा हूँ परन्तु किसी को भी यह कहते नही सुना कि हे पत्थर! हे धातु! हम तुम्हारी पूजा करते हैं, तुम हमारी रक्षा करना, हमारा कल्याण करना। वे तो उसे अद्वितीय चैतन्य स्वरूप परमब्रह्म सर्वशक्तिमान परमात्मा का स्वरूप मानकर ही पूजा करते हैं। वे इसीलिए अपने इष्ट देव की प्रतिमा का पूजन करते हैं कि वह उनको देवता की महिमा तथा ऐश्वर्य का स्मरण करा देती है। भगवान को जो जिस रूप मे समझता है और जिस भाव से उसका भजन-चिन्तन करता है वह भी उसको उसी रूप मे प्राप्त होता है। 'महाराज, मैंने अपना निज का भाव आपको कहा है। आपका भाव मे नही जानता।'

मगल सिह अब तक एकाग्र मन से सब कुछ देख-सुन रहे थे। अब हाथ जोडकर बोले, 'स्वामीजी, आपने जिस प्रकार मूर्ति पूजा की व्याख्या की है उस प्रकार मैंने किसी को भी ऐसा करते नही देखा। मैं यह तत्त्व नही जानता था। आपने मेरी आखें खोल दीं। किन्तु मेरा क्या होगा ? आप कृपा कर बताइये।' स्वामीजी बोले 'महाराज, कृपा केवल भगवान ही कर सकते हैं। और कोई नही कर सकता। वे सदैव कृपामय हैं। आप उन्ही से प्रार्थना कीजिए, वे अवश्य कृपा करेंगे।'

गेरुआ वस्त्र का विवेचन

एक बार कोई मनचला कह बैठा, 'बाबाजी आप गेरुआ वस्त्र क्यो पहने हुए हैं ?' 'क्योकि गेरुआ भिक्षुओ का वस्त्र है,' तुरन्त ही स्वामीजी के मुह से निकला

और फिर करुणा बरसाते हुए वह कहने लगे, 'यदि मैं साधारण मनुष्यो की तरह वस्त्रादि पहन कर भ्रमण करूं तो निर्धन भिक्षुकगण मुझे धनवान समझकर मुझसे भिक्षा मागेंगे। मैं स्वयं एक भिखारी हूं। मेरे हाथ मे एक पैसा भी नही है। मागने वाले को निराश करने मे बडा ही कष्ट होता है, परन्तु मेरा गेरुआ वस्त्र देखकर वे मुझे अपनी ही तरह भिक्षुक समझकर मुझसे भिक्षा नही मागेंगे।' ऐसा कह कर निर्धनो के प्रति स्वामी जी ने अपनी सवेदना का परिचय देकर सबको यह सोचने के लिए मजबूर कर दिया है कि मनुष्य मे इस प्रकार का परिवर्तन कब और कैसे आता है ?

स्वामीजी की पदयात्रा

अलवर मे स्वामीजी को पूर्णतया आचार्यत्व का स्वरूप प्राप्त हो गया था। सात सप्ताह व्यतीत होने पर उन्होने अपने भक्तो, अनुयायियो और प्रशसको से कहा, 'अब, यहा पर अधिक समय तक ठहरना नही होगा। सन्यासी के लिए एक ही स्थान पर ठहरना उचित नही है।' अलवर मे ही स्वामीजी ने अपने प्रमुख कृपा पात्र गोविंदसहाय[५] और हरबक्स फौजदार[६] को ध्यान और नाम मन्त्र-जप की दीक्षा दी।' इस मन्तव्यानुसार २८ मार्च, १८९२ ई० को स्वामी जी अलवरीय भक्त मण्डली से विदा हुए। उनकी इच्छा वहा से १८ मील दूर पाण्डुपोल तक पैदल जाने की थी। किन्तु धूप के प्रचण्ड ताप और एकान्त यात्रा की असुविधा से बचाने के लिए उनके भक्तो ने 'रथ' द्वारा यात्रा करने की व्यवस्था की। स्वामी जी ने यह सोचकर कि उन लागो को बुरा लगेगा, उनकी बात मान ली।

पाण्डुपोल पहुच कर श्री हनुमान जी के मन्दिर के प्रागण मे उन्होंने रात्रि को विश्राम किया। अगले दिन वे १८ मील दूर टहला ग्राम के लिए पैदल ही रवाना हुए। इस पहाडी पथरीले, अरण्यावृत और श्वापद-सकुल दुर्गम मार्ग की परवाह न करके, कभी स्वामी जी के सारगर्भित उपदेश, कभी मनोमुग्धकारी अलाप और कभी मीठी सगीत ध्वनि का आनंद लेते हुए सभी सगीतजन एव भक्तवृन्द उनके साथ मार्गातिक्रमण करते रहे। 'टहला' मे नीलकण्ठ महादेव का प्राचीन मदिर है। उसी की बगल मे पूर्व रात्रि की तरह उन सबने आश्रय लेकर विश्राम किया।

दूसरे दिन फिर यात्रा आरभ हुई और १८ मील चल कर वे नारायणी देवी के स्थान पर पहुचे जहा नाई बिरादरी की सती नारायणी की स्मृति मे मदिर बना हुआ है। यहा एक निर्दिष्ट दिन मेला भरता है जिसमे सहस्त्रो दर्शनार्थी नर-नारी एकत्रित होते हैं। यहा रात्रियापन करके दूसरे दिन प्रात काल अपने अलवर के भक्तो से विदा लेकर वे १६ मील अकेले ही पैदल चलकर बसवा नामक स्थान पर पहुचे। वहा से रेल मे सवार होकर जयपुर के लिए रवाना हुए। बादी कुई स्टेशन पर उनके एक अलवर निवासी भक्त प्रतीक्षा कर रहे थे। वे भी साथ

ही रेल मे बैठ गए।

अलवर से प्रस्थान कर जयपुर में

जयपुर पहुचने पर साग्रह अनुनय विनयपूर्वक उन्होंने स्वामीजी को सहमत करके एक फोटो (चित्र) उतरवाया, जो अत्यन्त भावव्यजक है। वस्तुतः स्वामी जी का परिव्राजक वेश मे यह सबसे पहला चित्र है।

जयपुर मे स्वामीजी दो सप्ताह ठहरे। यहा के अवस्थान काल मे जयपुर के फौज वख्शी (प्रधान सेनापति) ठा० हरिसिहजी लाडखानी[७] से उनका घनिष्ठ परिचय हुआ। वे निराकारवादी घोर वेदान्ती थे। स्वामीजी उनके साथ कई दिनो तक रहे। इस अवधि मे नित्य ही धर्मचर्चा हुआ करती थी। स्वामी जी को मूर्तिपूजा मे हरिसिहजी की भी आस्था जमाने मे समय नही लगा।

एक दिन स्वामीजी भक्तो के साथ धार्मिक चर्चा कर रहे थे, इसी समय प० सूर्यनारायण[८] भी सम्मिलिति हो गये। बातो ही बातो मे पण्डित जी के मुह से निकला, 'मैं एक वेदान्नी हू। मैं अवतार पुरूषो की विशेष आध्यात्मिक शक्ति मे विश्वास नही रखता। पौराणिक अवतारो मे भी मेरा विश्वास नही है। हम सभी ब्रह्म हैं। मुझमे और किसी अवतार मे क्या अन्तर है?'

स्वामी जी ने तत्काल ही चुटकी लेते हुए कहा, 'आपकी बात सत्य है, परन्तु हिन्दू लोग मत्स्य, कच्छप, वाराह को भी अवतार कहते हैं। बताइए इनमे से आप कौन है?' सभा मण्डल खिलखिलाकर हस पडा और प० सूर्यनारायण-सकपका गए।

जयपुर राज्य के प्रधान सेनापति सरदार हरिसिह आपके अनन्य भक्त हो गए थे। हरिसिह का मूर्तिपूजा मे विश्वास डगमगाया हुआ था। एक दिन राज-पथ पर श्री कृष्णजी की झाकी जा रही थी। स्वामीजी एकाएक इन्हे छूकर कह उठे, 'देखिए, श्री भगवान का जीता जागता स्वरूप।' स्वामीजी के स्पर्श ने सरदार हरिसिह में गहन भावान्तर पैदा कर दिया और वह निर्निमेष नेत्रो से अपने आपको खो बैठे। अन्तर मे स्वानुभूति होने पर गद्गद कण्ठ से सादर बोले, 'स्वामीजी अनेक वार तर्क करके इस विषय को समझ नही सका था, आज आपकी कृपा से अपूर्व दर्शन प्राप्त हो गया।' दर्शन वास्तव मे यदा-कदा दर्शनीय भी हो सकता है। अनुभूति केवल उपयुक्त पात्र को सिद्ध गुरू द्वारा स्पर्श, वचन अथवा विचार द्वारा कराई जा सकती है।

स्वामीजी के लिए एक जगह स्थिर होकर बैठना सभव नही था अत. वे यहा से अजमेर चले गए। यह स्थान हिन्दुओ और मुसलमानो के कीर्तिकलाप के लिए प्रसिद्ध है। वहा पर उन्होने अकबर वादशाह के प्राचीन महल, प्रसिद्ध फकीर

ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह[९], पुष्कर तीर्थ[१०] और ब्रह्मा के मंदिर आदि स्थानो को देखा ।

स्वामीजी आबू पर्वत पर

ग्रीष्मारभ मे १४ अप्रैल को स्वामीजी आबू पर्वत[११] पर जा पहुचे । यह पर्वत अपने रमणीय प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए तो प्रसिद्ध है ही, साथ ही नयनाभिराम अतुलनीय देलवाड़ा मंदिर[१२] भी यहा एक सुरम्य दर्शनीय स्थान है । इसका निर्माण तेरहवी शताब्दी मे गुजरात के दो जैन श्रेष्ठि बन्धुओ ने आठ करोड रुपये व्यय करके कराया था । यह मदिर श्वेत सगमरमर का बना हुआ है और इसके पूर्ण होने मे चौदह वर्ष लगे थे । मदिर की उत्कृष्ट कारीगरी को देखकर जिस प्रकार चित्त प्रफुल्ल होता है उसी प्रकार इसको भारत का गौरवस्वरूप मानकर भी मन उल्लसित हो जाता है । मंदिर के दर्शन करके स्वामीजी झील के किनारे पर भ्रमण करते रहे ।

जैसा अन्य स्थानो पर हुआ, आबू मे भी वही हुआ । उनके गुण-गौरव से आकृष्ट होकर अनेक श्रद्धालु और जिज्ञासु भक्त उनके पास एकत्रित होने लगे । वे साध्य-भ्रमण के समय उनके साथ हो लेते थे । एक दिन वे 'वेइलिज वाक' नामक सडक पकड़ कर घूमते-घूमते उस पहाड पर बडे-बडे रमणीय निवास स्थानो के विषय मे वातचीत कर रहे थे । नीचे ही आबू की विस्तृत झील थी । एक स्थान पर स्वामीजी रास्ता छोडकर मित्रों के साथ एक ऊँचे से स्थान पर जा बैठे और गाना गाने लगे । उनका यह सगीत बहुत देर तक चला, उस समय बहुत से यूरोपीय सेलानी भी घूमने निकले हुए थे । सगीत के माधुर्य से आकृष्ट होकर वे लोग गायक के समीप से दर्शन करने मार्ग पर खडे रहे और जब स्वामीजी उतरकर नीचे आए तो उन्होने उनके सुमधुर स्वर और संगीत की भूयसी प्रशसा की ।

स्वामीजी उस समय एक निर्जन गुफा मे रहकर अपने ध्यान-धारणादि अभ्यास मे निरत रहते थे । सामान के नाम पर उनके पास वही कम्बल, कमण्डलु और दो-चार ग्रन्थ ही थे ।

उधर ही किशनगढ राज्य के एक मुसलमान वकील[१३] भी घूमने आया करते थे । एक दिन दो चार मिनट की बातचीत मे ही वकील साहब समझ गये कि साधु का पाण्डित्य असाधारण है । इसी आकर्षण के कारण वे स्वामीजी के दर्शनार्थ प्राय. वहा आया करते थे । एक दिन वकील साहब ने स्वामीजी से पूछा, 'कोई सेवा हो बताइए ।' उन्होंने उत्तर दिया, 'वकील साहब, बरसात आ गई है, इस गुफा मे कोई दरवाजा नही है । आप चाहे तो इसके एक किवाडो की जोडी चढवा सकते हैं ।' स्वामीजी से सहमत होकर वकील साहब ने कहा, 'यह

गुफा बहुत छोटी है। मैं यहा एक सुन्दर बगले मे रहता हू। आप यदि कृपा कर वहां रहने लगें तो मैं कृतार्थ हो जाऊ।' फिर वकील साहब ने सविनय कहा, 'मैं मुसलान हू पर आपके लिए सब इन्तजाम अलग से कर दूंगा।'

स्वामी जी इसके लिये राजी हो गये। स्वामीजी उस बगले मे आ गये। इससे स्पष्ट प्रमाणित है कि वे कितने उदार और लोकापवाद से निर्भीक थे। इन मुसलमान सज्जन के बगले पर रहने से स्वामीजी के जीवन मे एक और ऐतिहासिक और गौरवपूर्ण मबध का सूत्रपात हुआ।

संयोग और सुयोग

४ जून १८९१ भारत के इतिहास मे एक अविस्मरणीय दिन रहेगा जिस दिन माउण्ड आबू के शैल-शिखर पर इन दो महानपुरूषो (राजा अजीतसिंह[१४] और स्वामीजी) का साक्षात्कार हुआ और तब से ये दोनो महान आत्माए एक दूसरे के इतने निकट आती गई कि अत मे स्वामी जी को अपने सम्बन्ध के बारे में एक मित्र को लिखते हुए कहना पडा 'समय समय पर ससार मे कुछ ऐसे लोग एक ही समय पैदा होते हैं, जिन्हे एक साथ मिलकर एक सम्मिलित क्षेत्र मे काम करना है—मैं और अजित सिह ऐसी दो आत्माए है, जिनका जन्म एक दूसरे को सहायता करने के लिए हुआ है — हम दोनो एक दूसरे के पूरक और प्रपूरक हैं (वी० आर० ऐज सप्लीमेट एण्ड कम्प्लीमेट) ।'

यही एकमात्र पत्र इस बात को सिद्ध करने के लिए काफी है कि वे दोनो एक दूसरे के कितने सन्निकट थे। अन्यत्र अपने एक सार्वजनिक भाषण मे भी स्वामीजी ने कहा था कि 'भारतवर्ष की उन्नति के लिए मैंने थोडा बहुत जो किया है, वह सभव नही होता, यदि मेरी मुलाकात खेतडी के राजा से नहीं हुई होती।' (१२ दिसम्बर, १८९७ को ब्रह्मवादिन मे स्वामी सदानद की रिपोर्ट के आधार पर)।

स्वामीजी और राजा अजीतसिंह का प्रथम मिलन

राजपूतानेवालो का शिमला, मसूरी या दार्जिलिग,-आबू का पहाड है। वह शीतल और स्वास्थ्यकर स्थान है। गर्मी के मौसम मे गवर्नर जरनल के राजपुताना स्थित एजेंट का आफिस भी आबू मे रहता था। ग्रीष्मकाल मे राजपूताना के धनिकवर्ग भी आवू प्रस्थान करते थे। उसी समय राजा, महाराजा, रईस सब लोग आबू आते जाते रहते थे। खेतडी के राजा अजीतसिंह ने आबू मे एक मकान खरीद लिया था जो खेतडी-हाउस के नाम से प्रसिद्ध था। यह जिस समय का वर्णन है उस समय राजा अजीतसिंह आबू मे थे। यह घटना सन् १८९१ ई० जून मास की थी। (२ जून को स्वामी विवेकानन्द भी, एक दिन राजा अजीतसिंह के

निजी सचिव मुन्शी जगमोहन लाल[१५] का अपने एक मित्र के साथ स्वामीजी के पास जाना हुआ। मध्यान काल का समय था। स्वामी जी आराम कर रहे थे। लेटे-लेटे उनकी आखें लग गई। केवल कोपीन और गेरुआ वस्त्र ही उनका परिधान था। साधु को सोया हुआ देखकर मुशीजी ने सोचा जैसे चोर उच्चको की तरह दूसरे साधू घूमते फिरते हैं वैसा ही यह भी होगा। थोडी देर मुन्शीजी को प्रतीक्षा करनी पडी।

उसी समय स्वामीजी की निद्रा खुली और तत्काल मुशीजी ने सबसे पहला यही प्रश्न किया, 'स्वामीजी, आप तो हिन्दू साधु हैं फिर मुसलमान के घर मे किस तरह रह रहे हैं। कभी न कभी तो आपका भोजन मुसलमान से छू ही जाता होगा।'

इस परम स्वामीजी ने उत्तेजित होकर कहा आप क्या कहते है ? मैं सन्यासी हू। आपके सब प्रकार के विधि निषेध से ऊपर हू। मैं भगी के साथ भी भोजन कर सकता हू। इससे भगवान के अप्रसन्न होने का मुझे भय नही है, क्योकि यह शास्त्र द्वारा भी अनुमोदित है। फिर भी, आपका और आपके समाज कर डर अवश्य है। आप लोग तो शास्त्र और भगवान की परवाह भी नही करते। मैं तो देखता हू कि विश्वप्रपच मे ब्रह्म सर्वत्र प्रकाशित है। मेरी दृष्टि मे ऊच नीच नही है। शिव। शिव।

जव स्वामीजी वोल रहे थे तो ऐसा लगता था मानो विजली चमक रही है। मुशी जगमोहन लाल चुपचाप सुनते रहे। उनके मन मे यही भाव जागरूक हो रहा था कि इन स्वामीजी का खेतडी के राजा साहब से अवश्य परिचय होना चाहिए। उन्होंने निवेदन किया कि क्या आप कृपा करके राजा साहब खेतडी से मिलने के लिए उनके स्थान पर पधारेंगे? स्वामीजी बोले, 'अच्छी बात हैं परसो आऊगा।'

अपने स्थान पर लौट कर मुशी जगमोहन लाल ने जो कुछ वातचीत हुई थी उससे राजा साहव को अवगत किया। इससे राजा साहब स्वामीजी के दर्शन के लिए वडे उत्सुक हुए और बोले, 'मैं स्वय ही उनके दर्शन करने चलूगा।'

यह सवाद कर्ण गोचर होते ही, स्वामीजी राजा साहब के स्थान पर ४ जून १८९१ को उपस्थित हुए। प्राथमिक अभिवादन और कुशल प्रश्नादि के पश्चात् राजा साहव ने प्रश्न किया, 'स्वामीजी, जीवन क्या है ?

राजाजी ने प्रश्न किया—स्वामीजी, जीवन क्या है ?

स्वामीजी ने कहा—प्रतिकूल अवस्था चक्र मे जीव के आत्मस्वरूप दिखलाने का नाम जीवन है।

राजाजी ने फिर प्रश्न किया—अच्छा महाराज, शिक्षा क्या है ?

स्वामीजी ने उत्तर दिया—विचारो का स्नायु से घनिष्ट सम्बन्ध जुडने

का नाम शिक्षा है। जब तक कोई भाव मन में ऐसे दृढ संस्कार के रूप मे स्थापित न हो जाए कि जिससे प्रत्येक शिरा और स्नायु मे उसका कार्य विकसित हो, तब तक भाव वास्तव मे मन की अपनी सम्पत्ति नही कहा जा सकता। उदाहरण के लिए हम श्री रामकृष्ण परमहस देव के जीवन की घटनाओ को ले सकते हैं। किसी धातु के टुकडे के स्पर्श मात्र से ही परमहस देव का शरीर निद्रावस्था मे भी काप जाता था। यह उनके काचन त्याग की सिद्धि थी। उनका सम्पूर्ण जीवन मानो पवित्रता का विकास और मानव मन के लिए सर्वोत्कृष्ट शिक्षा के आदर्श का दृष्टान्त था।

पहले दिन की मुलाकात मे ही स्वामीजी से वार्तालाप कर राजाजी बहुत प्रसन्न हुए खासकर उनके प्रश्नोत्तर के ढग, धर्मज्ञान और स्वदेशभक्ति आदि का राजाजी पर विशेष प्रभाव पडा। इसके बाद वे जब तक आबू मे रहे, तब तक स्वामीजी से बराबर मिलना जुलना होता रहा। धार्मिक तथा अन्यान्य विषयो की बातें होती रहती थी।

स्वामीजी खेतड़ी में

पहली भेंट मे ही स्वामीजी से मिलकर राजाजी बडे प्रभावित हुए और विशेष अनुरोध कर उन्हें अपने साथ खेतडी लिवा लाये। वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होने पर गर्मी का प्रकोप कम होने का सवाद पाकर २४ जुलाई १८९१ ई० को आबू से रवाना होकर राजा साहब स्वामी जी सहित २५ जुलाई को जयपुर पहुचे। एक सप्ताह जयपुर प्रवाश के उपरात ३ अगस्त को रवाना होकर ४ अगस्त को कोट (परगना कोटपूतली-खेतडी स्टेट के आधीन था) पहुचे। वहा से ५ अगस्त को प्रस्थान कर ७ अगस्त को प्रात सवा सात बजे खेतडी पहुचे। दोनो करीब पाच महीने साथ रहे थे। खेतडी मे उनका बड़ा स्वागत किया गया। स्वामीजी राजाजी के आतिथ्य मे रहे। प्रतिदिन धर्म चर्चा होती थी।

स्वामीजी को पढने का अभ्यास विलक्षण था। पुस्तक पढते समय १०-१२ सेकेन्ड मे वे एक पृष्ठ उलट देते थे। और इसी प्रकार दूसरा तीसरा जहा तक पढते उलटते जाते थे। उनके पढने का यही क्रम था। एक दिन राजाजी ने पूछा- स्वामीजी, आप इतनी जल्दी पृष्ठ उलट कैसे देते हैं, क्या इतनी देर मे समूचा पृष्ठ पढ डालते हैं। स्वामीजी ने कहा—राजन् आपने देखा होगा कि जब कोई लडका पहले-पहल पढना सीखने लगता है, तब वह एक-एक अक्षर को ध्यान से देखकर कई बार उच्चारण करता है। इस प्रकार शब्द तक पहुचता है। फिर एक-एक शब्द को कई बार कहता हुआ पूरा वाक्य पढ पाता है। पुन. धीरे-धीरे जब उसका अभ्यास बढने लगता है, तब शब्द, शब्द के पश्चात् पूरे वाक्य पर उस की दृष्टि पडती है। इसी प्रकार जिस मनुष्य मे भाव ग्रहण करने की शक्ति हो जाती है, वह पूरा पृष्ठ एक साथ ही पढ सकता है और उसे पृष्ठ की सभी बातें

एक साथ ही मालूम हो जा सकती है। इसमे कोई विचित्रता या असम्भवता नही है, यह केवल अभ्यास, ब्रह्मचर्य और एकाग्रता का फल है। इन तीनो की सहायता से कोई भी ऐसा अभ्यास कर सकता है। यदि आप चाहे तो आप भी कोशिश करें, शीघ्र ही आपको भी ऐसा अभ्यास हो जाएगा।

एक अवसर पर राजाजी ने प्रश्न किया—स्वामीजी महाराज, विधान या नियम क्या है ? स्वामीजी ने उत्तर दिया—मन जिस प्रणाली से कतिपय वस्तुओं को धारण करता है वही विधान है, वही नियम है। बाह्य जगत् मे नियम की कोई सत्ता नही है। घटनाओ का ज्ञान हम लोगो के मन मे जिस प्रकार होता है, उसी ज्ञान को नियम कहते हैं। मन अपने सस्कारो को विभिन्न किन्तु सजातीय श्रेणी मे विभाग करता है। प्रत्येक श्रेणी के अन्तर्गत विषयो के साधारण लक्षण एक-एक नियम के आकार मे प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार बाह्य वस्तु के संस्कारो पर बुद्धि की प्रतिक्रिया से प्रत्येक नियम की उत्पत्ति होती है।

एक दिन राजाजी ने स्वामीजी से प्रश्न किया—स्वामीजी, सत्य क्या है ? उत्तर मे स्वामीजी ने कहा—पूर्ण सत्य एक और अद्वितीय है। परन्तु साधारणतः जिसको हम लोग सत्य समझते हैं, पर वह आपेक्षित रूप से सत्य है। ज्यो-ज्यो मनुष्य मे ज्ञान की वृद्धि होती जाती है, त्यो-त्यो वह एक सत्य को छोड कर दूसरे सत्य को ग्रहण करता जाता है। मनुष्य जिसको त्याग देता है, वह मिथ्या नही है, किन्तु जिसको ग्रहण करता है, वह और श्रेष्ठत्तर सत्य है। इस अवस्था मे परम सत्य की प्राप्ति नही होती। परम सत्य की प्राप्ति हो जाने पर आपेक्षित सत्य ज्ञान लोप हो जाता है।

स्वामीजी का उत्तर मार्मिक होता था। राजाजी का प्रेम उन पर दिनो दिन बढता गया। राजाजी ने स्वामी जी से पदार्थ-विज्ञान (भौतिक, रसायन, ज्योतिष) का अध्ययन करना आरम्भ किया।

अष्टाध्यायी एवं महाभाष्यादि का अध्ययन

खेतडी आने से स्वामी जी भी एक सुअवसर प्राप्त हुआ। खेतडी के राजपण्डित नारायणदास जी[१६] को पूर्ण वैयाकरण देखकर उनसे स्वामी जी ने अष्टाध्यायी, महाभाष्य आदि का अध्ययन किया। स्वामीजी पण्डितजी का गुरूवत आदर करते थे और सुदूरवर्ती अमेरिका तक से पत्र लिखते समय 'मेरे अध्यापक' कहकर उनका स्मरण करते थे।

अजीतसिंह को पदार्थ विज्ञान और कानून की शिक्षा

जहा स्वामीजी ने खेतडी मे व्याकरण की शिक्षा प्राप्त की, वही अपने परम-स्नेही राजा अजीत सिंह को पदार्थ-विज्ञान का अध्ययन कराया। स्वामीजी की

सम्मति से खेतडी मे लेबोरेटरी स्थापित की गई। छोटे होने पर भी लेबोरेटरी मे आवश्यक सभी उत्तम यन्त्र एकत्रित किये गये थे। महल की छत पर एक टेली-स्कोप भी लगाया गया था, जिसमे तारामण्ड का अध्ययन राजाजी को कराते थे। इस तरह वैज्ञानिक दृष्टिकोण, अभिरूचि जागृत करने एव उसका विकास करने वाले स्वामीजी ही थे।

राजभवन मठ बना

खेतडी मे राजा अजीतसिंह ने स्वामी विवेकानन्द को अपने राजभवन के सर्वोच्च महल मे ठहराया। एक दिन खेतडी के राजपण्डित ने सन्यासी की कौपीन राजभवन पर सूखती देखकर राजा से कहा, 'महाराज ! मेरी बात मानें तो सन्यासी को रात दिन राजभवन मे रखना अच्छा नही। जहा सन्यासी की कौपीन सूखती है वहा राज्यलक्ष्मी निवास नही करती। राजभवन मठ बन जाता है।' राजा अजीतसिंह ने बडे सहज भाव से उत्तर दिया, 'मुझे राज्यलक्ष्मी से कही अधिक यह कौपीन सुहाती है। इस राजभवन को मठ देखना चाहता हू।'

इन बातो को युग वीत गया। कालान्तर पश्चात राजा अजीतसिंह का वह वचन सत्य सिद्ध हुआ। राजस्थान के एक सपूत के सतप्रयास से यह राजभवन मठ बन गया। लाखो की लागत का यह विशाल राजभवन आज 'विवेकानन्द स्मृति-मदिर' कहलाता है। खेतडी के राजमहल दीवान-खाना एव जनानी ड्योढी, दो महलो मे रामकृष्णमिशन स्थापित हैं। स्वामीजी खेतडी की प्रथम एव द्वितीय यात्रा मे इन्ही महलो मे ठहरे थे।

वाकयात रजिस्टर

[खेतड़ी स्टेट के (वाकयात रजिस्टर) से विदित होता हैं कि जब तक स्वामीजी आबू एवं खेतड़ी रहे तब तक अजीतसिंह स्वामीजी से प्रतिदिन मिलते रहे— दोनो साथ बैठकर घंटो विद्या सम्बन्धी बातें करते तथा राजा साहब उनको अपने साथ ही भोजन कराते थे।]

स्वामी विवेकानन्द से राजा अजीतसिंह का प्रथम परिचय आबू मे ४ जून १८९१ ई० मे हुआ था। पहली ही भेंट के बाद उनमे घनिष्ठता निरन्तर बढती गई एक-दूसरे को पहचान लिया—यह परिचय इस डायरी से मिलता है। स्वामी जी प्रतिदिन उनसे मिलने जाते थे और शास्त्रोपदेश करते थे। राजा साहब भी सभी अवस्थाओ मे दत्तचित्त होकर उनका उपदेश सुनते थे। खेतडी आने पर भी उनका यह मिलन क्रम नित्य जारी रहा और स्वामीजी जिस स्थान पर खेतडी मे ठहरे थे वहा राजा साहब स्वय जाकर उनके सामने उपस्थित होते थे। स्वामीजी और राजाजी का मिलन मानो कर्मयोग और राजयोग का शुभ सम्मेलन था।

इस डायरी के इन उद्धरणो से यह भी विदित होता है कि राजा अजीतसिंह शास्त्र और सत्सग के प्रेमी थे। उनकी दैनिक दिनचर्या नियमित रूप से चलती थी। बडे-बडे अग्रेज अधिकारियो से उनका मिलना-जुलना था। वे सगीत, शतरज और शिकार के शौकीन थे। खगोल-विद्या मे प्रवीण थे। वेदान्त के परम भक्त थे और सभी विद्याओ के उपासक थे। वेदान्त की शिक्षा स्वामी जी से प्राप्त करके उनकी इस सद्रुचि मे निरन्तर वृद्धि हुई और इसी कारण वे तत्कालीन नरेशो मे सम्माननीय स्थान प्राप्त कर चुके थे।

राजा अजीतसिंह की डायरी (वाकयात रजिस्टर) से विदित होता है कि जब तक स्वामीजी आबू, जयपुर, खेतडी रहे, तब तक अजीतसिंह स्वामीजी से प्रतिदिन मिलते रहे। दोनो साथ बैठकर घटो वेदान्त-शास्त्र-विद्या सम्बन्धी बातें करते तथा दोनो साथ ही भोजन करते थे। साथ ही डायरी तत्कालीन विकसित होती हुई ऐसी हिन्दी का नमूना है जिसको स्थानीय बोलियो मे अपनाया जा रहा था।

"पृष्ठ १२४-१२५:

ता० ४ जून सन् १८६१ ई० मुताबिक मीती जेठ वदी १२ स० १९४७ बिस्पतवार मु० आबू।

६।। बजे अपोड्या हुवा[१७] ········११ बज्या थाल आरोग्यो ·· ··२।। बज्या पोसाख धारण कर बडा साहब कर्नल ट्रेवर साहब से मिलन वास्ते घोडे सवार होकर पधार्‍या रेजीडेंसी की कोठी पर मुलाकात हुई पाछै डाक्टर स्पेन्सर साहब से वाकी कोठी पर मुलाकात हुई। थोडी देर बात करणे के बाद नकी तालाब वाली कोठी महाराज प्रतापसिंहजी कने पधार्‍या पाव[१८] घटो ठेरकर ४।। बज्या वापिस डेरा पधार्‍या। ५ बज्या आबू लारेंस स्कूल मे पधार्‍या (इनाम) तकसीम वगैरह हो रही छी मो जलसो देख्यो—७ बज्या बडा साहब से सीखकर के सब लोग आप आपके गया। महाराज प्रतापसिंहजी व श्री हजूर घोडा सवार होकर साथ साथ डेरा पधार आया—आध घटोक[१९] ठेरकर महाराज प्रतापसिंहजी तो चला गया अर आप किताब मुलाहिजे करणे विराज्या। थोडी देर मे एक सन्यासी विवेकानन्दजी आया वे बगाले देस का अग्रेजी विद्या मे आछी निपुणता का आदमी रह्या सस्कृत की विद्या और साधुताधारी सो वा से कई तरह की वाता होती रही, हरदयालसिहजी जोधपुर वाला मौजूद छा ८ बज्या थाल आरोग्यो १०।। बज्या हरदयालसिहजी तो सीख[२०] कर गया ११ बज्या बात चीत के बाद साधुजी सीख करी वाने जीमवाया गया अर आप आराम फरमायो।

पृष्ठ १२६:

ता० ६ जून सन् १८६१ मीती जेठ व० १४ सवत १९४७ सनीसर मु० आबू

५ बज्यां अपोड्या हुवा हाथ मूह धोयो ७ बज्या पैदल-पैदल हवाषोरी व कोठ्या

मुलाहिजे करणे वास्ते पधार्‌या ९ वज्या पाच्छा डेरा पधार आया चिठ्ठी लिषी १० वजे साधु विवेकानन्दजी आगया १०।। वजे थाल आरोग्यो पाछे साधुजी से अंग्रेजी व सस्कृत की वाता होती रही-१ वज्या आराम फरमायो—

ता० ११ जून सन् १८९१ ई० मुताबिक मीती जेठ सुदी ५ सवत् १९४७ का वीरसपत मु० आवू

पृष्ठ १२९-३०

६।। वज्या हाथ मूह धोया वीचका कमरा मे वीराज्या सवा आठ वज्या अैरनपुरा की फौज का अफसर कर्नल परसी स्मिथ और कैंटिल साहव फौज वीकानेर का आया वीचका कमरा मे कुरस्या पर वैठ्या १५ मिनट तक वाता कर के वे तो सीष कर गया श्री हजुर भीतर का कमरा मे पधार के वीराज्या सन्यासी विवेकानन्दजी आया वा से विद्या सम्वन्धी वाता हुई १०।। वज्या थाल आरोग्यो सन्यासीजी ने भी उठ ही जीमण करवा दीयो फीर सन्यासीजी कुछ गान कीयो व विद्या सवधी वाता फीर सरू हुई २ वजे सन्यासीजी तो चल्या गया जगमोहनलालजी हाजर होकर रीयास्ती काम काज का कागज मुलाहिजे कराया ·············

पृष्ठ १३३

ता० १५ जून सन् १८९१ ई० मीती जेठ सुदी ९ सवत् १९४७ सोम-मु० आवू

···१० वज्या लाक साहव सीष कर गया स्वामी विवेकानन्दजी आ गया वासैं वात चीत होती रही १२ वज्या थाल आरोग्यो सन्यासी ने भी पास ही जिमाया गया फेर वा से ही वाता शुरू हुई सो ३ वज्या तक होती रही।

ता० २२ जून सन् १८९१ मुतावीक मीती साढ व० १ सोम समत १९४७ मु० आवू

पृष्ठ १३९-४० :

···९ वज्या वाहर का कमरा मे स्वामी विवेकानन्दजी सन्यासी आया हुवा वैठ्या छा उठे पधार कर विराज्या स्वामी से ईलम की चरचा होती रही ११।। वजे थाल आरोग्यो स्वामीजी ने भी पास ही जीमाया पाछै श्री हजूर साहव तो पालखा[21] पर भीतर का कमरा मे लेट्या रहकर अखबार मुलाहिजे फरमाया[22] स्वामीजी वीच का कमरा मे विराज्या २।। वजे वीच का कमरा मे आ विराज्या सो विद्या सम्वन्धी चरचा वारता स्वामीजी से ५ वजे तक होती रही। ५ वजे स्वामी जी सीष कर गया।

ता० २३ जून सन् १८९१ ई० मुताविक मीती साढ वदी २ मगल समत १९४७ का मु० आवू

·· स्वामी विवेकानन्दजी आ गया सो कोठी मे वासै वात चीत हुई वारा वजे

थाल आरोग्यो स्वामीजी ने भी कर्नेही[२३] जीमवाया पाछै पालखा पर लेट गया अखवार मुलाहिजे कीया आराम फरमायो ।

ता० २४ जून सन् १८९१ ई० मीती साढ व० ३ संमत १९४७ बुधवार मु० आवू

७ वजे अपोड्या हुवा चुरट आरोगी[२४] हाथ मु धोता बीच का कमरा मे विराज्या पीकाक स्हाब वगला मे नाहर मगावा को हुकम दीयो सतरज को सूगल हुवो कवर स्योनाथ सिंहजी आया वैठ गया साढे आठ बज्या नाहर आयो पीकाक स्हाव षाल काडवा वाला चमार नाथ्या ने साथ भेज्यो सो रूवरू वैठकर षाल कढवाई गई ९। वज्या कवर तो सीष कर गया ९।। वज्या पीकाक स्हाव आया षाल कढती घडेक[२५] ठैर कर देष गया सेर की चरवी वगैरह वटवा दियो गयो षालने सूकादी[२६] स्वामी विवेकानन्दजी आ गया सो कोठी मे वासें वातचीत हुई १२ वज्या थाल आरोग्यो स्वामीजी ने भी कनेही जीमाया पालषा पर लेट कर अखवार मुलाहिजे फरमाया ३ वजे आराम फरमायो ४।।। वज्या अपोडया होकर वाहर का कमरा मे पधार कर स्वामी विवेकानन्दजी से वात चीत सूरू हुई ५ वज्या ठाकर मुकन्दसिहजी छलेसर (जलेसर) का अलीगढ का पास का मय हरवीलासजी वी० ए० प्रेसीडेंट आर्य समाज अजमेर के माफिक करार याफत[२७] आया श्री हजुर स्हाव कुरसी के पास खड्या छा । वै आया जद मुजरा मालुम करके पहली ठाकर मुकन्दसिहजी पाछै हरवीलासजी नजर दीषाइ[२८] हाथ लगाकर वापीस करदी गई आप वीराज गया वानें भी कुरस्या पर वैठा लीया स्वामीजी भी एक कुरसी पर वैठ गया आद घटोक वाता हुई वा ठाकुर मुकन्दसिहजी आपणू हारमुनीयम वाजो वजायो पाछै वै तो सारा सीख कर गया—श्री हजुर स्हाव घोडे सवार होकर होकर हवाषोरी वास्त पधार गया···

पृष्ठ १४६ .

ता० २७ जून सन् १८९१ ई० मिती साढ व० ६ समत १९४७ का सनीसर मु० आवु

···स्वामी विवेकानन्दजी आ गया सो वीच का कमरा मे वीराजकर वासे वात करता रह्या । ११।। वज्यां थाल आरोग्यो स्वामीजी ने भी पास ही जीमाया। १२ वज्यां पालट साहव से मिलणें वास्ते पधार्‍या १५ मिन्ट ठहर कर पाछा डेरा पधार आया थोडी देर तो स्वामीजी से वात करी पाछै हारमुनीयम वाजो वजायो स्वामीजी गाता रह्या फेर स्वामीजी से बातचीत ४ वज्या तक होती रही···

पृष्ठ १५३ ·

ता० ४ जोलाई सन् १८९१ ई० मिती साढ व० १३ समत १९४७ का सनीसरवार

···फेरू सतरज को सुगल एक बजे तक हुयो ईतना ही मे स्वामी



(स्वामी जी के परिव्राजक वेश का अलवरीय भक्तो द्वारा जयपुर मे खिचवाया गया पहला चित्र)

स्वामी विवेकानन्द
स्वामी विवेकानन्द—राजस्थानी साफा (टरबन) कमरखी (चोगा)
पहने सर्वधर्म परिषद मे



स्वामी अखण्डानन्द (स्वामीजी के गुरुभाई और सहकारी कार्यकर्ता)

(स्वामीजी के कृपापात्र) खेतड़ी के दीवान मुन्शी जगमोहनलाल

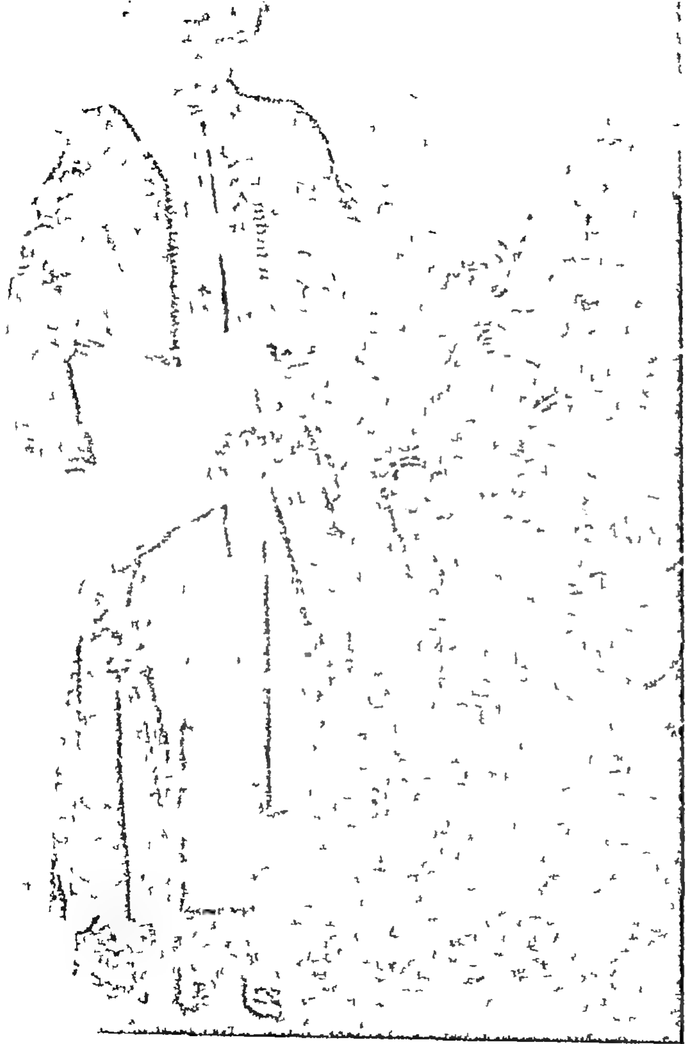
खेतडी के राजपण्डित नारायणदास शास्त्री (स्वामीजी ने आपसे पाणिनीकृत अष्टाध्यायी का अध्ययन किया)



किशनगढ़ राज के वकील मुन्शी फैज अली (आबू मे स्वामीजी आपके पास ही किशनगढ हाऊस मे ठहरे थे)

किशनगढ हाऊस-जिसमे स्वामीजी मुन्शी फैजअली के पास ठहरे

चम्पा गुफा (आबू) जहा स्वामी साधनारत रहे



महाराज कुंवर उम्मेदसिंहजी (अजीतसिंह के जामाता)

◀ ठाकुर हरिसिंह लाडखानी (जयपुर राज के सेनापति)



प० झावरमल्ल शर्मा (अरविन्द के सौजन्य से)

स्वामी विवेकानन्द

विवेकानन्दजी सन्यासी आ गया सो बीच कमरा मे बीराज कर वासें विद्या सबधी वातां होती रही ·

पृष्ठ १५५ :

ता० ६ जोलाई सन् १८९१ ई० मीती साढ बु०ऽऽ स० १९४७ का सोमवार मु० आबु

···घटोक ठेरकर महाराज परतावसिहजी तो ठाकर फतेहसिहजी व बडा स्हाव के चल्या गया अर आप कोठी मे बीराज्या रह्या पाछै स्वामी विवेकानन्द जी सन्यासी आ गया वासें वरावर का कमरा मे विराज कर वाता करी ··

ता० ८ जोलाई सन् १८९१ ई० मीती साढ सुदी २ समत १९४७ का बुधवार मु० आबु

···स्वामी विवेकानन्दजी से वाता हुई ··

पृष्ठ १५७-५८-१५९ .

ता० ९ जोलाई सन् १८९१ ई० मीती साढ सुद ३ समत १९४७ बीसपतवार मु० आबु

···जगमोहनलाल जैपुर पेतडी का कागद मालुम कीया पाछै स्वामीजी व जगमोहनलालजी मे तथा थोडी देर पाछै पिस्तनजी से वाता हुई। · थोडी देर ठाकर मुकुर्दसिह जी हारमुनीयम वाजो वजायो ५॥ बजे वै तो सीष कर गया और आप हाथ मु धोयो ६। वज्या क्लव मे पधार्‌या आज कवर स्योनार्थसिह जी त्रफ से जाफत ठाकरा फतेहसिहजी की कोठी नकी तलाववाली पर छी सो क्लव मे पधारती बखत फरमा गया कि लोगवाग क्लव मे ही कपडा पहर कर आज्यावो उठासें नकी तालाववाली कोठी साथ-साथ चालणू होसी ·

श्रीहजुर सवा सात वजे क्लव मा से स्यामजी सीकर तथा और लोग बाग डेरा काने साथ लिया लेक-हाउस (Lake House) पधारया उठे ठाकर फतेसिहजी मील्या मुजरो कीयो बीराज गया सोदगी जीमणेवाला[34] भा डेरा जीमकर वठे पूहच गया थोडी देर सतरज को सुगल हुयो डाक का कागज मुलहिजा फरमाया स्वामी विवेकानन्दजी से वाता होती रही ११॥ बजे थाल आरोग्यो अेक तरफ स्वामी विवेकानन्दजी वैठ्या १२ वजे जीमण हो चुक्यो···

पृष्ठ १६० .

ता० ११ जोलाई सन् १८९१ ई० मीती साढ सुदी ५ सनीसर स० १९४७ मु० आबु

···७ वजें अपोड्या हुया चुरट आरोगी हाथ मूह धोया सनदी कागज[35] मुलाहिजे कीया चिठी लिषी ११ बजे थाल आरोग्यो पाछे स्वामी विवेकानन्दजी से बात हुई ··

पृष्ठ १६ :

ता० १४ जोलाई सन् १८९१ ई० मीती साढ सु० ८ समत १९४७ का मगल

मु० आबु

बिच का कमरा मे विराज्या सतरज को सुगल हुवो ११ वजे थाल आरोग्यो स्वामी विवेकानन्दजी आया वासें बात चीत इलमी या किताबी मामलात मे होती रही···

ता० १७ जोलाई सन् १८९१ मीती साढ सुदी ११ स० १९४७ का सुकरवार

मु० आबु

पृष्ठ १६३ ·

···१२ वजे थाल आरोग्यो फेर बीच का कमरा मे वीराजकर स्वामी विवेकानन्दजी से वातचीत हुई ।

पृष्ठ १६४-६५ :

ता० १८ जोलाई सन् १८९१ ई० मीती साढ सु० १२ समत १९४७ का सनीसरवार मु० आबु

८ वजे अपोडया हुवा हाथ मु धोकर घोडे सवार होकर ९॥ वजे कोठी परीदी जें मे पधार आया बीराजकर बात करता रह्या १०॥ वजे ठाकर फतेहसिंहजी आया वासें बात चीत हुई घटो पुणेक[36] ठेर कर कोठी चोत्रफ से देषी ठाकर तो सीष कर गया । १२ वजे थाल आरोग्यो १ वजे वडा स्हाव के पधार्‌या वातचीत करके आद घटो ठेर कर पाछे डेरा ने कोठी पधार आया कोठी का वरामडा मे वीराज कर सतरज को सुगल हुवो वावत नागल कोठी के २१ वीरामण को जीमण करायो गयो वीरामण का भोजन से पहली कोठी मे अगनी होत्र करायो गयो वीरामण जीमण वाला ने टको टको दक्सणा[37] को दियो गयो ४ वजे हाथ मू धोकर ५ बज्यां क्लव मे पधार गया उठे पेल हुयो व आरसकिन साव से बात चीत हुई पाछे पीकाक स्हाब के साय वाकी कोठी पर पधार गया वासें उठे वात चीत होती रही ८॥ वजे घरु कोठी मे पधार आया आज नागल कोठो की बावत जीमणे को वन्दोवस्त सव तरा को करायो गयो सौ मेज थाला कै वास्ते लगाई गई चोतफ षुरसी लगाई गई स्वामी विवेकानन्दजी आया वासें बात हुई चोबेजी को सितार सुण्यो ठाकर फतेहसिंहजी राठोड व ठाकर मुकुदसिंहजी चौहाण छलेसर व मानसिंहजी जामनगर का ने वुलाया छा सो वै आया ठाकर फतेहसिह जी के साथ पाच आदमी, मुकुदसिंहजी के साथ एक और मानसिंहजी के साथ एक आदमी आयो सरदार पहली तो बीराज्या वीराज्या दारू पीता रह्या[38] व वाता करता रह्या १९ वजे कुरस्या पर वीराजकर जीमण हुयो जीमण षासा मेज के सामिल तो ई मुजव बैठ्या श्री हजुर, ठा० फतेहसिंहजी, ठा० मुकुदसिंहजी, मानसिहजी जामनगर, स्यामजी लाडषानी सीगासन का, मोतीसिंहजी नाथावत हमराही ठा० फतेहसिंहजी, केसरजी हमराही ठा० फतेहसिंहजी बीजजी चिराणा

का—बराबर मे एक थाल तो मेज दूसरी पर स्वामी विवेकानन्दजी के अर दूसरी कानी १ मेज दूसरी पर बाबू नेकरामजी कै लाग्यो जीमणे होतो रह्यो बाद जीमणै के थोडी देर बीराज्या रह्या पाछे ठाकर फतेहसिंहजी व ठाकर मुकुदसिंह जी व मानसिंहजी तो सीष कर गया अर श्रीहजुर साब हारमुनोयम बाजा को सुगल फरमायो डेड बजे आराम फरमाओ आज से डेरो ऐं कोठो मे आ गयो।

नोट—श्रीमान् राजा साहब २४ जुलाई १८९१ की हाथ गाडी मे ११। बजे आबू से रवाना होकर खारची स्टेशन से ट्रेन मे सवार हुए थे-ट्रेन अजमेर होती हुई २५।७ को सवेरे ५ वजे जयपुर पहुंची। ठाकर हरिसिंहजी, मुशी जगमोहन लालजी, लाला जमनालालजी वकील, लाला श्योबकसजी, पर्नेसिहजी वकील, सीकर का पडित लक्ष्मीनारायणजी, गोपाल सहायजी ने हाजर होकर नजर करी ५॥ वजे डेरा पधार्‌या (वाकआत रजिस्टर पृष्ठ १६९)

पृष्ठ १६९ :

ता० २६ जुलाई सन् १८९१ ई० मीती सावण बदी ५ समत १९४७ का दीतवार मु० जैपुर

७ वज्या अपोड्या हुया चुरट आरोगी हाथ मु धोयो ८॥ बज्या उतरादा[३९] महल मे बीराज्या लोगवागा व स्वामी विवेकानन्दजी से बाता होती रही। १० वज्या स्नान कर थाल आरोग्यो······

पृष्ठ १७०

ता० २७ जोलाई सन् १८९१ ई० मीती सावण बुदी ६ सोमवार स० १९४७ मु० जैपुर

······लोगवागा से वाता होती रही व ठाकर हरीसिंहजी, स्योबकसजी सीकरका स्वामी विवेकानन्दजी १० वज्या थाल आरोग्यो १०॥ बज्या आराम फरमायो।

पृष्ठ १७१ :

ता० २९ जुलाई सन् १८९१ ई० मीती सावण बु० ८ स० १९४७ का बुधवार मु० जैपुर

······दरवाजा ऊपर का महल मे विराज सतरज को सुगल फरमायो व दारु आरोगता रह्या स्वामी विवेकानन्दजी से बाता होती रही···

ता० २ अगस्त सन् १८९१ ई० मीती सावण बु० १३ समत १९४७ का दीतवार मु० जैपुर

······(शामको) हवाषोरी वास्ते पधार्‌या ७ बज्या वापस पधार्‌या नारायणसिंहजी, भादरसिंहजी, स्वामीजी वगैरह से बात होती रही···

नोट—३ अगस्त १८९१ को जयपुर से शाम को रेल मे सवार हुए १-४

पर रेल खैरथल पहुची स्टेशन पर ठाकर हरनार्यासहजी चाकोटीका व जोरावरसिहजी खेतड़ी से सवारी लेकर आए हुए मौजूद थे। रात को वहां आराम फरमाया—ता० ४ अगस्त को १० बजे कोट पहुचकर मुकाम किया और ५ अगस्त को रवाना होकर ७ अगस्त को सवेरे ७॥ बजे खेतड़ी पहुचे (सावण सुदी ३ के दिन)।

ता० ६ अगस्त सन् १८९१ मीती सावण सुदी ५ समत १९४७ का दीतवार

पृष्ठ १८१

७ बज्रे अपोड्या होकर हाथ मु धोया सलामवाला की सलाम हुई नहार की सिकार आवुजी पर करीछी वैंको पाल मुलाहिजे फरमाई मनान मामुली फरमाकर थाल आरोग्यो मुसाहव लोग आ गया अरज मारूज[40] कर ११ वज्या यह तो चल्या गया स्वामी विवेकानन्दजी आवुजी मे माथ आया हुवा छा सो आया अगरेजी की वातचीत होती रही २ वज्या स्वामीजी तो चल्या गया अर आप आराम फरमायो-३ वज्या अपोड्या हुवा हजामत वणवाई हाथ मु धोयो छतरी मे आ वीराज्या छाट आ गई[41] पीछे छाट थम गई जद वगी सवार होकर अजित निवास पधार्या लान टेनिस ष्याल हुयो-दिन छिप्या विराजकर दारु आरोगी[42] व स्वामी विवेकानन्दजी से वात हुई ७ वज्या वापस पधार दीवाणखाना की छत पर वीराज्या…

पृष्ठ १८३ :

ता० १३ अगस्त सन् १८९१ ई० मीती सावण सुदी ६ समत १९४७ का वीसपतवार

७॥ वज्या सलामीवाला[43] की सलाम हुई स्वामी विवेकानन्दजी आया वातें वात चीत करी माईक्रासकोप विलायत से सुधरकर आई छी सो मुलाहिजे फरमाता रह्या…

पृष्ठ १८४ ·

ता० १५ अगस्त सन् १८९१ ई० मीती सावण सुदी ११ सनीसर समत १९४७ का

माईक्रासकोप मुलाहिजे होती रही ६ वज्या स्वामी विवेक नन्दजी आ गया किताब व वाजा को सुगल हुयो ११ वज्या थाल आरोग्यो स्वामीजी ने भी कनैही जीमाया…

ता० १९ अगस्त सन् १८९१ ई० मे मीती सावण सुदी १५ स० १९४७ बुधवार

पृष्ठ १८८

…पाछै श्री हजुर तो मदर का महल मे पधारकर गलीचा पर वोराज्या-स्वामी विवेकानन्दजी व पडित लक्ष्मीनारायणजी व पडित नारायणदासजी से

शास्त्र विसे मे बाता होती रही...
पृष्ठ १८६

ता० २० अगस्त सन् १८९१ ई० मीती भादवा बु० १ समत १०४७ का बीसपतवार मु० तलाव (खेतडी)

७ वज्या पधारकर बुरज मे बीराज्या डाक का कागज मुलाहिजे फरमाया चुरट आरोग कर हाथ मु धोया मदर का महल मे पधार बीराज्या सलामी लोगा की सलाम हुई माईक्रासकोप मुलाहिजे फरमाता रह्या स्वामी विवेकानन्दजी से बाता होती रही मुनसी जमीरअलीजी आया एक किताब मुलाहिजे फरमाता रह्या थोडी देर बाद व तो चल्या गया १० वज्या पडत गोपीनाथजी आया मिन्ट ४ ठेर कर चल्या गया साह अरजनदासजी सोभालालजी आया सलाम कर चल्या गया सनान नित नेम अगनहोत्र मामुली[४४] फरमायो ठाकर रामबकसजी आया अरज कर चल्या गया थाल आरोग्यो पालषा पर लेट गया स्वामी विवेकानन्दजी से सासत्र बिसे मे बाता होती रही।

ता० २२ अगस्त सन् १८९१ ई० मीती भादवा बु० ३ समत १९४७ का सनीसरवार मु० तालाव

पृष्ठ १९१

...गगासहायजी हाजर होकर एक घटा तक हाथ षरच को काम[४५] मुलाहिजे करायो स्वामी विवेकानन्दजी आ गया सासत्र बिसे मे बाता होती रही व किताब मुलाहिजे फरमाता रह्या ..

पृष्ठ १९३

ता० २४ अगस्त सन् १८९१ ई० मीती भादवा बुदी ५ समत १९४७ का सोमवार मु० तलाव

बठा सें पधार बाग मे स्वामी विवेकानन्दजी के डेरे पधार वा सें बात करी ८ वज्या (रात) वापीस तालाव पर पधार भीतर पधार गया...

पृष्ठ १९३

ता० २५ अगस्त सन् १८९१ ई० मीती भादवा बुदी ६ समत १९४७ का मगल मु० तलाव

...स्वामी विवेकानन्दजी आया वा से बाता करता माईक्रासकोप देषता रह्या।

पृष्ठ १९४

ता० २६ अगस्त मन् १८९१ ई० मीती भादवा बु० ७ समत १९४७ का बुधवार मु० तलाव

...२ बज्या स्वामी विवेकानन्दजी आया वा से वातां हुई ५॥ बज्या अजीत

निवास पधार्‌या···

पृष्ठ १९६ .

ता० ३० अगस्त सन् १८९१ ई० मीती भादवा बु० ११ समत १९४७ का दीतवार मु० तलाव

···वीणा को सुगल हुयो स्वामी विवेकानन्दजी आया सो वां से वाता होती रही किताव मुलाहिजे फरमायी···

ता० ३१ अगस्त सन् १८९१ मीती भादवा बु० १२ समत १९४७ का सोमवार मु० तलाव

पृष्ठ १९७ :

···स्वामी विवेकानन्दजी आया वा से वाता होती रही व कीताव मुलाहिजें करता रह्या···

पृष्ठ १९८ :

ता० १ सितम्बर सन् १८९१ ई० मीती भादवा बु० १३ समत १९४७ का मगल मु० तलाव

···विवेकानन्दजी आ गया सो वा से वात करता रह्या व किताव पढता रह्या······

पृष्ठ २१० :

ता० १३ सितम्बर सन् १८९१ ई० मीती भादवा सुदी १० समत १९४८ दीत मु० तलाव

···छतरी ऊपर की मे बिराज्या स्वामी विवेकानन्दजी व पजाबी साईं व जगमोहनलाज जी के आपस मे दलील होती रही सो सुणता रह्या ९ वज्या भीतर पधार गया······

पृष्ठ २१२ :

ता० १६ सितम्बर सन् १८९१ ई० मीती भादवा सुदी १३ समत १९४८ बुधवार मु० तलाव

···१२ बज्या स्वामी विवेकानन्दजी आ गया सो वां सें वाता होती रही···

पृष्ठ २१८ :

ता० २० सितम्बर सन् १८९१ ई० मीती आसोज बदी ३ स० १९४८ का दीतवार मु० तलाव

···१२ बज्या मुसाहब लोग तो चल्या गया अर कीताव मुलाहिजे फरमाई स्वामी विवेकानन्दजी आ गया सो बीच-बीच मे वा से भी बाता होती रही ·

पृष्ठ २२० .

ता० २२ सितम्बर सन् १८९१ ई० मीती आसोज बुदी ५ स० १९४८ का मंगल मु०तलाव

"२ बज्या सराद हो चुक्यो जद थाल आरोग्यो फेर कीताब ही देषता रह्या स्वामी विवेकानन्दजी आ गया सो वा से बात चीत होती रही…

पृष्ठ २२०

ता० २३ सितम्बर सन् १८६१ ई० मीती आसोज बु० ६ समत १६४८ का बुधवार मु० तलाव

…स्वामी विवेकानन्दजी आ गया वा से वात चीत हुई व कीताब देषता रह्या…

पृष्ठ २२३ .

ता० २७ सितम्बर सन् १८६१ ई० मीती आसोज बुदी १० स० १६४८ का दीतवार मु० बघ अजित सागर

…२॥ वज्या स्वामी विवेकानन्दजी आया वा से बाता होती रही ..

पृष्ठ २२४ :

ता० २६ सितम्बर सन् १८६१ ई० मीती आसोज बु० १२ समत १६४८ का मगलवार मु० तलाव

…बाद सराद होणे के ११ वज्या थाल आरोग्यो पालषा पर लेट गया कीताव पढता रह्या स्वामीजी से बात करता रह्या…

पृष्ठ २२५ :

ता० ३० सितम्बर सन् १८६१ ई० मीती आसोज बु० १३ स १६४८ का बुधवार मु० तलाव।

११ वज्या बाहर पधार मदर का महल मे पालषा पर लेट गया कीताब मुलाहिजे फरमाता रह्या स्वामीजी से बाता होती रही ..

पृष्ठ २२५ .

ता० १ अक्तुबर सन् १८६१ ई० मीती आसोज बु० १४ सं० १६४८ का मु०—तलाव

अजित निवास पधार्‌या लान टेनिस को ष्याल हुवो व सध्या अगनहोत्र[४६] कर तलाव पर वापीस पधार्‌या—छतरी ऊपर की मे बीराज्या स्वामीजी से बाता होती रही…

नोट सध्या नही करने वाले अर्थात नित्यकर्म न करने वाले व्यक्तियो को पक्ति से अलग बैठाकर भोजन कराया गया। अजीतसिंह धार्मिक आचरण के व्यक्ति थे।

ता० ४ अकतूबर सन् १८६१ ई० मीती आसोज सु० १ स १६४८

पृष्ठ २२७-२८ :

४ वज्या तडकाऊ का वाहर पधार हाथ मु धोकर ४॥ बज्या घोडे सवार होय जीण माताजी के पधारणे वास्ते रवाना हुया—८॥ वज्याँ करीव गुढे—उठे डूगर

मे सिवजी का मकान मे एक गुसाईं तपे छो सो वैंकी तारीफ सुण राषी छी वैंका दरसण करबा पधार्‌या—घोडे सवार होकर धरमशाला मे डेरो तजबीज हुयो छो सो वठे पधार कुरसी पर बीराज्या स्वामीविवेकानन्दजी व आपकै वातां होती रही।—छै बज्यासीक च्यार कास पर सिगनोर दाषिल हुवा ·

नोट—सिगनोर से ५ अकतूबर को रवाना होकर बाजोर होते हुए सीकर पहुचे ता० ६ अकतूबर को राव राजा माधोसिहजी सीकर सहित जीणमाता के पधार कर ६ बजे दर्शन किये और ६-१३ बजे वापस सवारी सीकर गढ मे दाखिल हुई सीकर से १० अकतूबर को रवाना होकर ११ अकतूबर को वापस खेतडी पहुचे (पृष्ट २२६-४२) जीणमाता की यात्रा मे स्वामीजी साथ थे यह ऊपर के उल्लेख से स्पष्ट है।

पृष्ठ २६६.

ता० १२ अकतूबर सन् १८६१ ई० मीती आसीज सुदी ६ तथा १० समत १६४८ का सोमवार (दसेरा)

नोट—दशहरे के शुभोपलक्ष्य मे पूजा, सवारी, जुलूस तथा दरबार के विस्तृत विवरण के बाद भोज होने का वाकआत रजिस्टर (पेज २६१-२६६) मे उल्लेख है—भोज मे सम्मिलित होने वालो मे स्वामीजी का नाम भी दर्ज है। यथा—

···और बिना सन्ध्या करबा वाला कै वास्ते एक न्यारी पगती कर जीमाया गया।

कीसनजी सलैदीजी, को सालगजी मुलकपुरो, बीजजी बकसीरामजी, हरनाथ जी मुलकपुरो, रावतजी चिराणाको, अनजी गोड, भुरजी सलेदीजी को, रामबक्स मुलकपुरो, सेढूसिह बीजजी चिराणा का, बीजजी मुलकपुरो, आसजी लाडषानी, पनजी भुरजी मुलकपर्‌यो, स्वामी विवेकानन्दजी, कविराज बलदेवजी, गुलजी धाभाई सूरजबक्सजी व हरनाथजी राव जवाहरजी।

पृष्ठ २८२ :

ता० २१ अकतूबर सन् १८६१ ई० मीती काती बु० ४ स० १६४८ का बुधवार

· माजी स्हाव उदावतजी को सराद[४७] छो सो जोर जी ने करणें को हुकम फरमायो १ बज्या वे सराद करा चुक्या जद थाल आरोग्यो मुसरफ षा आयो वीण वजती रही ४ वज्यां हाथ मुं धोकर नीचे पधार आमली नीचै चूतरा[४८] पर बीराज्या नटो को तमासो हुयो सो मुलाहिजे-फरमायो ६ बज्या षतम होण के बाद हकीमजी का बाग तक टहलवाने पधार्‌या वापीस पधार स्वामी विवेकानन्दजी का डेरा मे पधार बीराज्या बीराज्य बात-चीत करता रह्या१०॥ बज्यां वठा से उठकर भीतर पधार गया।

पृष्ठ २८३ :

ता० २२ अकतूबर सन् १८९१ ई० मीती कातीक बुदी ५ समत १९४८ का वीसपतवार

८ बज्या बाहर पधार हाथ मु धोयो हजुरी लोगा हाजर होकर सलाम करी —सनान कर थाल आरोग्यो छवि निवास मे बीराज्या वीण को सुगल हुवो कीताव मुलाहिजे फरमाई ४ बज्या हाथ मुँ धोयो नीचे पधार घोडी सवार हुया —फीमलणा पापडा होकर वध्र पूहच्या वध्र के वरले (इधर के) किनारा से नाव मे वीराजकर वध मे सैर करता हुवा बधे पहुच्या ८ बज्या नाव पर से उतर कर वगले पधार बगला की छात पर पधार सीमलनाथजी (साधु सीमलनाथजी जयपुर के महाराज सवाई रामसिंहजी के कृपा-पात्र और उनके पास रहने वालो मे से थे।) से घटोक बाता करी फेर स्वामी विवेकानन्दजी से वाता होती रही।

ता० २३ अकतूबर सन् १८९१ ई० मीती काती बु०६ स० १९४८ सुकरवार मु० वध

•• किताव मुलाहिजे फरमाई ३ बज्याँ स्वामीजी व और लोगवागा से बाता होती रही ••

पृष्ठ २८४.

ता० २४ अकतूबर सन् १८९१ ई० मीती काती बु० ७ स० १९४८ का सनीसर

•••९-२५ मिन्ट गया षेतडी पूहच्या—४ बज्या हाथ मुँ धोयो अजित निवास पधार्‌या ७ बज्या वापीस पधार बरामडा मे बीराज्या ठाकर रामबक्सजी व पंडत गोपीनाथजी अलहदा बात करी पाछे सोभालालजी, जगमोहनजी, स्वामीजी से बाता होती रही १० बज्याँ भीतर पधार गया।

पृष्ठ २८५

ता० २६ अकतूबर सन् १८९१ ई० मीती काती बुदी ९ स० १९४८ का सोमवार

••१० बज्या थाल आरोग्यो कीताव मुलाहिजे फरमाई २ बज्या स्वामी विवेकानन्दजी आ गया वा सें बाता होती रही—

पृष्ठ २८६

ता० २७ अकतूबर सन् १८९१ ई० मीती काती बु० १० स० १९४८ का मगल

••१० बज्या सनान नीतनेम कर छवि निवास मे बीराज्या कीताव मुल हिजे फरमाता रह्या ११ बज्या थाल आरोग्यो जगमोहनजी हाजर होकर कागज मालुम कीया १२ बज्याँ मुसाहब लोग हाजर हुवा रियासती अरज मारुज करता रह्या २ बज्या यह तो गया स्वामी विवेकानन्दजी आ गया सो वा सैं वाता होती रही—

विविदिषानन्द से विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द जिस नाम से विश्व विख्यात हुए, वह नामकरण राजस्थान की ही देन है। यह बात शायद बहुत कम लोग जानते हैं कि स्वामीजी का सर्वजन विदित विवेकानन्द नाम रखने वाले अजीतसिंह ही थे। स्वामीजी अपना नाम विदिषानन्द लिखा करते थे। यह बात उनके पुराने पत्रो से भी प्रमाणित है। खेतड़ी की प्रथम यात्रा मे एक दिन स्वामी जी के पास राजाजी बैठे थे। उन्होंने हंसते हुए कहा—महाराज, आपका नाम बडा कठिन है। बिना टीकाकर की सहायता के साधारण लोगो की समझ मे इसका मतलब नही आ सकता। उच्चारण करना भी सहज नही। इसके अतिरिक्त अब तो आपका विविदिषाकाल (विविदषा का अर्थ है—जानने की इच्छा) भी समाप्त हो चुका। स्वामीजी ने राजाजी के युक्तियुक्त परामर्श को सुनकर पूछा—आप किस नाम को पसद करते हैं? राजाजी ने कहा—मेरी समझ से आपके योग्य नाम है—'विवेकानन्द'। स्वामीजी ने परमानुक्त राजाजी की इच्छा के अनुसार उस दिन से अपना नाम विवेकानन्द मानकर उसका ही व्यवहार आरम्भ कर दिया। यह नाम कितना प्रसिद्ध हुआ, भारतवासियो को कितना प्रिय हुआ—यह लिखकर बतलाने की आवश्यकता नही है। हमारा यह कथन नही है कि स्वामीजी की कीर्ति का कारण उनका यह नया नाम ही था। किन्तु इस घटना से हमारा तात्पर्य केवल इतना ही है कि इससे यह जानने मे सुगमता होगी कि स्वामी जी का राजा जी पर कितना प्रेम था और राजा जी उनका कितना प्रेमपूर्ण आदर करते थे। खेतडी के वाकआत रजिस्टर के अनुसार पहली बार मे ही स्वामी जी का नाम 'विवेकानन्द' दर्ज हुआ है।[1]

राजा अजीतसिंह जब कभी प्रवास मे रहते थे अथवा दौरे मे जाते थे तब जो हिजूरी (सहायक) साथ रहता था। वह कागज व कापियो में अजीतसिंह के प्रातःकाल उठने से सोने तक के काम-स्नान भोजन, विश्राम, इधर-उधर आने-जाने तथा मुलाकात के लिएआने वालो के नाम, समय, उद्देश्य आदि मोटे तौरपर याददाश्त के रूप मे नोट कर लेता था। यह प्रत्येक दिन का निश्चित कार्यक्रम था। राजा

1 खेतडी नरेश और विवेकानन्द (१९२७ई०) ले० झावरमल्ल शर्मा

अजीतसिंह के वापस खेतडी लौटने पर सारे कागजात वाकआत नवीश सभाल लेता था और वह उन कागजो के आधार पर वितरण तैयार करके राजा साहब को सुनाता था। यदि कोई भूलचूक रह जाती तो उसकी दुरुस्ती के बाद वाकआत रजिस्टर मे दर्ज करता था। इसी रजिस्टर मे दर्ज है कि राजा अजीतसिंह से स्वामी विवेकानन्दजी की पहली भेंट सन् १८९१ की ४ जून मे हुई थी। तदनन्तर मिलना जुलना बराबर होता रहा और घनिष्टता बढती गई। तारीख २४ जुलाई, १८९१ को आबू से रवाना होकर २४ जुलाई को राजा अजीतसिंह जयपुर पहुचे और ३ अगस्त को जयपुर से रवाना होकर कोठपूतली होते हुए ५ अगस्त को खेतडी पहुचे थे। स्वामीजी को भी अनुरोधपूर्वक आबू से खेतडी लिवा लाये थे। स्वामी जी के प्रति अजीतसिंह का आकर्षण बढता ही गया। उस आकर्षण के मूल मे पूर्वजन्म के सस्कार के अलावा राजाजी गुणग्राहकता ही मुख्य समझना चाहिए। उस समय तक स्वामीजी की प्रसिद्धि का डका नही बजा था। स्वामीजी को राजा साहब से मिलाने वाले उनके निजी सचिव मुन्शी जगमोहनलाल थे। स्वामीजी के विविदिषानन्द नाम की क्लिष्टता को लक्ष्यकर राजाजी से जो प्रश्नोत्तर हुआ था, उसके साक्षी भी मुशीजी ही थे। नाम सबधी मुशीजी ही थे जिन्होने इस नामकरण के साक्षी होने के रहस्य को प्रकट किया। नाम सम्बन्धी प्रश्नोत्तर किस तारीख या मिति को हुए, इसका उल्लेख वाकआत रजिस्टर मे नही मिलता। कारण यही प्रतीत होता है कि उस समय उक्त कथोपकथन साधारण समझा गया होगा। अतएव राजाजी ने खेतडी पहुचने के बाद अपने सुझाये हुए नाम को प्राधान्य या एकरूपता देने के आग्रह से खेतडी के वाकआत रजिस्टर पे विवेकानन्द नाम दर्ज करा दिया। उन दिनो अपने गुरु भाइयो के साथ को भी तपस्या मे बाधक मानकर बिना उ हे अपना पता-ठिकाना दिये, अज्ञातवास मे ही वे भ्रमण कर रहे थे, इस लिए विवेकानन्द नाम धारण करने की जानकारी खेतडी तथा स्वामीजी तक ही सीमित रही।

सन १८९१ के समाप्ति के पूर्व ही स्वामीजी खेतडी से विदा होकर गुजरात पहुच गये थे। अहमदाबाद, लिबडी, जूनागढ, भडौंच, विरावल, प्रभास, सोमनाथ, पोरबन्दर आदि गुजरात के नगरो मे कई महीने व्यतीत करके बम्बई पहुचे। खेतडी राज्य के शिक्षा विभागाध्यक्ष पडित शकरलालजी शर्मा के नाम बम्बई से भेजा हुआ २० सितम्बर १८९२ का विवेकानन्द नाम स्वीकार करने का पत्र है जो स्वामीजी की प्रकाशित पत्रावली मे स्थान प्राप्त कर चुका है। बम्बई से पूना, हैदराबाद मैशोर, रामनद रामेश्वर और मद्रास आदि दक्षिण भारत के स्थान ही उनके भ्रमण स्थल रहे। वे लौटकर बगाल नही गए। सन् १८९३ मे मुन्शी जगमोहनलालजी मद्रास जाकर तारीख २२ अप्रैल को खेतडी लिवा लाए थे। स्वामीजी उस समय सर्वधर्म परिषद् मे अमेरिका जाने के प्रयत्न मे

लगे हुए थे। खेनडी मे १० मई १८९३ को स्वामीजी प्रस्थानित होकर बम्बई पहुचे थे। उनको अमेरिका के लिए आवश्यक प्रवन्ध एव विदा करने के लिए अजीतसिंह जी ने अपना आदमी मुन्शी जगमोहनलाल को बम्बई तक पहुचाने साथ भेजा था। जयपुर तक राजाजी स्वय गए थे। तारीख ३१ मई १८९३ को स्वामीजी बम्बई मे अमेरिका के लिए रवाना हुए। यो विवेकानन्द नाम ग्रहण करने की घटना समय और परिस्थिति के आवरण मे छिप गई और पार्लियामेंट ऑफ रिलिजन्स "मे भाग लेने के साथ ही विवेकानन्द नाम विश्व भर के लिए वन्दनीय वन गया। वैसे देखा जाए तो एक वेश्या नृत्य द्वारा 'हमारे प्रभु अवगुण चित न धरो' टेक वाले भगत सूरदास का पद गाये जाने पर स्वामीजी ने गद्‌गद होकर गायिका वेश्या को माता सम्वोधित एव क्षमा याचना करने की घटना का उल्लेख भी खेतडी वाकआत रजिस्टर मे नही है, किन्तु सूरदास के उक्त पद को उद्‌धृत कर अपनी सहृदयता का उल्लेख स्वामी जी स्वय कर गये हैं। ऐसी दशा मे वह घटना अमर वन गई। इसी प्रकार खेतडी के राजा अजीतसिंह के अनुरोध पर विवेकानन्द नाम स्वीकार करने की घटना भी स्वामीजी के जीवन इतिहास का एक महत्त्व-पूर्णअग है। इसका उल्लेख काफी पूछताछ करने के वाद स्वामीजी के जीवनी लेखक विदेशी रोमारोला ने भी किया है। स्वामी अखडानन्दजी इसकी जान-कारी रखते थे। अत विवेकानन्द नामकरण विषय मे सदेह करने का कोई कारण नही है। वाद मे सन् १९१६ मे स्वामी विवेकानन्द की पत्रावली मे नाम को एक रूपता दे दी गई और सव जगह एकरूपता देकर विवेकानन्द नाम से ही प्रकाशित की गई।

रोमारोला ने अपनी पुस्तक "The Life of Vivekanand and Universal Gospel" मे लिखा है कि, "मैं पाठको का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहूगा कि 'उनका वास्तविक नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। सन् १८९३ मे अमेरिका प्रस्थान से पूर्व तक उन्होने अपना नाम विवेकानन्द नही रक्खा था।'

मैंने इस सम्बन्ध मे रामकृष्ण मिशन से भी पूछताछ की है। स्वामी अशोकानन्द ने गहन शोध के तमाम परिणाम कृपापूर्वक मेरे लिए सुलभ किये हैं। विवेकानन्द के अन्यतम सन्यासी शिष्यो मे से एक स्वामी शुद्धानन्द, रामकृष्ण मिशन के वर्तमान सेक्रेटरी की निर्णायक साक्षी के अनुसार रामकृष्ण सदा उनको नरेन्द्र नाम से सम्वोधित करते थे, या अधिक सक्षेप मे केवल नरेन ही कहते थे। यद्यपि अपने कुछ शिष्यो को उन्होने प्रव्रजित कर लिया था, परन्तु ऐसा कभी भी उन्होने औपचारिक पद्धति के अनुसार नही किया और नही कभी उनका सन्यासी नामकरण किया। हा, नरेन को उन्होंने 'कमलाक्ष' की उपाधि अवश्य प्रदान की थी, परन्तु नरेन ने इसे तुरन्त ही छोड दी। अपना परिचय गुप्त रखने के उद्देश्य से भारत मे अपनी आरम्भिक यात्राओ मे उन्होने अपने कई नाम रक्खे। कभी वे

अपना नाम स्वामी विविदिषानन्द रख लेते थे और कभी सच्चिदानन्द। इसके अलावा अमेरिका प्रस्थान से पूर्व, जब वे थियासोफिकल सोसाइटी के तत्कालीन अध्यक्ष कर्नल ऑलकोट से अमेरिका के लिए परिचय-पत्र प्राप्त करने के लिए गए, तो कर्नल ऑलकोट उन्हे सच्चिदानन्द के नाम से जानते थे और अमेरिका मे अपने मित्रो से उनकी सिफारिश करने के बजाय उनके विरुद्ध उनको चेतावनी दी। सर्वप्रथम उनके परम मित्र 'खेतडी के महाराज' थे, जिन्होने अमेरिका जाने के पूर्व विवेकानन्द नाम रखने का उन्हें सुझाव दिया। इस नाम का चयन स्वामीजी की 'विवेक शक्ति' लक्ष्य करके किया गया था। नरेन ने इसे स्वीकार कर लिया, शायद कुछ समय के लिए, लेकिन चाहने पर भी वे कभी इसे बदल न सके, क्योकि कुछ ही महीनो मे यह नाम भारत और अमेरिका मे प्रसिद्ध हो चुका था।

मैंने पृष्ठ ८ पर इस नाम की उत्पत्ति का जिक्र किया है, जोकि खेतडी महाराज द्वारा सुझाया गया था। भारतवर्ष मे यात्रा के दौरान उन्होने अपने इतने अधिक नाम रक्खे कि उनकी इच्छा के मुताबिक ही वे अधिकतर अनजाने ही घूमते रहे। अक्टूबर १८९२ मे पूना मे ऐसा हुआ कि तिलक ने जो कि प्रसिद्ध विचारक एव हिन्दू राजनैतिक नेता थे, सर्वप्रथम उन्हें एक महत्वहीन घुमक्कड साधू समझकर उनकी उपेक्षा की। परन्तु जब उनके उत्तरो से उन्हें उनकी विलक्षण बुद्धि तथा ज्ञान का पता चला तो बिना उनका वास्तविक नाम जाने ही उनको दस दिन तक अपने घर मे रखा। बाद मे उन्होने जब समाचार पत्रो मे विवेकानन्द की अमेरिका मे सफलता की गूज सुनी तथा विजेता का वर्णन पढा तब उन्होने उस अजनवी अतिथि को पहचाना जोकि उनकी छत के नीचे रहकर गया था।"

(मत्री रामकृष्णकुटीर, बीकानेर को लिखित पत्र)

२४-४-६३

प्रिय महोदय,

सादर नमस्कार निवेदन। आपका ६-२-६२ ई० का कृपापत्र उत्तर के लिए मेरे पास सुरक्षित है, जिसमे आपने मेरी 'खेतडी नरेश और विवेकानन्द' नामक पुस्तक पढकर प्रसन्नता प्रकट करने के साथ ही स्वामीजी के नाम को लेकर मन मे सशय उठने की भावना व्यक्त की है और मुझसे इसका स्पष्टीकरण चाहा है कि "राजा साहब खेतडी से स्वामीजी के मिलने (सन् १८९१ ई०) के पूर्व सन् १८८८, १८८९, १८९० और १८९१ ई० के पत्रो मे विवेकानन्द नाम लिखा रहने के कारण क्या हैं?"

आपकी इस जिज्ञासा के उत्तर मे निवेदन है कि स्वामीजी के पत्र सर्वप्रथम Epistles of Swami Vivekanand के नाम से अद्वैताश्रम, मायावती (अल्मोडा)

द्वारा First, Second, Third, Fourth, Fifth, Sixth series के रूप मे एक के वाद एक प्रकाशित हुए थे, उनमे सन् १८८८, १८८९ और १८९० तक के पत्रो मे जो बहुत थोडे हैं या तो नरेन्द्र—नरेन्द्रनाथ, सच्चिदानन्द या केवल V. नाम मिलते हैं। यहा यह भी उल्लेखनीय है कि (जैसा मैंने स्वामीजी के गुरु भाई स्वामी अखडानन्दजी से सुना है)—अक्षर उनके विविदिषानन्द नामका सूचक है। किसी पत्र मे स्पष्टतया विविदिषानन्द नाम भी अकित है। विवेकानन्द नाम से स्वामीजी का पहला पत्र उनके खेतडी से जाने के बाद का बम्बई से भेजा हुआ २० सितम्बर १८९२ ई० का पडित शकरलालजी के नाम का है जो उन दिनो खेतडी मे शिक्षा विभाग के अध्यक्ष थे।

तदन्तर जब Letters of Swami Vivekananda नामक पुस्तक मे स्वामी जी के उपलब्ध सभी पत्रो का समावेश किया गया, तब पुस्तक के सम्पादन के समय ही स्वामीजी के इसी नाम को एकरूपता देने के लिए सभी पत्रो मे सर्वत्र विवेकानन्द नाम कर दिया गया। स्वामीजी तो अपने गुरुभाइयो को भी पत्रो मे प्राय. उनके पूर्वाश्रम के प्रिय नामो से ही सम्बोधित किया करते थे, जैसे प्रिय रखाल, प्रिय काली, प्रिय शशि—इत्यादि। ऐसा जान पडता है कि स्वामीजी के पत्रो के सकलनकर्ता सम्पादको के सन् १९१६ ई० तक तो शायद मूल पत्रो मे प्रयुक्त नाम बदलकर विवेकानन्द कर देने का विचार ध्यान मे नही आया था। उसके बाद जो पत्रो के सग्रह छपे हैं उनमे सर्वत्र विवेकानन्द नाम ही बहाल रखा गया।

हा, विवेकानन्द नाम के प्रसग मे The life of Swami Vivekanenda के लेखक प्रसिद्ध फ्रेंच पण्डित Romain Rolland ने भी काफी पूछताछ करने के बाद प्रस्तुत विषय मे एक टिप्पणी लिखी है जो उनके उक्त ग्रन्थ के ८ वें पृष्ठ पर 'परिव्राजक' शीर्षक के साथ ही समाविष्ट है। वह भी आपकी शंका के समाधानार्थ द्रष्टव्य है। इसके अतिरिक्त स्वामी जी के बगभाषा मे दो जीवन चरित्र ग्रन्थ प्रमाणिक माने जाते हैं—जिनमे श्री प्रमथनाथ वसु एम० ए० बि० एल० महाशय का और दूसरा श्री सत्येन्द्रनाथ मजूमदार महोदय का प्रणीत है। इनमें श्री प्रमथनाथ के ग्रन्थ के दूसरे खण्ड के पृष्ठ ३९८ में यो लिखा है— "तोहार ये विवेकानन्द नाम हइयाछिल ताहा तोहार गुरु भाई मेरा केई जानितेन ना कारन स्वामीजी अमेरिका यात्रार अव्याहित पूर्व एई नाम ग्रहन करिया छिलेन। इति पूर्वे तिनि परिचत लोक देर हात एडाईबार जन्य अनेक बार निज नाम परिवर्तन करिया छिलेन। करवन्सनिजे के 'विविदिषानन्द करवनउ 'सच्चिदानन्द' करवनउ वा अन्य किछु बलिया परिचय दितेन, अवषेषे खेतड़ीर राजार एकान्त अनुरोधे विवेकानन्द, नाम ई बजाय राखिया छिलेन"। किमधिकम् विशेष उत्तर में विलम्ब के लिए क्षमा प्रार्थी हू। सधन्यवाद

विनीत

झावरमल्ल शर्मा

विवेकानन्द नाम मीमांसा

श्री रामकृष्ण देव के परम प्रिय शिष्य नरेन्द्र (नरेन्द्रनाथ दत्त) स्वामी विवेकानन्द नाम से जगतप्रसिद्ध हुये। नरेन्द्र का नाम विवेकानन्द कब हुआ और किस प्रकार से इस विषय मे विभिन्न मत प्रस्तुत किये गये हैं। इसका कारण यह है कि स्वामी जी सन्यास ग्रहण के बाद भी अपने निकट परिचित बन्धु-बान्धव इष्टमित्र, गुरुभ्राताओ के साथ नरेन्द्र या नरेन्द्रनाथ नाम से ही परिचित थे और इसी नाम से पत्र व्यवहार करते थे। किसी विशेष कारण से (यथा कोर्ट मे जो जायदाद के बारे मे विवाद चल रहा था) या सहसा ही स्वामीजी अपने सन्यास नाम का व्यवहार बहुत कम ही करते थे। प्रथम अवस्था मे उनका जनता से सम्पर्क कम ही था और जो भी था व्यक्तिगत रूप से था। उस समय वे तीर्थ-स्थानो का तथा हिमालय का भ्रमण करते रहे और विशिष्ट अध्यात्म सम्पन्न व्यक्तियो से मिलकर अपने ज्ञान को बढाने मे तथा आध्यात्मिक शक्ति के संचय मे मग्न थे। जब वे जनता के सम्पर्क मे आने लगे तथा अपने अध्यात्मज्ञान का वितरण करने लगे तव वे अज्ञात रहने की इच्छा से अपना नाम वदलते रहते थे। साधारणत' वे बगाली बाबाजी या 'परमहसजी' शब्दो से ही सम्बोधित किये जाते थे। उनका विवेकानन्द नाम तो वहुत बाद ही प्रचार मे आया और उनके कई गुरुभ्राता तक उससे अवगत नही थे। इन कारणो से उनका असली नाम अर्थात् सन्यास ग्रहण के समय का नाम क्या था और विवेकानन्द नाम कब हुआ इसके वारे मे मत-भेद है। जैसे-जैसे मौखिक या लिखित प्रमाणो की प्राप्ति होती गयी, नाना प्रकार के अनुमान भी होते गये। आज जो सब प्रमाण प्राप्त हैं, उसके अनुसार इस विषय पर कुछ प्रकाश डालने की कोशिश यहाँ की जा रही है।

सप्रति स्वामी गम्भीरानन्द जी ने बग भाषा मे लिखित अपने 'युगनायक विवेकानन्द' (३ खण्डो मे, उद्बोधन कार्यालय, कलिकाता १९६८) मे सभी मतो पर विचार करके इस प्रकार के निर्णय पर आये हैं—

१ स्वामी विवेकानन्दजी के गुरुभाई स्वामी अभेदानन्दजी की 'मेरी जीवन कथा' (बग भाषा मे, पृ० १४०) के अनुसार नरेन्द्र का सन्यास ग्रहण के समय का नाम था' 'स्वामी विविदिषानन्द' था।

२ लेकिन सन्यास के समय नाम का परिवर्तन होने पर भी विविदिषानन्द नाम व्यापक तौर पर व्यवहार मे लाया गया, इसका कोई प्रमाण नही है। हम यह जानते हैं कि परिव्राजक रूप मे भारत का परिभ्रमण करते समय अपना आत्म परिचय गोण रखने के लिए विभिन्न नामो का आश्रय लेते और यह भी जाना जाता है कि विविदिषानन्द नाम के व्यवहार कुछ समय करके उसे त्यागकर उन्होंने

सच्चिदानन्द नाम ग्रहण किया। अन्त मे अमेरिका जाने के पूर्व उनका नाम हुआ स्वामी विवेकानन्द और इसी नाम से वे जगद्रेण्य हुये। (पृ० २३४)

३ स्वामी गम्भीरानन्दजी ने पृ० ३०० पर विविदिषानन्द नाम को छद्म नाम ही कहा है। पाद टीका मे बताया है कि अभेदानन्दजी के अनुसार यह असली नाम था।

४. दूसरे दिन मई १० (१८९३) को स्वामीजी पालकी मे बैठकर खेतडी से रवाना हुये। राजा अजीतसिंह भी उनके साथ जयपुर तक गये। स्वामीजी ने इतने दिन विभिन्न काल मे विभिन्न नाम से आत्म परिचय दिया है। खेतडी आने के पहले वे 'सच्चिदानन्द' नाम का व्यवहार करते थे। खेतडी से विदा होने के पूर्व राजाजी ने उनकी विदाई के लिए डाक दरबार बुलाया और उसमे उनसे इस विवेकानन्द नाम से आत्म परिचय देने के लिये तथा यह नया नाम परिवर्तित न करने के लिए अनुरोध किया। इसी नाम से वह इसके बाद जगद्वरेण्य हुये और हम भी अब से इसी नाम को व्यवहार करेंगे (पृ० ४१६)। नामकरण का श्रेय राजाजी को जाता है।

साधारणत. अभी तक यही धारणा किसी-न-किसी रूप से चली आ रही है कि नरेन्द्र का स्वामी विविदिषानन्द छद्मनाम था। (१) उनके विवेकानन्द नाम धारण मे राजा अजीतसिंह का सुझाव हेतु हुआ और (२) यह नाम अमेरिका जाने के किंचित पूर्व व्यवहार मे आया।

प्रमाणाभाव मे स्वामी जी का मूल सन्यास नाम क्या था, यह निश्चिय करना कठिन है। स्वामी अभेदानन्दजी की आत्मकथा मे उनका सन्यास काल का नाम 'विविदिषानन्द' बताया गया है। स्वामीजी ने यह नाम कब तक और कहाँ पर उपयोग किया इसका भी कोई ठोस प्रमाण नही है। केवल यह कह सकते हैं कि परिव्रज्य के प्रथम अवस्था मे कभी-कभी उन्होंने इस नाम का भी व्यवहार किया होगा। विवेकानन्द नाम का सयोग जीवनियो मे करीब १८९३ से दिखायी देता है। शायद १८९३ ई० के पहले विवेकानन्द नाम से बहुत कम ही लोग परिचित थे, उनके गुरुभाइयो मे से भी कोई नही।

स्वामीजी की राजा अजीतसिंह से पहली भेंट आबू पर्वत मे हुई। खेतडी राज के वाकआत पजिका (Waqyat Register) के अनुसार यह भेंट ४ जून १८९१ को हुई। विवेकानन्द नाम सर्वप्रथम उनमे ही उल्लेख है। यथा· "थोडी देर मे डाक सन्यासी विवेकानन्दजी आया। वे बगाले देश का अग्रेजी विद्या मे अच्छी निपुणता का आदमी रह्या सस्कृत की विद्या और साधुताधारी सो वा से कई तरह की बार्ता होती रही···११॥ बज्या बातचीत के बाद साधुजी सीख करी वान जीमवाया गया।"

राजा अजीतसिंह के दीवान मुन्शी जगमोहनलालजी के के अनुसार स्वामीजी ने अपना नाम राजाजी की सलाह से विविदिषानन्द से

विवेकानन्द धारण किया। मुन्शीजी की यह बात तो मौखिक है और बहुत समय के बाद कही गयी फिर भी इसमे कुछ सत्यता अवश्य होगी। इन सब बातो को ध्यान मे रखते हुए हम इस अनुमान पर पहुच सकते हैं कि स्वामीजी जब राजस्थान मे आये, विविदिषानन्द, एव सच्चिदानन्द इन दोनो नाम से जाने जाते थे। राजाजी ने 'विवेकानन्द' नाम धारण करने का सुझाव दिया और आखिर मे यही नाम स्थायी रह जाने के कारण इस नामकरण का श्रेय राजा अजीतसिंह को मिला।

स्वामी अभेदानन्द जी की आत्मकथा के अनुसार स्वामीजी पश्चिम भारत अर्थात सौराष्ट्र के भ्रमण के समय मे सच्चिदानन्द नाम से अपना परिचय देते थे। खेतडी से स्वामीजी २८ अक्टूबर १८९१ को रवाना होकर अजमेर लगभग (१३ नवम्बर को) ब्यावर, अहमदाबाद होते हुये सौराष्ट्र मे आये। (हरविलास शारदा ने भी अपनी डायरी मे विवेकानन्द नाम ही प्रयोग किया है।) तो यह कह सकते हैं कि १८८७ से १८९० तक अपने प्रथम भ्रमण काल मे स्वामी जी ने विविदिषानन्द नाम का व्यावहार किया। तदन्तर १८९२ तक विवेकानन्द नाम और १८९२ के बाद १८९३ मे अमेरिका जाने तक कभी विवेकानन्द कभी सच्चिदानन्द का उपयोग करते रहे।

स्वामीजी के सच्चिदानन्द नाम से अकित पत्र वि० सा० प्रथम खड मे है:
पृ० ३८७-२१-२-१८९३ आलासिंगा को हैदराबाद से लिखित।

२. पृ० ३८८ २७-४-१८९३ खेतडी से गजुडराव को लिखित।

३. पृ० ३९२ २४-५-१८९३ बम्बई से इदुमति मित्र को लिखित।

४. पृ० ३९४ १८९३ मडगाव से हरिचन्द मित्र को लिखित।

वगभाषा के पत्रावली खण्ड श्री डि० आर० बालाजी को लिखित १८९३ के पत्र मे (वि० सा० पृ० ३९०, २३-५-१८९३) यही सच्चिदानन्द की प्रार्थना शब्दो से पत्र समाप्त किया गया है।

स्वामीजी जब मठ से प्रस्थान करते समय अपने गुरुभाइयो से विदा हुए, उनका नाम सच्चिदानन्द था। अमेरिका मे स्वामीजी के भाषण 'विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त होने पर भी गुरुभाई समझ नही पाये कि यही उनका नरेन है। इस सत्यता को His Eastarn & Wastern Disciples ने भी स्वीकारा है। उन्होंने अपनी पुस्तक मे लिखा है "नरेन ने परिव्राजक काल मे कोई स्थायी नाम नही रखा। प्रसिद्धि से बचने के लिए विभिन्न नाम रखे। अन्त मे अमेरिका प्रस्थान करने के पूर्व अपने परम सहयोगी खेतडी के राजा अजीतसिंह के सुझाव पर स्वामी विवेकानन्द धारण किया।"

ज्ञानदायिनी वेश्या और स्वामीजी

जिस प्रकार भगवान बुद्ध को बुद्ध गया मे बोधिसत्व के नीचे ज्ञानलाभ हुआ था, उसी प्रकार स्वामीजी का माया-मोह जाल यही खेतडी मे छूटा था, और यही उनमे ऊँच-नीच की भावना का अन्त हुआ। ८ अगस्त १८६१ ई० की घटना है। मौसम गर्मी का था। सूर्य भगवान के अस्ताचल गामी होने के अनन्तर निस्तब्धता धीरे-धीरे बढ रही थी। आकाश मे तारो की चमक रात्रि के निविड अन्धकार मे अपूर्व शोभा पा रही थी। सुगन्धयुक्त मद वायु के झीने झकोरे पसीने मे तरबतर लोगो के शरीरो को शीतल बना रहे थे। खेतडी नरेश अपने सहचरो सहित उद्यान स्थित बगले मे बैठे हुए थे। उस समय राजा ने स्वामी जी को भी वहा बुलाने की इच्छा प्रकट की। आज्ञा पाते ही एक सेवक दौडकर गया और आदर के साथ स्वामीजी को लिवा लाया। आसनासीन होने पर थोडी देर धर्म चर्चा होती रही। इतने मे नर्तकियो का एक दल 'सलाम मालूम' करने के लिए उपस्थित हुआ। राज्य के आश्रितो सेवको और किसी पद के आकाक्षी उम्मीदवारों के लिए प्रात. एवं सायकाल राजाजी की सेवा मे अभिवादन करने के निमित उपस्थित होने का साधारण नियम चला आता है। इस अभिवादन के नाम ही 'सलाम मालूम करना' है। सभागत नर्तकियो के दल की एक सुगायिका ने जिसका यौवन सुलभ चाचल्य प्रौढता की गम्भीरता के रूप मे बदल चुका था, गाना सुनाने की आज्ञा मागी। गाना शुरू होने को था कि स्वामी विवेकानन्द जी अपने स्थान पर जाने के लिए उठे। वेश्या ने हाथ जोडकर निवेदन किया कि महाराज, आप अवश्य विराजिये, मैं एक भजन सुनाना चाहती हू। वह यह ताड गयी थी कि मुझे नीच वेश्या समझकर स्वामीजी यहा से उठकर जा रहे हैं। इसलिये उसके निवेदन मे कातर भाव की स्पष्ट झलक दिखलाई दे रही थी। उधर राजाजी ने भी आग्रहपूर्वक बैठने का अनुरोध करते हुए कहा— 'स्वामीजी, इसका गाना सुनकर सभी प्रसन्न होते हैं। आप भी सुनने की कृपा कीजिए। यह भजन सुनावेगी।' स्वामीजी राजा के अनुरोध को टाल न सके और अन्यमनस्क होकर बैठ गये। रात के समय गाना खूब जमता है। स्वामीजी स्वय सगीत निपुण सुगायक भी थे। एकान्त मे जब कभी मौज आती थी, वे

भगवदगुणानुवाद का कीर्तन किया करते थे। उनके सुमधुर आलाप से सुनने वालो को मत्रमुग्ध हो जाना पडता था, जो हो।

गाना आरम्भ हुआ। गायिका ने ताल स्वर के साथ भक्त कवि सूरदास का एक पद गाया। गाने मे वह तन्मय हो गयी। सुनने वाले भी चित्रवत् बन गये। विलक्षण विजली सी दौड़ गयी। भक्त हृदय की आत्म निवेदन भावना सपुटित वह पद इस प्रकार है जिसका स्वामीजी कृत अग्रेजी अनुवाद साथ है।

हमारे प्रभु औगुन चित न धरो,
समदरसी है नाम तिहारो, अब मोहि पार करो॥ हमारे प्रभु॥
इक लोहा पूजा मे राखत, इक घर वधिक परो,
पारस गुन औगुन नहि चितवै कचन करत खरो॥ हमारे प्रभु० ॥
एक नदिया एक नार कहावत, मैलो हि नीर भरो,
जब दोऊ मिलि एक वरन भये सुरसरि नाम परो॥ हमारे प्रभु० ॥
यह माया भ्रम जाल निवारो, सूरदार सगरो,
अबकी वेर मोहि पार उतारो नहि प्रन जात टरो॥ हमारे प्रभु० ॥

' O Lord, Look not upon my evil qualites
Thy Name, O Lord, is same sightedness,
Make of us both the same Brahman
One piece of iron is in the image in the Temple
And another, the knife in the hand of the butcher,
But when they touch the philosopher's stone
Both alike turn to gold
So Lord, Look not upon my evil qualities
One drop of water is in the sacred Jumna,
And another is foul in the ditch by the roadside,
But when they fall into the Ganges,
Both alike become holy,
So Lord, Look not upon my evil qualities
Thy name O Lord, is same sightedness
Make of us both same Brahman" Etc.

गाना समाप्त हुआ। स्वामीजी गद्गद् हो गए। उनके नेत्रो से अश्रुधारा बह चली। स्वामीजी के मुँह से तत्काल निकल पडा—ओह, इस पतिता स्त्री ने एक भक्त का पद गाकर 'सर्व खल्विद ब्रह्म'—के तत्व को हृदयगम करा दिया है। स्वामीजी ने स्वय लिखा है—वह गाना सुनकर मैं समझा कि क्या यही मेरा सन्यास है ? मैं सन्यासी हू और यह एक पतिता नारी है, यह ऊँच-नीच की

भावना—यह भेद-बुद्धि आज भी दूर नही हुई ? सब प्राणियो मे ब्रह्मानुभूति बडा ही कठिन कार्य है। चण्डाल की बातें सुनकर भगवान शकराचार्य के मन से भेद-बुद्धि लुप्त हो गयी थी । ऐसी तुच्छ तुच्छ घटनाओ से कितने महान फल उत्पन्न होते हैं, इसकी गणना कौन कर सकता है ?

उस वेश्या को सम्बोधन कर स्वामीजी ने कहा—माता, मैंने अपराध किया है। क्षमा करो । मैं तुम्हे घृणा की दृष्टि से देखकर यहा से उठा जाता था। परन्तु तुम्हारा ज्ञान गर्भ गाना सुनकर मेरी आखें खुल गयी हैं। इसके बाद उस गायिका को स्वामीजी ने ज्ञानदायिनी मा कहकर सम्बोधन किया, भावगर्भित आशीर्वाद दिया जुग-जुग जीवो मेरे लाल। वेश्या का हृदय से निकला आशीर्वाद कितना सत्य निकला इसको बताने की आवश्यकता नही कि स्वामीजी का मोह-माया जाल छूटा और उनमे ऊँच-नीच की भावना ?'

जीणमाता की यात्रा

४ अक्टूबर सन् १८९१ ई० (मीती अश्विन शुक्ला १ स० १९४८ वि०) को प्रात ४ बजे नित्यकर्म से निवृत होकर हाथ मुह धोकर ४॥ बजे घोडे की सवारी करके जीणमाताजी के लिए प्रस्थान किया। ८॥ बजे गुढे पहुचकर धर्मशाला से पूर्वनिश्चयानुसार विश्राम किया। धर्मशाला मे पहिले से ही ठहरने का प्रबन्ध था। पहाड की चोटी पर शिव मन्दिर मे एक संन्यासी साधनारत थे—जिनकी चारो तरफ ख्याति थी उनके दर्शन करने के उपरात धर्मशाला मे आकर कुर्सी पर बैठ गये। स्वामीजी भी जीणमाता की यात्रा मे साथ थे। अत धर्मशाला मे स्वामीजी से वार्ता चली। नवरात्रो मे जीणमाता का मेला लगता है। उसके लिए सायकाल ६ बजे के करीब सिगनोर पहुचे। सिगनोर से ५ अक्टूबर को प्रस्थान कर बाजोर होते हुए सीकर पहुचे। यदि जयपुर से चले तो बाजोर सीकर से ७ मिल (१२ किलोमीटर) पहिले ही जयपुर सीकर मार्ग पर पड़ता है। थोडी ही दूर पर मलकेडा पडता है। जयपुर से सीकर जाने से पहिले पहाड एव खारडे के बीच मन्दिर की पुरानी बनी छतरिया ही छतरिया दिखाई देती हैं। कोई पुराना धर्मस्थल रहा होगा।

स्वामीजी सीकर में

दिनाक ६ अक्टूबर १८९१ ई० को सीकर पहुच कर जीणमाता के दर्शनार्थ प्रस्थान किया। सीकर मे रावराजा माधोसिहजी के अतिथि के रूप मे गढ मे रहे। रावराजा माधोसिहजी भी जीणमाता की यात्रा मे सीकर से साथ हो गये। ६ बजे जीणमाता के दर्शन किये। नवरात्र के शुभ अवसर पर भवानी दुर्गा के दर्शन किये।

स्वामीजी जीणमाता के दर्शन कर बहुत ही प्रभावित हो गये। उन्होने इस देवी और उसके मन्दिर के विषय मे जानकारी चाही जो उन्हे दी गयी। वह जानकारी इस प्रकार है—'जीण' शब्द 'जयन्ती' का अपभ्र श है। कहा जाता है देवीजी का यथार्थ नाम जयन्ती माता है। देवी अष्टभुजी है। मन्दिर का सभा मण्डप प्राचीन है और अनुमान से वह दसवी शताब्दी मे इधर का नही है। चौखट्र बहुत पुरानी है। सभा मण्डप के स्तम्भो के नीचे वाले भागो पर लेख खुदे हुए हैं। देवायतन के भीतरी भाग मे दो दीपक; एक घृत का और दूसरा तेल का, अखण्ड रूप से जलते रहते हैं। इनका खर्च जयपुर दरबार से मिलता है। माता जी के पुजारियो के सैकडो कुटुम्ब हैं, जो अपने को पाराशर ब्राह्मण कहते हैं। इसके साथ-साथ सामरिया खाप का एक चौहाण भी माताजी के चढावे का हिस्सेदार है। जोणमाताजी का स्थान इस समय खडेला की भाइपे के ठिकाने खूड के अधीन है।

श्री जीण माताजी का मन्दिर रेवासा से दक्षिण करीब ३ कोस पहाडी के निम्न भाग मे अवस्थित है। झड बेरियो का घना जगल है। यात्रियो के ठहरने के लिए बहुत-सी तिबारियां और धर्मशालायें बनी हुई हैं। वर्ष मे दो बार, नव-रात्रो मे दर्शनार्थियो का मेला लगता है।

जीण माता के मन्दिर के स्तम्भो पर कई लेख खुदे हुए हैं। इनमे सबसे पुराना लेख १०२९ का खेमराज की मृत्यु का—एक शिला पर—है जो एक वीर का स्मारक सूचक है। दूसरा लेख सभा मण्डप के स्तम्भ पर सवत् ११६२ का परम भट्टारक महाराजाधिराज पृथ्वीराज (प्रथम) के समय का है, जिसमे मोहिल के पुत्र हठड द्वारा मदिर बनाए जाने का उल्लेख है।

दो लेख (तृतीय और चतुर्थ) परम भट्टारक महाराजाधिराज अर्णोराज के समय के संवत् ११९६ के हैं।

पाचवा लेख सवत् १२३० का परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री सोमेश्वर के समय का है, जिसमे लिखा है कि, उदयराज के पुत्र अल्हण ने सभा मण्डप बनाया।

ये सभी लेख चौहाण राजाओ के शासन काल के हैं।

छठा लेख—सवत् १३८२ चैत्रसुदि ६ सोमवार का 'महमद साहि' के राज्य के समय का है, जिसमे लौटणि वश के ठा० देपति के पुत्र श्री वीच्छा के द्वारा जीण माता के मन्दिर (देहरा) का जीर्णोद्धार होने का उल्लेख है। इस लेख का 'महमद साहि' मुहम्मद शाह तुगलक होना चाहिए।

सातवा लेख सवत् १५२० भाद्र सुदि २ सोमवार का है। इसमे माणिक भण्डारी वशज ठा० ई (स) र दास के प्रमाण करने का उल्लेख है। माणिक भण्डारी माथुर-कार्यस्थो की खाप है।

आठवां—सवत् १६६६ आषाढ सुदि १५ सोमवार का है, जिसमे जीण माताजी के मन्दिर के जीर्णोद्धार का वर्णर है।

स्वामीजी नवरात्र (दुर्गापूजा) के शुभोपलक्ष्य पर यह सब देखकर और जानकर वहुत ही प्रसन्न हुए।

६ अक्टूबर १८६१ ई० को सवा नौ वजे वापस सीकर गढ मे लौट आये। ६ अक्टूवर से १० अक्टूवर तक चार दिन सीकर मे ठहरने के वाद १० अक्टूवर को सीकर से रवाना होकर ११ अक्टूबर को वापस खेतड़ी पहुच गये। इस यात्रा की पुष्टि खेतड़ी राज्य के वाकआत रजिस्टर पृष्ठ २२६-४२ के उल्लेख से स्पष्ट है।

सीकर की इस यात्रा मे सीकर के रावराजा माधोसिह स्वामीजी से इतने प्रभावित हुए कि भविष्य मे जव कभी उन्हे स्वामीजी के खेतडी आने की सूचना मिलती थी तो वे खेतडी जाकर स्वामीजी के दर्शन करते थे और उनके वचनामृत सुनकर अपने को धन्य मानते थे।

खेतडी के लम्वे प्रवास काल मे स्वामीजी के पाणिनी की अष्टाध्यायी और उस पर पतंजलिकृत महाभाष्य आदि का अध्ययन किया। स्वामीजी अपने जीवन काल में एक स्थान पर स्थिर होकर नही रहे। खेतडी ही इसका अपवाद रहा—इसीलिए पाणिनी की अष्टाध्यायी का अध्यन यही सम्भव हो सका और सयोग ही था कि पूर्ण वैयाकरण प० नारायणदासजी खेतडी के सस्कृत विद्यालय मे अध्यापक पद पर आसीन थे।

इन घटनाओ से यह जानने मे सुगमता होगी कि स्वामीजी का अजीतसिह पर कितना प्रेम था और वे भी स्वामीजी का कितना प्रेमपूर्ण आदर करते थे।

यो ही ४ जून से अक्टूवर १८६१ के अव तक करीव ५ महीने वीत गये। राजाजी चाहते थे कि स्वामीजी कुछ दिन और ठहरे, किन्तु स्वाजी ने जाना ही निश्चित कर लिया। खेतडी से विदा होकर जयपुर होते हुए स्वामीजी गुजरात की ओर चले गये थे। अहमदावाद, भिवडी, जूनागढ, भडौंच माण्डवी सोमनाथ, पोरवन्दर आदि गुजरात के नगरो मे कई महीने व्यतीत करके स्वामीजी वम्वई पहुचे। वहा कुछ दिन ठहरने के बाद पूना, मद्रास, मैशोर, रामनद, हैदरावाद मद्रास भ्रमण करते हुए—(विश्वधर्म परिषद मे भाग लेने का विचार मन मे संजोये हुए) फिर २१ अप्रैल १८६२ ई० को खेतडी (राजस्थान) पहुचे।

सन्दर्भ

१ डा० गुरुचरण लश्कर-वगाली सज्जन-अलवर मे चिकित्सक पद पर आसीन

२ अलवर राज्य के अवकास प्राप्त इजिनियर-स्वामी जी के राजस्थानी भक्त

३ अलवर राज्य के प्रधानमत्री (दीवान) आपही ने स्वामीजी और महाराजा मगलसिह की भेट कराई

४ (शासन काल १८७४-१८९२ ई०) अलवर के महाराज मगलसिह प्रगतिशील विचारो के थे। स्वामीजी से मूर्ति पूजा पर वाद-विवाद, राजस्थान के प्रथम राजा जिन्होने स्वामीजी को राजकीय सम्मान दिया-स्वामीजी के अनुरक्त भक्त हुए।

५ गोविंद सहाय जन्म १८६६ ई० मे राजकीय सेवा मे प्रविष्ठ-स्वामीजी को गुरु वरण—स्वामीजी ने प्रथम शिष्य वनाकर शिष्य परम्परा का शुभारम्भ किया—मृत्यु १९२५ ई०

६. अलवर राज्य के हाकीम जागीर एव जेल अधिक्षक—स्वामी जी से नाम जप ध्यान योग की दीक्षा प्राप्त की।

७ रायसल दरवारी के फौज वक्सी केसरीसिह के वशज-परम वीर-योग्य और स्पष्टवादी—जयपुर राज्य के फौज वक्शी (प्रधान सेनापति) थे। जयपुर राज्य से खाटू (खाटू-श्यामजी) भी इस्तमरर इजारे पर ले लिया था, जो स्वतन्त्रता प्राप्ति १९४७ ई० तक उनके आधीन रहा।

८ प्रसिद्ध वेदान्ती विद्वान-व्याकरणाचार्य—

९ विश्वप्रसिद्ध अजमेर शरीफ (गरीव निवाज) की दरगाह

१० तीर्थराज पुष्कर—

११ राजस्थान का पर्वतीय स्थल माऊट आवू

१२ स्थापत्य कला के लिए विश्वप्रसिद्ध जैन मदिर

१३ किशनगढ राज्य के वकील फैजअली थे। स्वामी गम्भीरानन्दजी लिखित 'युगनायक स्वामी विवेकानन्द' नामक वगला ग्रन्थ खण्ड १, पृ० ३२२ मे कोटा के वकील 'श्रीयुत महाराव और उसी राज्य के मन्त्री ठाकुर फतहसिह' लिखा है जो ठीक नही है। कोटा मे उस समय रीजेन्सी थी। महाराव के वकील ही आबू मे होगे। ठाकुर फतहसिह जयपुर राज्य मे मत्री थे।

१४ खेतडी के महाराजा अजीतसिह जन्म-१८६१ ई० मृत्यु-१९०१ ई०

१५ खेतडी के महाराज अजीतसिह के प्राइवेट सेक्रेटरी एव राज्य के दीवान—स्वामीजी आपका वडा आदर करते थे और सम्मान सूचक पत्र भी लिखे—स्वामीजी और अजीतसिह के बीच की कडी।

१६. अलवर राज्य के गाजीकाथाना नामक स्थान पर जन्म १८४५ ई०

मृत्यु १६२४ ई० स्वामीजी मेरे अध्यापक कह कर उनका स्मरण करते थे।

१७ जगे (निद्रा त्याग)
१८. १५ मिनट (घटे का चौथाई भाग)
१६ आधा घटा (३० मिनट)
२० विदा होकर गये
२१ झुलता हुआ पलग
२२ अध्ययन किया
२३ निकट ही (पास)
२४. चूरट (तम्बाकू की भरी चूरट)
२५ शिकार किये हुए शेर का शव (चर्म)
२६ शतरज का खेल
२७ शेर की चमडी (खाल) निकालने वाला
२८ सामने (उपस्थिति मे)
२६ लगभग २० मिनट (घडी २४ मिनट की होती है)
३० सूखाने (शेर की चर्म को सूखने डाल दी)
३१ निश्चित समय पर (पूर्वनिश्चयानुसार)
३२. अभिवादन
३३. भेंट प्रस्तुत की (सम्मानसूचक भेंट देने की प्रथा थी)
३४. निरामिष (वेजीटेरियन) भोजन करने वाले
३५ महत्वपूर्ण कागज
३६ घटे का तीन चौथाई भाग, ४५ मिनट
३७ दो-दो पैसे दक्षिणा
३८ मदिरा पान करते रहे
३६ उत्तर—(नार्थ) दिशा की तरफ के महल
४०. जनता से प्रार्थना सुन कर (शिकायत)
४१. धीमी-धीमी बरखा (वर्षा) आ गई
४२. मदिरापान किया
४३ अभिवादन करने वाले
४४ राजा साहब के यहा अग्नि स्थापित थी और वे नियमित रूप से दोनो समय आहुति दिया करते थे।
४५ व्यक्तिगत खर्चे का हिसाब दिखाया
४६ सध्याकाल अग्नि मे आहुति देना
४७ श्राद्ध
४८ चबूतरा (प्लेटफार्म)

द्वितीय यात्रा

स्वामीजी के परिव्राजक काल के समय इलाहाबाद मे गाजीपुर के तत्कालीन जिला-न्यायाधीश (डिस्ट्रिक जज) मि० पारगटन ने उनके हिन्दुधर्म एव हिन्दुओ के सामाजिक रीति-रिवाज के विषय मे विचार सुनकर परामर्श दिया, कि आप इग्लैंड जाये और वहा इन विचारो का प्रचार करे तो उत्तम होगा। तदुपरात राजपूताने की प्रथम यात्रा समाप्त कर गुजरात होकर बम्बई गये थे। पोरबदर के दीवान पडित शकरपाण्डुरग ने स्वामीजी को पश्चिम की दुनिया मे जाने के सत्परामर्श को अधिक बल प्रदान किया। पडित शकरपाण्डुरग ने कहा, स्वामीजी मुझे शंका है कि आप इस देश मे कुछ कर पायेंगे! यहा आपको-आपके विचारो को समझनेवाले हैं कहा? आपको इस कार्य के लिए पश्चिमी देश जाना होगा जहा आपके विचारो का सम्मान होगा। वही आप सनातन धर्म की पताका फहराने मे अवश्य ही सफल होंगे।

पश्चिमी देशों के भ्रमण का विचार

स्वामीजी सबके भाव को हृदयगम करते रहे और पश्चिमी देश जाने के उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। यह सर्वविदित है कि वे जिस कार्य को मन मे ठान लेते थे करके ही रहते थे।

चिकागो मे सर्वधर्म-परिषद् १८९३ ई० मे होना सुनिश्चित था, इसी अवसर को उपयुक्त जान सुयोग का उपयोग करने की मन मे ठान स्वामीजी ने पश्चिमी देश जाने का दृढ सकल्प किया। किन्तु सीमित साधन (अर्थ व्यवस्था, मार्ग व्ययादि) पहाड की तरह बाधक बनकर खडे थे। खडवा मे स्वामीजी ने हरीदास चटर्जी (वकील जिनके यहाँ ठहरे थे) से अपने भाव प्रकट किये कि अगर कोई उनकी व्यय की व्यवस्था करने मे सहायक हो सके तो यह उपयुक्त अवसर है। बेलगाव के सब डिवीजनल फोरेस्ट आफीसर हरिदास मित्र को भी इस आशय के भाव प्रकट किये, तब उन्होंने सबके सहयोग से चदा एकत्रित करने का विचार प्रकट किया, किन्तु स्वामीजी ने इसका प्रतिवाद किया।

दक्षिण भारतीय भक्तों की सहानुभूति—स्वामीजी बम्बई होकर दक्षिण

भारत प्रस्थान कर मद्रास मैशूर पहुचे। मैशूर के महाराज भी स्वामीजी के सभाषणो से प्रभावित थे। स्वामीजी ने वेदात के सिद्धात का पश्चिम देशो मे प्रतिपादित करने का विचार प्रकट करने पर मैशूर महाराज ने यात्रा खर्च हेतु आवश्यक सहयोग का आश्वासन दिया।

रामानद के राजा भास्करसेतुपति की १८९२ ई० मे मदुराई मे भेंट हुई थी उस ने भी स्वामीजी को आवश्यक सहयोग के लिए आश्वस्त करते हुए प्रार्थना की कि स्वामीजी सर्वधर्म परिषद् मे (हमारी) आध्यात्मिक शक्ति पर प्रकाश डालने का इससे अच्छा सुअवसर नही आयेगा। इसके लिए आवश्यक व्यवस्था करने का भरोसा भी दिया।

अन्तोगत्वा मद्रास मे स्वामीजी के सर्वधर्म परिषद मे चिकागो मे भाग लेने के लिए जाने का सकल्प सार्वजनिकरूप से व्यक्त करने पर स्वामीजी के भक्तो ने धन एकत्र करना आरम्भ कर दिया (फलस्वरूप ५००) जमा हो गये।

हैदराबाद स्टेट के प्रधानमत्री, आसम का महाराज नरेन्द्रकृष्ण बहादुर, राज्य के पेशकार एव अन्य प्रतिष्ठित सभ्रात लोगो ने भी स्वामीजी को आवश्यक सहयोग करने का आश्वासन दिया था। नगर के समृद्ध लोगोने सेठ मोतीलाल के नेतृत्व मे स्वामीजी से भेंट कर आवश्यक धन की व्यवस्था करने को आश्वस्त किया, किन्तु अपरिहार्य कारणो से स्वामीजी इस प्रयोजन को टालते रहे।

मार्च-अप्रैल महीने मे स्वामीजी के भक्तो ने मद्रास मे आलासिगा के सयोजन मे एक समिति का निर्माण कर आवश्यक धन एकत्रित करने का कार्य प्रारम्भ कर दिया। मैशूर-रामनद-हैरराबाद के भक्तो से सम्पर्क साधा गया। मध्यम श्रेणी के लोगो के दरवाजे-दरवाजे जाकर इस कार्य हेतु धन एकत्रित किया जाने लगा —स्वामीजी ने २१ फरवरी १८९३ ई० को हैदराबाद से अपने भक्त आलासिगा पेरूमल को पत्र मे आवश्यक साधन जुटाने मे असफल रहने पर असतोष प्रकट किया।

दैवयोग से खेतडी के राजा अजीतसिह को स्वामीजी के आशीर्वाद से पुत्र रत्नका प्राप्त हुआ। जन्मोत्सव पर अपने गुरु (स्वामीविवेकानन्द) का सम्मिलित होना आवश्यक समझ राजा ने विश्वनीय दूत मुन्शी जगमोहनलाल को इस अवसर पर स्वामी को लिवाने मद्रास भेजा।

फ्रेंच विद्वान रोमा रोला ने "Life of Swami Vivekanand" मे स्वीकारा है कि सर्वधर्म परिषद् मे स्वामीजी का आवश्यक धन का व्यय भार उनके अनन्य भक्त प्रेमी, प्रमुख सहयोगी खेतडी के राजा अजीतसिह ने वहन किया।"

राजकुमार जयसिह के जन्मोत्सव में

स्वामीजी के आशीर्वाद से सन् १८९२ ई० मे राजकुमार जयसिह

का जन्म आगरा मे हुआ। इसके पहले दो लडकिया थी। राजाजी ने इस शुभ उपलक्ष पर बड़ा उत्सव मनाने का प्रवन्ध किया। इस अवसर पर स्वामी विवेकानन्द को जिनकी मगल कामना से पुत्र रत्न हुआ था कैसे भूल सकते थे ? राजाजी को पता लगा कि स्वामीजी मद्रास मे विदेश जाने की चिन्ता मे हैं। भक्तगण विदेश यात्रा के लिए धन इकट्ठा करने के प्रवन्ध मे लगे हुए हैं। स्वामीजी के मद्रास मे होने का सवाद महेन्द्रनाथ दत्त के कलकत्ते से लिखे पत्र २८-२-१८९३ ई० से पता लगते ही राजाजी ने मुन्शी जगमोहनलाल को मद्रास राजकुमार के जनमोत्सव पर स्वामीजी को ससम्मान खेतडी लिवाने भेजा। मुंन्शी जी शीघ्र ही मद्रास पहुचे और स्वामीजी को बाबू मन्थनाथ नामक वगाली सज्जन के यहा, जहा स्वामीजी ठहरे हुए थे, पता ढूढ निकाला। मुशीजी ने वहा एक नौकर मे पूछा कि स्वामीजी कहा हैं ? उसका स्वाभाविक उत्तर पाकर समुन्द्र पर गये। मुन्शीजी के समझ मे आया कि स्वामीजी विदेश जाने के लिए समुन्द्र मे जहाज पर गये हैं। मुन्शीजी अपनी इस समझ के कारण घवरा गये , परन्तु उसी समय स्वामीजी के एक कमरे मे वस्त्र टगे देख मुशीजी ने समझा कि स्वामीजी अभी विदेश नही गये हैं। मद्रास मे ही हैं। यो सोच-विचार कर ही रहे थे कि मकान के सामने एक गाडी आकर खडी हुई और जव उसमे से स्वामीजी को उतरते देखा तव उन्हे सतोष हुआ। मुन्शी जी ने आगे वढकर अभिवादन किया और स्वामीजी ने कुशल समाचार पूछा। स्वामीजी के प्रश्न का यथोचित उत्तर देकर मुन्शीजी ने अपने आने का अभिप्राय वताया। पूरी बातें ध्यान से सुनकर स्वामीजी ने कहा—३१ मई को अमेरिका जाने का मैंने निश्चय किया है, उसी के लिए प्रबन्ध करने मे लगा हुआ हू। ऐसी दशा मे खेतडी कैसे चल सकता हू ? अब समय रहा है ? मुन्शीजी ने आग्रहपूर्वक निवेदन किया कि अधिक नही तो एक दिन के लिए ही आप पधारिये। आपका चलना वडा आवश्यक है। राजाजी ने आग्रहपूर्वक निवेदन किया है। राजकुमार के जन्मोत्सव पर आपके न जाने से राजाजी के मन को बडा कष्ट होगा। आपका विदेश जाने का राजाजी सव प्रवन्ध कर देंगे। आप एक बार खेतडी पधारें। स्वामीजी इस आग्रह को टाल न सकें और मुन्शी जी के खेतडी चलने के अनुरोध की रक्षा करनी पडी। मद्रास से मुन्शीजी के साथ प्रस्थान कर दिनांक २१ अप्रेल १८९३ ई० को स्वामीजी खेतडी पहूचे।

खेतड़ी में

खेतडी मे राजकुमार का जन्मोत्सवपूर्णरूप से चल रहा था। वाहर से आये अतिथिगणो, ग्रमीण जनता एव राजकीय महमानो से छोटा-सा खेतडी अति भीड, भाड वाला शहर हो गया। निकटवर्ती राज्यो के प्रमुख उनके प्रतिनिधि प्राय.

सभी सम्मिलित होने आये थे। सीकर के राजा साहब ११०० व्यक्तियो सहित पधारे थे। पन्नालाल के तालाब पर उत्सव मे, जब मुन्शीजी ने स्वामीजी के पधारने की सूचना राजा को दी, उन्होने आसन छोड दिया और स्वामीजी को साष्टाग प्रणाम किया। राजा ने स्वामीजी का गणमाण्यो अतिथिगणो, राजाओ-सरदारो से परिचय कराते हुए स्वामीजी का सनातन धर्म के सिद्धातो को प्रतिपादित करने पश्चिम यात्रा का उद्देश्य बताया। सबने स्वामीजी को प्रणाम कर अशीर्वाद लिया। स्वामीजी के सोद्देश्यपूर्ण यात्रा का सभी ने स्वागत किया। २१ अप्रैल १८९२ से १० मई १८९२ तक तीन सप्ताह हर्षोल्लास से व्यतीत होने पर एक दिन स्वामीजी ने जनानी डयोढी मे पधारकर नवजात शिशु (राजकुमार जयसिह) को अशीर्वाद दिया। जनानी ड्योढ़ी मे महारानी एव उपस्थित महिलाओ ने स्वामीजी का आशीर्वाद लेकर अपने को कृतार्थ किया।

राजाजी जयपुर तक स्वामीजी को विदा करने आये और वहा भारी मन (भरे दिल) से विदा किया। मुशी जगमोहनलाल को विपुल धन देकर स्वामीजी के मार्ग व्यय आवश्यक सामान की यथेष्ट व्यवस्था करने का आदेश देकर स्वामीजी के साथ बम्बई भेजा।

वाकआत रजिस्टर खेतडी—जन्म श्री महाराज कुँवर जयसिह समत १९४९ सन् १८९३ ई० ता० २१ अप्रेल सन् १८९३ मिती वसाष सु० ५ समत १९४९ सुकर

...श्री अनदाताजी महाराज मय सरदार लोगा कै (तलाव की) उगूणी पेडियो पर बैठ्या और सरदार लोगा ने नाव मे बैठ कर सैर करणे की कही तो वै नाव मे बैठ-बैठ कर सैर करता रह्या तषता की नाव बणवाई—फेर आप भी नाव मे वीराज गया और सरदार लोगा ने सैर कराता रह्या। रडिया को नाच नाव मे होतो रह्यो महताव नाव मे चसती रही—मुशी जगमोहनलालजी स्वामी विवेकानन्दजी ने ल्यावा गया छा सो बाने लेकर आया नाव मे ही मालुम होणे प्रवाने बुलाया मुन्शीजी रुपया २) नजर का कीया और श्रीजी स्वामीजी की भेंट रुपया २५) चैरासाही[2] कीया याने भी नाव मे बैठा लीया—१० वज्या नाव मा से उत्र कर तलाव के बाहर पधार्‍या फेर सरदार लोग्या सीष करी जद सीष हुई और आप व बैरीसालजी नोलगढ[3] का कवर नारायणसिहजी व स्वामीजी, जगमोहनजी हाथिया सवार होकर वाग मे पधार बगीचे मे हाथीया से उत्रया बैरीसालजी, नारायणसिह तो सीष कर डेरा ने गया आप व स्वामीजी, छवि निवास आकर बीराज्य बाता होती रही दारू आरोगता रह्या ११ बज्या थाल आरोग्यो स्वामीजी भी अठै ही जीम्या १२ बज्या आराम फरमायो...

ता० २२ अप्रेल सन् १८९३ ई०

...१० बज्या श्री हजूर स्वामीजी विवेकानन्दजी कनै असमानी महल मे

पधार्‌या…१२ वज्या आप थाल आरोग्यो ''स्वामीजी से बाता होती रही ·

ता० २६ अप्रेल सन् १८९३ ई०

…हाथी घोडा अणका मौजूद छा सो एक हाथी पर श्री हजूर व नवाव साहब सवार हुया दूसरा प्र जमीरुद्दीनषाजी व रीधजी बैठ्या तीसरा पर जग मोहनलालजी व स्वामी विवेकागन्दजी बैठ्या

ता० २७ अप्रेल सन् १८९३

''९ वज्या रात का छविनिवास आगे बीराज्या स्वामीजी से बाता होती रही ११ वज्या थाल आरोग्यो ।

ता० ५ मई सन् १८९३ ई०

…स्वामी विवेकानन्दजी से बाता होती रही—११ बज्या थाल आरोग्यो आराम फरमायो ।

ता० ७ मई सन् १८९३ ई०

११ बज्या थाल आरोग्यो…बीराज्या…मुसाहब कामदार आया रीयास्ती **अरज मारूज**[६] करता रहया २ वज्या यह तो गया अर स्वामी विवेकानन्दजी से वाता होती रही ।

ता० ९ मई सन् १८९३ ई०

· 'स्वामी विवेकानन्दजी ने महाराज कबर कने ड्योडी ले गया थोडी देर बाद वापिस पधार बीराज्या ''स्वामीजी से वाता होती रही ·

ता० १० मई सन् १८९३ ई० मीती जेठ वु० १० स० १९४९ बुधवार रवानगी स्वामीजी

सूवे ही अपोड्या हुवा स्वामी विवेकानन्दजी आज जाय छा वा कनै पधार्‌या —वठा से स्वामीजी ने साथ लेकर नीचे बगीचा मे पधार्‌या वानै पींजस मे सवार कीया ओर मुनसी जगमोहनलालजी ने साथ बम्बई तक जाने की इजाजत फरमाई ·

रास्ते मे आबू रोड स्टेशन पर स्वामी ब्रह्मानन्द और तुरियानन्द स्वामीजी की पूर्व सूचना पाकर मिलने आये ।

देश की गरीबी की चर्चा करते हुए स्वामीजी के नेत्र सजल हो आये । उन्होने गुरु भाइयो से कहा कि मैं कुबेर के देश अमेरिका जा रहा हूँ—देखे वहा कुछ कर पाऊँ ? गरीबी के उन्मुलन के लिए स्वामीजी सदैव चिन्तित रहते थे ।

खेतड़ी नरेश द्वारा यात्रा का सुप्रबन्ध

२० मई के आसपास स्वामीजी और मुशीजी बम्बई पहुचे । दीवान साहब (हरिदास बिहारीदास देसाई) के व्यापारी मित्र ने ठहरने के स्थान के लिए असमर्थता प्रकट की । मद्रास से आये आलासिगा व मुशीजी सहित स्वामीजी का

बम्बई मे हवादार एवं खुले स्थान पर ठहरने का मुशीजी ने स्वय प्रवन्ध किया जिसकी चर्चा स्वामीजी ने देसाई को लिखितअपने पत्र दिनांक २२ मई १८९३ ई० मे की है।

मुनशीजी ने राजा साहब की आज्ञा के अनुसार स्वामीजी के लिए आवश्यक सामग्री एकत्रित की, उपयोगी कपडे बनवाये और जहाज का प्रथम श्रेणी का टिकट खरीद दिया। यात्रा मे सुविधा को दृष्टिगोचर रख अन्य सामग्री भी जुटाई गई।

मुशीजी ने स्वामीजी के लिए चोगा (वस्त्र) उसी रग का टरबन (साफा) बनवाने के लिए कीमती शिल्क खरीदी जिसके लिए स्वामीजी के इन्कार करने पर भी मुंशीजी ने कहा कि आप सनातन धर्म के प्रतिनिधि और खेतडी महाराज के गुरु होकर सर्वधर्म परिषद मे जा रहे है, इसकी शोभा होगी।" स्वामीजी यात्रा मे बहुत ही कम अति आवश्यक सामान ही रखा करते थे। इतने अधिक सामान की देखभाल करना भी उनके लिए एक समस्या थी।

इसी तरह प्रथम श्रेणी का पानी के जहाज का टिकट खरीदने पर स्वामीजी ने प्रतिवाद किया, किन्तु मुशी जी के अनुरोध की स्वामीजी को रक्षा करनी ही पडी।

इस तरह मुशीजी ने स्वामीजी के लिए आवश्यक सुविधाओ की समुचित व्यवस्था की। स्वामीजी के कपडे बडे शाही लिवास के थे जिनको पहनकर स्वामीजी ने सर्वधर्म परिषद् मे भाग लिया। स्वामीजी का व्यक्तित्व कपड़ो मे और भी उभर आया।

अमेरिका प्रस्थान

स्वामीजी राजा साहब की उदारता से अपनी यात्रा के व्यय भार से मुक्त हुए और ३१ मई १८९३ ई० को ओरियंट कम्पनी के पेनिनशुला जहाज से अमेरिका के लिए रवाना हुए। जहाज के तख्ते (डक) पर खड़े हुए स्वामीजी प्रिंस (राजा) की तरह लग रहे थे।

---

१. पूर्व दिशा की तरफ पेडिया
२. झाडसाही चादी के सिक्के (रुपैये)
३. नवलगढ (शेखावटी जनपद का शहर)
४. भोजन किया
५. राज्य की दशा वर्णन
६. शाही सवारी

सर्वधर्म परिषद् में सफलता

स्वामीजी ने अपने आध्यात्मिक बल से वेदान्त-पताका अमेरिका मे फहराकर भारत और हिन्दू-जाति का गौरव बढाया था। वस्तुत स्वामी जी तरुण-भारत के स्फूर्ति-स्रोत थे। अमेरिका मे जाकर उन्होंने भारत के लिए जितना आन्दोलन किया, उतना कदाचित् आज तक किसी ने नही किया।

स्वामीजी की चिकागो की वक्तृताए तो गजब की हैं। छोटे-छोटे भाषणो मे उन्होंने हिन्दू धर्म का सत खीचकर रख दिया है। अमेरिका वालो पर उनकी मुहर लग गयी थी। स्वामीजी ने उन्हे समझाया कि भारतवासी धार्मिक मामलो मे कूप-मण्डूक नही रहे। खूनी तलवारो से उन्होने धर्म के नाम पर लोगो को नही काटा। हिन्दुओ ने किसी के देवालय नही तोडे। उन्होंने पीडितो को—उदाहरणार्थ पारसी लोगो को गले लगाया। स्वामीजी को हिन्दुओ के बाह्याडम्बरो से बडी वेदना होती थी। स्वामी जी जानते थे कि हिन्दू लोग अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गये हैं। हिन्दू-धर्म-अगाध सागर के समान है, जिसमे ससार के सर्व-धर्म-जडवाद से लगाकर नास्तिकवाद तक समाये हुए है। हिन्दू-धर्म कलिमल-हारिणी भागीरथी (गगा) के नीर के समान है, जिसमे पहुचकर सब नदी नद पवित्र और शक्तिशाली हो जाते हैं।

सर्वधर्म परिषद् मे स्वामी जी के भाषणो का विषय—

(१) स्वागत के उत्तर मे।

(२) सम्प्रदायो मे भ्रातृभाव।

(३) हिन्दू धर्म।

(४) भारत धर्म का भूखा नही (भूखे मूर्ति-पूजक)।

(५) बौद्धमत के साथ हिन्दू-धर्म का सम्बन्ध।

(६) विदाई।

लोगो के अनेक प्रश्नो का उत्तर-प्रत्युत्तर के अलावा स्वामी जी के सात भाषण हुए। उनके भाषण की शैली और विषय प्रतिपादन की पटुता, उनका वेश-विन्यास और तेजोमय मुख मण्डल सभी बातो से लोग दग रह गये थे। स्वामी जी सर्वधर्म-परिषद् में दिये हुए उन प्रभावशाली भाषणों मर्मानुवाद क्रमानुसार अगले

अध्याय मे दिया जा रहा है ।

अमेरिका जाकर स्वामीजी ने भारत के लिये जितना आन्दोलन किया वेदात की पताका फहरायी उस सत्कार्य मे खेतडी के राजा अजीतसिह प्रमुख सहायक स्तम्भ थे । स्वय स्वामी जी की उक्ति है "भारतवर्ष की उन्नति के लिए जो थोडा वहुत मैने किया है, वह खेतडी नरेश के न मिलने से न होता । (What little I have done for the improvement of India would not have been done if the Rajaji had not met me) —Vivikanand

स्वामीजी की सफलता का सवाद पाकर राजा जी को वर्णनातीत आनन्द हुआ और इसके लिए खास तौर से उन्होंने अपने दरवार (राजसभा) की विशेष वैठक कर निम्नलिखित आशय का पत्र स्वामी जी का अभिनन्दन करने के निमित अमेरिका भेजा—

मान्यवर स्वामी जी,

अमेरिका के चिकागो शहर की भिन्न-भिन्न धर्मानुयायियो की विराट् सभा मे आपने हिन्दू धर्म का महत्त्व वर्णन कर भारतवर्ष का मुखोज्जवल किया है। अतएव आपके प्रति सम्मान प्रदर्शित करने एव धन्यवाद देने के उद्देश्य से यह दरवार किया है। इस दरवार के सभापति के अधिकार से अपनी एव अपनी प्रजा ओर से आपको अमेरिका मे हिन्दू धर्म का गौरव वढाने के लिए आन्तरिक धन्यवाद देने मे आज असीम आनन्दानुभव कर रहा हू ।

हिन्दू धर्म के साधारण सिद्धान्तो का अग्रेजी भाषा मे जिस खूबी से आपने वर्णन किया है, मैं नही समझ सका कि उससे वढ़कर स्पष्टता से कोई भी व्यक्ति भाषा के स्वाभाविक अभावो एव वधनो के कारण प्रकट कर सकता है । विदेश मे आपके ऐसे भाषण हुए हैं और विदेशियो के धाथ आपने ऐसा व्यवहार किया है कि उसके प्रभाव से भिन्न-भिन्न देशो तथा भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो के (अनुयायी) मनुष्यो मे आपके प्रति आदर एव प्रशसा के भाव आ गये हैं । केवल यही नही, वल्कि आप उनके साथ इस प्रकार हिल-मिल गए हैं कि आपको अपने निः स्वार्थ उद्देश्य की पूर्ति मे पूरी सहायता मिलेगी। इसके लिए हम आपकी जितनी प्रशसा करे, थोडी है। आपने अनेक कष्ट सहनकर अमेरिका जा वहा सर्वप्रथम परिषद् मे जिस प्राचीन धर्म को हम अपना प्राण समझते हैं, उसके सिद्धान्तो की व्याख्या की है । उसके लिए इन टूटे-फूटे शब्दो द्वारा यदि अपनी कृतज्ञता प्रकठ न करें तो हम लोग कर्त्तव्यच्युत समझे जाएगे। भारतवर्ष को इस वात का गर्व है कि उसने आप जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति को अपना प्रतिनिधि बनाने का सौभाग्य प्राप्त किया है। जिन सत्पुरुषो ने सर्व धर्मों की महासभा का सघटन करने मे सफलता प्राप्त की है और जिन्होने उत्सुकतापूर्वक आपका स्वागत किया है, उन्हें भी धन्यवाद देना हमारा कर्त्तव्य है।

आप गात समुद्र पार उस महादेश मे एक अपरिचित व्यक्ति थे, परन्तु

आपका उन्होने कैसे उत्साह के साथ स्वागत किया। किस सहृदयता से आपके साथ व्यवहार किया। उन्होने आपके अनुपम गुणो को पहचाना है—उन पर वे मुग्ध हो गये हैं। यह भाव उनके उत्कृष्ट स्वभाव का द्योतक है। ठीक है, जौहरी ही जवाहिर की कद्र करता है।

इस पत्र की वीस प्रतिलिपिया (नकलें) मैं इस पत्र के साथ भेजता हूं और सविनय प्रार्थना करता हू कि आप इस पत्र को तो अपने पास रक्खें और नकलें अपने मित्रो मे वाट दें।

भवदीय अभिन्नहृदय

ता० ४ मार्च, १८९५ ई० (राजा अजीतसिंह बहादुर)

वाकआत रजिस्टर में खेतडी दरवार का

वितरण-८

पृष्ठ १९९ :

ता० ४ मार्च सन १८९५ ई० मीती फागण सु० स० १९५१ का सोमवार

सूवे ही अपोड्या हुवा मामूली कारवाई हुई स्वामी विवेकानन्दजी अमरीका मुल्क मे गया और धरम को परचार कीयो तीकी षवर अषवार मे छपी आणे प्रवाने चीठी लीषी गई तीको दरवार दसतूरी आज १० बज्या को मुकर्रिर होकर वुलावा आम लोगा के दीया गया और चारण राव राणा वगैरह ज्यो त्याग वास्ते आया छा सो वानें भी कहवाई गई। श्री हजूर पोसाष गुलावी रेसमी धारण कर इक्को सादा धारण कीयो फेर मय चवर मोरछल के दीवाण-खाने पधारया पलटण मय वाजा के सलामी दी गद्दी प्र वीराज्या ११-३५ मिन्ट गया दरवार सुरू हवो फेर ज्यो चीठी स्वामीजी के नाम लीषी गई थी वा मुनसी जगमोहन लाल जी षडा होकर सवने सुणाई। जद मुनसीजी चीठी सुणा चुक्या गाणो हुयो १२ वज्या दरवार वरखास्त हुयो। पलटन ने सीष हुई। फेर वारहठ चारण लोगा कवीत पढकर ठावा-ठावा आदमिया सुणायो। १२-४० मिन्ट गया महफिल वरषास्त करी।

ससार के इतिहास मे सर्व-धर्म समन्वय का वह पहला विराट आयोजन चिकागो मे हुआ और उस स्मरणीय सर्वधर्म-परिषद की वैठक मे स्वामीजी की सफलता की आधारशीला की नीव के पत्थर राजा अजीतसिंह थे। खेतडी से ही स्वामीजी ने अमेरिका के लिए प्रस्थान किया और यात्रा की सुव्यवस्था का सारा प्रवन्ध भी राजाजी ने ही किया था। स्वामीजी की सर्वधर्म-परिषद मे सफलता का सुसवाद पाकर खेतडी के राजा और जनता मे हर्षोल्लास-उत्साह का वातावरण छाया हुआ था।

सर्वधर्म-परिषद में भाषण

चिकागो मे उस स्मरणीय सर्वधर्म-परिषद की बैठकें सन् १८९३ ई० के सितम्बर महीने मे हुई थी। ससार के इतिहास मे सर्वधर्म-समन्वय का वह पहला विराट आयोजन था। इस सर्वधर्म-परिषद अथवा पार्लियामेन्ट आव रिलीजन्स के सभापति का आसन कार्डिनल गिबन्स ने अलकृत किया था। उपस्थिय प्रतिनिधि-समूह मे काषाय-वस्त्रधारी स्वामी विवेकानन्द अपनी विशेषता के कारण सबका ध्यान अपनी ओर खीच रहे थे। उक्त परिषद् की 17 बैठकें हुई और उनमे कितने ही लोगो को अनेक प्रश्नो का उत्तर प्रत्युत्तर देने के अतिरिक्त स्वामी विवेकानन्दजी के प्रायः सात भाषण हुए। उनके भाषण की शैली और विषय-प्रतिपादन की पटुता, उनका राजस्थानी पहनावा भगवा चोगा (केसरियारग) टरबन (साफा) वेष-विन्यास और तेजोमय मुखमण्डल,—सभी बाते एक से एक बढकर थी। सब लोग दग रह गए थे। स्वामीजी के सर्वधर्म-परिषद् मे दिए हुए उन प्रभावशाली भाषणो का मर्मानुवाद क्रमानुसार यहाँ सकलित किया जाता है —

पहला भाषण

स्वागत के उत्तर में

सर्वधर्म-परिषद् की पहले दिन की बैठक मे अन्यान्य वक्ताओ के भाषण हो जाने के बाद स्वामी विवेकानन्दजी का परिचय-प्रदान पूर्वक भाषण करने के लिए मंच पर आह्वान किया गया। स्वामीजी के खडे होते ही लोग उनकी ओर विशेष समुत्सुकता से ताकने लगे। ज्योही स्वामीजी ने महिलाओ और सज्जनो (Ladics and Gentle nen) के प्रचलित सम्बोधन को छोड कर अपना निराला 'अमेरिकावासी बहिनो और भाइयो'—सम्बोधन किया त्योही तालियो की गड-गडाहट से आकाश गूंज उठा और स्वामीजी ने अपना उक्त भाभण सुनाकर जनता को मुग्ध किया।

'अमेरिकावासी वहिनो और भाइयो ! आप लोगो के हार्दिक स्वागत के उत्तर मे, बोलने के लिए उठने से, आज मेरा हृदय असीम हर्ष से पूर्ण हो रहा है। जगत् के अत्यन्त प्राचीन सन्यासी समाज का प्रमुख होकर मैं आज आप लोगो को धन्यवाद देता हूँ। सव धर्मों का जनकस्वरूप जो सनातन हिन्दू धर्म है, मैं उसका प्रतिनिधि होकर आप लोगो को धन्यवाद देता हू तथा सभी सम्प्रदायो और जातियो के करोडो हिन्दू नर नारियो की ओर से भी मेरा आज आप लोगो को धन्यवाद है।

मेरा धन्यवाद वे सुवक्ता भी स्वीकार करें, जिन्होने इस सभा-मण्डल मे प्राच्य प्रतिनिधियो को लक्ष्य करके यह मन्तव्य प्रकाश किया कि दूर देश निवासी जातियो मे से जो लोग आज यहाँ उपस्थित है, वे भी समदर्शन के भाव की सर्वत्र घोपणा करके यश एव गौरव को प्राप्त करने मे समर्थ हुए हैं। मुझे उस धर्म का अनुयायी होने का गौरव है जिसने ससार को समदर्शी बनने तथा सार्वभौम धर्म के ग्रहण की शिक्षा चिरकाल से दी है। हम लोग समस्त जगत मे केवल समदर्शन ही नही मानते, किन्तु समस्त मतो को सत्य कहकर विश्वास रखते हैं। मैं अभिमानपूर्वक आप लोगो मे निवेदन करता हू कि मैं ऐसे धर्म का अनुयायी हूँ, जिसकी पवित्र भाषा अर्थात् सस्कृत मे अग्रेजी शब्द (Exclusion) का कोई पर्य्यायवाची शब्द नही है। मुझे इस वात का गर्व है कि मेरा ऐसी जाति से सम्बन्ध है जिसने इस जगत् की समस्त पीडित एव शरणागत अन्यान्य जातियो और मतावलम्बियो को आश्रय दिया है। मैं अभिमानपूर्वक आप लोगो से निवेदन करता हू कि जिस समय रोमन जाति के अत्याचार से यहूदी जाति के पवित्र देवमन्दिर तोडे गए, उस समय शुद्ध इपरेलाइट जाति के कुछ लोगो को जो दक्षिण भारतवर्ष मे भाग आए थे, हम लोगो ने अपनी छाती से लगाकर रक्खा था। मुझे ऐसे धर्म मे उत्पन्न होने का अभिमान है जिसने पारसी जाति की रक्षा की और उसका पालन अव तक हो रहा है। मैं आप लोगो को एक स्रोत का एक पद सुनाता हूँ, जिसका मैं अपनी वाल्यावस्था से पाठ करता रहा हूँ और जिसे अब तक लाखो मनुष्य प्रतिदिन गाया करते हैं—

रुचीना वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषा।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

—शिवमहिम्न।

अर्थात्—'जैसे नदिया भिन्न-भिन्न सोतो से निकल कर समुद्र मे मिल जातीहैं, उसी प्रकार हे प्रभु ! नाना मतो के लोग—यद्यपि भिन्न प्रतीक होते हैं, वे टेढ़े हैं वा सीधे, परन्तु— तेरी ही ओर जाते हैं'।

यह अभी जो जगत् की सबसे महती और बृहती सभाओ मे से है सारे जगत् मे गीता के निम्नोद्धृत अद्भुत उपदेश की घोषणा एव प्रचार कर रही है—

ये यथा मा प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते मनुष्या' पार्थ सर्वश ।। —गीता ।

अर्थात्—'जो मेरी ओर जिस भाव से आता है मैं असको उसी भाव से अनुगृहीत करता हूँ । हे अर्जुन ! लोग भिन्न-भिन्न मार्गों द्वारा बहुत परिश्रम से मेरी ही ओर आते हैं ।'

साम्प्रदायिक धर्म-सकीर्णता और इसके फलस्वरूप धर्मविषयक उन्मत्तता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत काल तक राज्य भोग चुकी हैं । इनके घोर अत्याचार से पृथ्वी भर गई । इन्होने अनेक बार मानुषिक रक्त से पृथ्वी को सींचा, सभ्यता नष्ट कर दी और समस्त जातियो को हताश कर डाला । यदि ये भयंकर पिशाच न होते तो मनुष्य समाज की अवस्था आजकल की दशा से कही उन्नत होती । पर इनका अन्तिम समय अब आ गया है और मुझे दृढ विश्वास है कि जो घण्टे इस सभा के सम्मानार्थ बजाए गए हैं, वे ही घण्टे धर्म-उन्मत्तता, खड्ग-प्रहार वा लेखनी की कठोरता और एक ही लक्ष्य पर जाने वालो के परस्पर के द्वेष की मृत्यु के घंटे सिद्ध होगे ।

दूसरा भाषण

(सर्वधर्म-परिषद् की पाँचवें दिन की बैठक मे ।)

सम्प्रदायों में भ्रातृभाव

मैं आप लोगो को एक छोटी-सी कहानी सुनाता हूं । अभी एक सुवक्ता ने कहा है, आओ हम लोग एक दूसरे को बुरा कहना बन्द करें । आप लोगो ने उनके इस विचार को सुना । उनको इस बात का बडा विचार है कि सदा से लोगो मे इतनी विभिन्नता क्यो है ? परन्तु मैं समझता हूँ कि जो कहानी मैं कहने वाला हूँ, उससे आप लोगो को इस विभिन्नता का कारण मालूम हो जाएगा ।

एक कूए मे एक मेंडक रहता था । वह बहुत समय से वही रहता था । उस कूए मे ही वह उत्पन्न हुआ और वही उसका पालन-पोषण हुआ । तथापि उसका आकार छोटा रहा । हाँ, इस समय के क्रम-विकासवादी (Evolutionist) उस समय वहाँ न थे जो बताते कि अँधियारे कूए मे रहने के कारण उक्त मेंडक के आँखें थी या नही, पर कहानी के लिए यहीं मान लेना चाहिए कि उसके आँखें थी और ऐसे परिश्रम एवं उद्योग के साथ जल के छोटे जन्तुओं और कीड़ो को खाकर उसे साफ रखता था कि जैसे परिश्रम एवं उत्साह से

काम करने पर कीटतत्ववादियो की गौरव-वृद्धि होती है। इसी प्रकार से वह मेढक उसी कूए मे रहकर मोटा-ताजा हो गया। एक दिन एक दूसरा मेडक जो समुद्र मे रहता था आया और कूए मे गिर पड़ा।

कूपमण्डूकने पूछा 'तुम कहाँ से आए ?'

समुद्र वाले मेडक ने उत्तर दिया 'मैं समुद्र से आया हूँ।'

'समुद्र ! भला, वह कितना बडा है ? क्या वह भी इतना ही बड़ा है जितना बडा मेरा कूआ है ?' यह कहकर उसने एक किनारे से दूसरे किनारे पर छलांग मारी।

समुद्र वाले मेडक ने कहा—'मेरे मित्र ! भला इस छोटे से कुए से क्यो कर समुद्र की उपमा दी जा सकती है।' मेडक ने दूसरी छलाग मारी और पूछा 'क्या इतना वडा है।'

समुद्र वाले मेडक ने कहा—'तुम नासमझ की तरह क्या बक रहे हो ? समुद्र की तुलना तुम्हारे कूए से क्या हो सकती है ?' तब कूए वाले मेडक ने चिढ कर कहा 'कूए से बढकर कोई वस्तु नही हो सकती। इससे बडा कुछ नही हो सकता। यह झूठा है इसे निकाल देना चाहिए।'

बन्धुओ ! ऐसी संकीर्णता हम लोगो की विभिन्नता का कारण है। मैं हिन्दू हूँ, मैं अपने छोटे कूए मे बैठा हुआ यही समझता हूँ कि मेरा ही कूआ समस्त जगत् है। ईसाई लोग अपने क्षुद्र कूए मे बैठे यही समझते हैं कि सारा ससार उसी कूए मे है। मुसलमान लोग अपने तुच्छ कूए मे बैठे हैं और उसी को सारा ब्रह्माण्ड समझ रहे हैं। मैं आप सब अमेरिका वालो को धन्यवाद देता हू कि आपने बाँध को तोडने का यत्न किया है और आशा है कि भविष्य मे परमात्मा आप लोगो के इस उद्योग मे सहायता देकर आपका मनोरथ पूर्ण करेगा।

तीसरा भाषण

(सर्वधर्म परिषद् की ९वें दिन की बैठक मे निबन्ध के रूप मे।)

हिन्दुत्व

वर्तमान काल मे तीन ऐसे धर्म हैं जो ऐतिहासिक युग के पूर्व भी विद्यमान थे, यथा हिन्दू, पारसी और यहूदी। इन धर्मों को वडे-वडे धक्के लगे परन्तु वे लुप्त न हुए और अभी तक सजीव रहकर अपनी अन्तस्थ शक्ति को सिद्ध कर रहे हैं। किन्तु विचार कीजिए कि जव यहूदी धर्म ईसाई धर्म को अपने अग मे मिलाना तो दूर रहा, स्वयं ही अपनी सर्वविजयी सन्तान द्वारा अपनी जन्मभूमि से निकाल दिया गया और जब थोडे से ही पारसी लोग अपने महान् धर्म की कथा सुनाने को रह गए, तब भारतवर्ष मे सम्प्रदाय के पीछे सम्प्रदाय उठे और

वेदोक्त धर्म को इस तरह जड से हिलाने लगे मानो उसे गिराकर मानेंगे। परन्तु जैसे घोर भूकम्प के समय समुद्र का जल कुछ ही पीछे हटकर फिर पहले से सहस्रगुणा अधिक वेग से सम्मुखस्थ सब पदार्थों का ग्रास करता है वैसे ही इन सम्प्रदायो के जनक के समान वेदोक्त धर्म ने भी कुछ ही पीछे हटकर फिर सघर्ष (कोलाहल) कर अन्त मे उन सबको सर्वथा ग्रास करके अपना विराट् शरीर पुष्ट कर लिया।

आधुनिक विज्ञान की नवीन से नवीन आविष्क्रिया जिस वेदान्त धर्म के महान् उच्च भावो की प्रतिध्वनि मात्र है उस सर्वश्रेष्ठ वेदान्त ज्ञान से लेकर सामान्य मूर्तिपूजा एवं इससे सम्बन्ध रखने वाली नाना प्रकार की पौराणिक कहानियो तक का, यहा तक कि बौद्धो के अज्ञेयवाद और जैनियो के निरीश्वरवाद का भी हिन्दू धर्म मे स्थान है।

अब प्रश्न यह होता है कि इन भिन्न-भिन्न एव बाह्य दृष्टि से विरोधी भावो की भित्ति या मूल कहाँ है ? वह साधारण केन्द्र क्या है जिसका अवलम्बन कर यह सब ठहर सकते हैं ? आज मैं यथासाध्य इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करूगा।

वेद की नित्यता

हिन्दुओ ने अपना धर्म आप्तवाक्य वेद से पाया है। वे लोग वेद को अनादि एव अनन्त मानते हैं। श्रोताओ को यह बात उपहास के समान प्रतीत होगी कि एक पुस्तक क्योकर अनादि एव अनन्त हो सकती है। परन्तु वेद से किसी पुस्तक-विशेष का अभिप्राय नही है। उनका तात्पर्य उस सचित आध्यात्मिक सत्य-समूह से है जिसको भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न भिन्न ऋषियो ने आविष्कार किया। जैसे मध्याकर्षण-शक्ति का नियम मनुष्य समाज मे प्रकट होने के पहले से ही सर्वत्र विद्यमान था और यदि लोग इस नियम को भूल भी जाएँ तो भी यह सदा स्थिर रहेगा। इसी प्रकार आध्यात्मिक जगत् के सब नियम सदा से विद्यमान हैं और रहेगे। जीवात्मा से जीवात्मा का और जीवात्मा से सर्वजन पिता परमात्मा का जो दिव्य, पवित्र एव आध्यात्मिक सम्बन्ध है वह प्रकाशित होने से पहले भी था और चाहे हमलोग उसे भूल जाएँ तो भी वह वैसा ही रहेगा।

ऋषि

इन आध्यात्मिक नियमो के आविष्कार करने वालो को ऋषि कहते हैं और हम लोग उनको सिद्ध महापुरुष मानते हैं और मैं बडे हर्ष के साथ श्रोताओ को विदित करता हूं कि इन महात्माओ मे कई एक स्त्रिया भी हुई हैं।

सृष्टि अनादि तथा अनन्त है

यहा यह बात कही जा सकती है कि उक्त आध्यात्मिक नियमावली 'नियम' होने के कारण अनन्त वा अन्तहीन हो सकती है, परन्तु उसका आदि कभी अवश्य हुआ। वेद की शिक्षा यह है कि सृष्टि की नियमावली अनादि व अन्नत है। विज्ञानशात्र ने भी यह सिद्ध किया है कि सृष्टि-शक्ति की समष्टि सर्वकाल मे समभाव से रहती है। यदि ऐसा समय रहा हो जो जब कुछ भी नही था तब यह सब प्रादुर्भूत शक्तिया कहा थी ? कोई-कोई कहते हैं कि वे कारणावस्था मे ईश्वर मे थी। यदि यही हो तो ईश्वर कभी कारण वा अप्रकाश अवस्थावाला और कभी कार्य वा प्रकाश अवस्थावाला होने से परिवर्तनशील होगा और जो पदार्थ परिवर्तनशील है वह यौगिक या मिश्र अवश्य होगा। अब यौगिक पदार्थ मात्र नाशवान हैं, अतवए ईश्वर भी नाशवान होगा। यह सर्वथा असम्भव है, यह कभी हो ही नही सकता। इस कारण कोई ऐसा काल नही था जब सृष्टि न रही हो। यदि आप लोग मुझे एक उपमा देने की आज्ञा दें तो मैं कहूगा कि सृष्टा और सृष्टि ऐसी दो अनादि एव अनन्त समानान्तर रेखाएँ हैं जो साथ ही साथ चल रही हैं। ईश्वर नित्य महाशक्ति स्वरूप है और सब विषयो का विधान करने वाला है। उसी के प्रभाव द्वारा प्रलयसागर से ब्रह्माण्ड पर ब्राह्मण्ड प्रकट होते हैं और कुछ दिन तक चलकर फिर विनाश या अप्रकट अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। ऐसा नित्यकाल से हो रहा है। हिन्दू लोग प्रतिदिन इसका पाठ करते हैं, यथा—

'सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।'

इसका अभिप्राय यह है कि सूर्य और चन्द्र को विधाता ने वैसा ही बनाय है जैसा कि पहले बनाया था, और यह बात वर्तमान विज्ञान-शात्र के अनुकूल है, ।

आत्मा

सकती

मैं यहाँ खडा हुआ हू और यदि मैं अपनी आँखें बन्द करके सत्ता वा' आत्मा अहम्, अहम् का ध्यान करूँ तो मेरे विचार मे क्या आवेगा। मैं शरीर हूँ शरीर विचार ही आवेगा। यदि यही हो तो क्या मैं जड पदार्थ के सयोग के ाने का रिक्त और कुछ नही हूँ ? वेद कहते हैं 'नही।' मैं आत्मा हूँ जो श असीम, आश्रय करके विराजमान है। मैं शरीर नही हूँ। शरीर नाश हो जा‍ई स्वयं जड मेरा नाश नही है। इस शरीर मे मैं हू और इसके नाश होने प यह है कि रहूँगा और इससे पहले भी मैं था। यह आत्मा शून्य से सृष्ट नही हुई, ? और सृष्टि का तात्पर्य भिन्न-भिन्न द्रव्यो के सयोग ही से है और सयुक्त का वियोग या लय कभी न कभी अवश्य होगा। यदि आत्मा सृष्ट

इस पूर्ण ब्रह्म को कैसे यह भ्रान्ति हो सकती है कि वह अपूर्ण है ? कहा जाता है कि हिन्दू लोग इस प्रश्न से दूर रहते हैं और कहते हैं कि ऐसा हो ही नही सकता। और कोई-कोई ज्ञानी आत्मा और जीव के मध्य मे कई एक ईषत्पूर्ण सत्ता की कल्पना करते है और उसको बहुत तरह वैज्ञानिक दीर्घाकार संज्ञा द्वारा प्रसिद्ध करते हैं, पर संज्ञा से किसी वस्तु की मीमासा नही होती। फिर भी प्रश्न ज्यो का त्यो बना रहता है कि यह पूर्ण पुरुष अपूर्ण कैसे हो गया ? इस शुद्ध और पूर्ण के स्वभाव में किस प्रकार अणुमात्र भी व्यतिक्रम हो सकता है ? परन्तु हिन्दू लोग बहुत निष्कपट हैं, वे लोग मिथ्या तर्क की सहायता नही लेते, किन्तु इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए वीरता से प्रस्तुत होते हैं। वे कहते हैं कि हम नही जानते। हम नही जानते कि किस प्रकार वह पूर्ण पुरुष अपने को अपूर्ण जड सयुक्त और उसके नियमाधीन समझता है। यही सर्व प्रकार सत्य है। यह सत्य है कि प्रत्येक पुरुष को यह ज्ञान है कि हम शरीर है। हम लोग इस बात का समाधान करने की चेष्टा नही करते कि इस शरीर मे हम क्यो है। और 'इश्वर की इच्छा ऐसी है' कहने पर भी कोई समाधान नही होता है। इसमे हिन्दुओ का कथन है—'हम नही जानते,' इससे इसमे कुछ भी अधिकता नही है।

अब यह समझ मे आया कि जीवात्मा नित्य और अमर, पूर्ण और अनन्त है और एक शरीर से दूसरे शरीर मे (केन्द्र के बदल) जाने को मृत्यु कहते हैं। यह वर्तमान शरीर पूर्व कर्म के अनुसार है और भविष्यत् शरीर वर्तमान कर्म के अनुसार होगा और इसी प्रकार बारम्बार जन्म और मृत्यु के चक्र मे आत्माएँ घुमाई जा रही हैं।

मनुष्य पापी नहीं, अमृत पुत्र है

अब यहाँ एक और प्रश्न होता है। जैसे आँधी मे कोई छोटी नाव कभी तो फेनयुक्त लहरो के ऊपरी झकोरे मे रहती है और तत्पश्चात् ही उनके बीच गहराई मे जा पडती है, क्या वैसे ही आत्मा सत् एव असत् कर्म के नितान्त अधीन होकर कभी ऊपर और कभी नीचे को डगमगा रही है ? क्या यह दुर्बल सहायहीन आत्मा नित्य प्रवाहित, प्रचण्ड, भीषण एव गर्जनशील कार्य कारणरूप प्रवाह से सर्वदा ताडित हो रही है ? क्या यह आत्मा छोटे से कीड़े की भाँति उस भ्रमणशील कारण चक्र पर स्थापित है जो सन्मुखस्थ सब पदार्थों को कुचलता जाता है और न तो अनाथ विधवा के आँसू और न अनाथ बालक के विलाप से ही ठहरता है ? यह विचार करते ही हृदय आशाशून्य हो जाता है, परन्तु यही प्रकृति का नियम है। तब क्या इसका कोई उपाय नही हैं ? रक्षा पाने का कोई

पथ नही है ? यही करुण विलाप मनुष्य के आशा शून्य हृदय के निम्नस्तल से उठा। दीनदयालु विश्व पिता के सिंहासन तक यह विलाप पहुँचा, तब वह आशा एव सान्त्वना के सन्देशरूप से एक वेदविद् ऋषि के हृदय मे प्रकट हुआ और तत्क्षणात् दैवशक्ति से अनुप्राणित हो उस महर्षि ने खड़े होकर गम्भीर घोषणा की और उच्च स्वर से जगत् के लोगो को यह हर्षसवाद सुनाया—

'शृणवन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा ।
आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥
—श्वेताश्वतरोपनिषत् २।५ ।

वेदाहमेत पुरुष महान्त, आदित्यवर्ण तमस. परस्तात्
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्य. पन्था विद्यतेऽयनाय
—श्वेताश्वतरोपनिषत् ३।८ ।

'अमृत के सन्तान' अहो ! यह कैसा मधुर एव उल्लासवर्द्धक सम्बोधन है। उसी मधुर नाम से मैं आप लोगो से सम्भाषण करना चाहता हू । आप अमृत के अधिकारी हैं। आप लोगो को पापी कहना हिन्दुओ को अस्वीकार है। आप ईश्वर की सन्तान है, अमृत के अधिकारी हैं और पवित्र तथा पूर्ण हैं । क्या अपने आपको पापी कहते हैं ? ऐसा होना असम्भव है । मनुष्य को पापात्मा कहना ही महापाप है, इस विशुद्ध मानवात्मा मे केवल कलक लगाना है । बन्धुओ, सिंह-स्वरूप होकर आप अपने को भेड क्यो समझते है ? इस भ्रान्ति को दूर कीजिए। आप अक्षय, मुक्त, सदा से आनन्दमय आत्मा हैं। आप जड पदाथ नही, आप शरीर नही। जड पदार्थ तो आपका दास है, आप जड़ पदार्थ के दास नही हैं।

इसी कारण वेद घोषणा कर रहे हैं कि यह सृष्टि भयानक एव निर्दय नियमो का प्रवाहस्वरूप नही है वा कार्य-कारण के नित्य बन्धन मे भी नही पड़ी है। परन्तु इन प्राकृतिक नियमो के आदि वा मूल मे प्रत्येक परमाणु एवं शक्ति के बीच मे एक ऐसा महापुरुष है जिसकी आज्ञा से वायु चलता है, अग्नि प्रज्वलित होती है, मेघ वरसता है और मृत्यु जगत मे भ्रमण करती है, यथा—

'भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्य. ।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः ॥'
—कठोपनिषत्, ६।३ ।

उस पुरुष का स्वरूप कैसा है ? वह सर्वव्यापक, शुद्ध, निराकार और सर्व-शक्तिमान् है और सव पर उसकी पूर्ण दया है । 'तू ही हमारा पिता है, तू हमारी माता है, तू ही हमारा प्रिय बन्धु है और तू ही सम्पूर्ण सामर्थ्य का मूल है, तू ही

इस विश्वजगत् का भार उठाए हुए है, तू ही मुझे इस जीवन का क्षुद्र भार उठाने का सामर्थ्य दें'। वैदिक ऋषियो ने ऐसी स्तुति की है। अब हम उसका पूजन कैसे करें? भक्ति एवं प्रेम से करे। उसको प्रेमास्पद समझकर उसे ऐहिक और पारलौकिक वस्तुओ की अपेक्षा अधिकतर प्रिय समझकर पूजन करना चाहिए। वेदो मे शुद्ध-प्रेम-सम्बन्धी उपदेशो मे ऐसा ही वर्णन किया गया है। अब हम लोगो को इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि भगवान् श्रीकृष्णजी ने—जिनको हिन्दू लोग ईश्वर का अवतार मानते हैं—कैसे इस विशुद्ध प्रेम को पूर्ण रूप से प्रकट किया और इसका उपदेश किया। उनका उपदेश है कि मनुष्य को संसार मे कमल के पत्र की भाति रहना चाहिए। वह जैसे जल मे उत्पन्न होकर भी जल से आर्द्र नही होता, वैसे ही मनुष्य को भी इस संसार मे रहना उचित है, अर्थात् अपने चित्त को ईश्वर मे लगाकर इन्द्रियो से कार्य करे, परन्तु संसार से निर्लेप रहे। ऐहिक वा पारलौकिक फल प्राप्ति की आशा के लिए ईश्वर की भक्ति करना उत्तम है, परन्तु केवल प्रेम के हेतु ईश्वर की भक्ति करना अति उत्तम है। उससे प्रार्थना भी यही करना कि—

'न धनं न जनं न सुन्दरी वनिता वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि॥

—श्रीकृष्णचैतन्य।

अर्थात् हे जगदीश, न तो मैं धन चाहता हूँ, न सुत, और न विद्या। यदि तेरी इच्छा हो तो सहस्र बार नर्क भोगने को भी तैयार हूं, पर तू मेरी एक विनती मान ले कि तुझमे केवल प्रेम के अर्थ मेरी निष्काम भक्ति बनी रहे।

भारतवर्ष के सम्राट्, धर्मपुत्र युधिष्ठिर श्रीकृष्ण के एक भक्त थे। शत्रुओ ने उनको राजसिंहासन से उतार दिया था, इसलिए उनको अपनी पत्नी सहित हिमालय के किसी वन मे रहना पड़ता था। वही एक दिन उनकी पत्नी ने उनसे पूछा—'हे नाथ, आप तो बड़े धार्मिक पुरुष हैं, इसीलिए लोगो ने भी आपका नाम धर्मराज रखा है, तथापि आपको इतना दुःख क्यो भोगना पड़ रहा है?' राजा युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—'हे प्रिये! देखो, हिमालय शिखर कैसा सुन्दर तथा महान् है, मैं उससे बड़ा प्रेम रखता हूँ। वह मुझे कुछ दे नही देता, पर महान् और सुन्दर वस्तु से प्रेम करना ही मेरा स्वभाव है, इसलिए मेरा इसमे अनुराग है। इसी प्रकार ईश्वर मे मेरा प्रेम है, वही सर्व सौंदर्य एवं महत्त्व का मूल है। वही एकमात्र भक्ति और प्रेम का पात्र है। उससे प्रेम रखना ही मेरा स्वभाव है, इस कारण मैं उससे प्रीति रखता हूँ। मैं किसी पदार्थ के निमित्त उससे प्रार्थना नही करता, न उससे कुछ मागता हूँ। वह जहा चाहे मुझे रखे।

जिस अवस्था मे चाहे उसी मे रखें। केवल प्रेम ही के लिए मुझे प्रीति करनी चाहिए। मैं इस प्रेम मे व्यापार करना नही चाहता।'

नाह कर्म्मफलान्वेषी राजपुत्रि चराम्युत।
ददामि देयमित्येव यजे यष्टव्यमित्युत॥

× × ×

धर्म्मं एव मन· कृष्णे स्वभावाच्चेव मे धृतम्।
धर्म्म वाणिज्यको हीना जघन्यो धर्म्मवादिनाम्॥

—महाभारत, वनपर्व, ३१।२,५।

वेद कहते हैं कि आत्मा ब्रह्मस्वरूप है, परन्तु केवल पाच भौतिक द्रव्यो मे बद्ध है, जब बन्धन छूट जाएँगे तब ही उसको पूर्ववत् पूर्णता लाभ होगी। इसीलिए इस अवस्था को मुक्ति अर्थात् जन्म मृत्यु एव मानसिक पीडा प्रभृति से निष्कृति होना कहते हैं। यह बन्धन केवल ईश्वर की दया से ही कट सकता है और दया पवित्र लोगो पर होती है, अतएव पवित्रता ही उसकी दया प्राप्त करने का उपाय है। उसकी दया होने से पवित्र हृदय मे वह प्रत्यक्ष हो जाता है, तब शुद्ध तथा पवित्र मनुष्य परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं। तभी हृदय की कुटिलता नष्ट होती है और वह सरल हो जाता है, यथा—

भिद्यते हृदयग्रथिश्छिद्यन्ते सर्वसशया.।
क्षीयन्ते चास्य कर्म्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

—मुण्डकोपनिषत् २।२।८ तथा श्रीमद्भागवत् १।२।२१

अपरोक्षानुभूति हिन्दू धर्म का मूल मंत्र है

उस समय सब सन्देह दूर हो जाता है और मनुष्य कार्य कारण के कठिन नियम के अधीन नही रहता। इसलिए हिन्दू धर्म का यही लक्ष्य है, यही मुख्य सिद्धान्त है। हिन्दू लोग केवल मात्र मत एव शास्त्र विचार पर ही भरोसा नही रखना चाहते। यदि इस परोक्ष (इन्द्रिय द्वारा प्राप्त) ज्ञान से परे भी कोई अपरोक्ष अर्थात् इन्द्रियातीत ज्ञान है तो वे उसका साक्षात्कार कर लेना चाहते हैं। यदि जड पदार्थ से भिन्न आत्मा कोई वस्तु है, यदि कोई सर्वज्ञ दयालु परमात्मा है तो वे लोग उससे साक्षात्कार करना चाहते हैं। उसका दर्शन न मिलने से सारे सशय कभी नष्ट नही होते। सबसे उत्कृष्ट प्रमाण जो सनातन-धर्मावलम्बी महात्मागण आत्मा एवं परमात्मा के विषय मे देते हैं वह यह कथन है—'मैंने आत्मा का साक्षात्कार कर लिया है, मैंने परमात्मा का दर्शन किया है।' ऐसा

न होने से कोई भी मनुष्य पूर्णत्व लाभ नही करता। किसी विशेष उपदेश वा मत को मान लेना ही हिन्दू धर्म नही, किन्तु उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति करना ही उसका मुख्य उद्देश्य है। किसी मत पर केवल विश्वास रखना हिन्दू धर्म नही, किन्तु उसकी साधना और वही वस्तु हो जाना ही मुख्य उद्देश्य है।

इसलिए हम देखते हैं कि उद्योग एव प्रयत्न से पूर्ण लाभ करना, देवत्व प्राप्त करना, ईश्वर के समीप पहुँचना ही हिन्दुओ की सम्पूर्ण साधन प्रणाली का लक्ष्य है और ईश्यर के समीपस्थ होकर उसका प्रत्यक्ष दर्शन करना तथा सर्वलोक पिता की भाति पूर्ण हो जाना ही हिन्दुओ का धर्म है।

पूर्णता लाम करने पर मनुष्य की क्या आस्था होती है ? वह तब अनन्त परमानन्द का उपभोग करता है और परमानन्द धाम ईश्वर को प्राप्त करने से सर्वदा पूर्ण आनन्द मे रहता है। यहाँ तक सभी हिन्दुओ का मत एक है। इस विषय मे भारतवर्ष के सम्पूर्ण धर्म सम्प्रदाय एकमत हैं। अब यह प्रतीत होता है कि पूर्णावस्था ही का नाम तुरीय वा निर्विकल्प अवस्था है और यही निर्विकल्प अवस्था एकमात्र अद्वितीय और गुणातीत है। इसमे व्यक्तित्व (अपनी सत्ता को अलग मानना) नही रह सकता। अतएव जब कोई जीवात्मा पूर्ण वा निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त करता है तब वह ब्रह्म के साथ एकीभूत,[1] हो जाता है। इस अवस्था मे जीवात्मा द्वैतज्ञान शून्य होने से स्वय ही सत्स्वरूप, ज्ञानस्वरूप और आनन्दस्वरूप हो जाता है। हमने कई पाश्चात्य दार्शनिको की पुस्तको मे जीवात्मा के अपना व्यक्तित्व वा अहकारत्व त्याग को जडावस्था कह कर निर्देश करते पाया है। इससे उनकी अज्ञानता ही प्रकट होती है, क्योकि कहावत है— 'जिसको कभी चोट नही लगी हैं वही चोट के चिह्न को देख कर हँसता है।'

ब्रह्मत्व का प्राप्त करना वा समाधि अवस्था—जड़ावस्था नहीं है

मैं आपसे कहता हूँ कि यह महोच्च अवस्था जडावस्था नही है। यदि इस क्षुद्र शरीर का आत्मबोध होने से हमे इतना आनन्द होता है तो दो व तीन अथवा चार या पाच शरीरो के आत्मबोध का आनन्द और भी अधिक होगा और इसी प्रकार जब समग्र विश्व का आत्मबोध' हो जायगा तब आनन्द की चरमावस्था

---

१ 'स यो ह वै तत् परम ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति।

—मुण्डकोपनिषत्, ३।२।९

'यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानत ।
तत्र को मोहः क शोक एकत्वमनुपश्यत' ॥

—ईशोपनिषत्, ७

प्राप्त हो जायगी। मानव जीवन का यही लक्ष्य है। इस कारण इस असीम विश्व से एकत्व लाभ के लिये इस दु:खमय पापरूप अहकार का त्याग आवश्यक है। तभी हम मृत्यु से तर सकते है जब प्राणमय हो जाते हैं, तभी दु ख से निवृत्त होंगे जब परमानन्द मे लय हो जायँगे। जब पूर्ण-ज्ञान के साथ एकत्व प्राप्त होगा तभी अज्ञानता दूर हो सकती है। विज्ञानशास्त्र भी इसी सिद्धान्त को पहुँचा है। विज्ञान शास्त्र ने यह सिद्ध कर दिया है कि जिस भौतिक शरीर को हम प्रत्यक्ष करते हैं और एकभावापन्न समझते हैं, वास्तव मे वह वैसा नही है, यह केवल हमारा भ्रम है; क्योकि निरवच्छिन्न जड समुद्र मे तरगवत् हमारे शरीर का सर्वदा परिवर्तन होता है—अर्थात् प्रति मुहूर्त मे नवीन शरीर बनता है। परन्तु हमारा चैतनाश परिवर्तनशील या भ्रमात्मक न होने के कारण सर्वदा सत्य है। इसलिये 'मैं एकमात्र अद्वितीय आत्मा हूँ'—यह अद्वैत-ज्ञान ही युक्तियुक्त सिद्धान्त है।

अद्वैतज्ञान ही धर्म विज्ञान का चरम सिद्धांत है

विज्ञान शास्त्र एक मूल वस्तु या शक्ति के अन्वेषण मे लगा हुआ है और जब कोई विज्ञान शास्त्र उसका आविष्कार कर लेगा तभी वह अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच जायगा। जब रसायनशास्त्र उस एक द्रव्य का आविष्कार करेगा जिससे अन्यान्य सब जड पदार्थ उत्पन्न हो सकते है तभी उसकी उनन्ति पराकाष्ठ को पहुचेगी। और पदार्थ विज्ञान भी तभी सम्पूर्ण होगा जब ऐसी एक शक्ति को वह जान लेगा जिससे अन्यान्य शक्तियो का प्रादुर्भाव हुआ है। धर्म-विज्ञान भी तभी पूर्णता लाभ करेगा जब उस मूल कारण को देख लेगा जो इस मर्त्य लोक का एकमात्र अमृतस्वरूप है, जो सर्वदा परिवर्तनशील जगत् की एक-मात्र, अचल, अटल और मूलभित्ति है और जो एकमात्र परमात्मा है और सब आत्माएँ जिसका प्रतिविम्बस्वरूप हैं। इस प्रकार से लोग बहु ईश्वरवाद और द्वैतवाद प्रभृति से होकर चरम अद्वैतवाद तक पहुचे हैं। धर्मविज्ञान इसके आगे और नही चल सकता है। यही सबकी परमगति है, यही विज्ञान-शास्त्र का चरम सिद्धान्त है।

हिन्दू धर्म और विज्ञान का सामंजस्य

जितने विज्ञान शास्त्र हैं अन्त मे सभी इस सिद्धान्त पर आवेंगे। आजकल विज्ञान शास्त्र मे जगत् का सृष्ट किया जाना नही कहते, किन्तु जगत् का प्रकाश या प्रदुर्भाव होना बोलते हैं। हमको (हिन्दुओ को) हर्ष है कि जो बात हमारे हृदय मे युगयुगान्तर से पुष्ट हो रही थी, अब बड़ी दृढ और ओजस्विनी भाषा मे

वही बात सिखाई जाती है—जिसको विज्ञान शास्त्र के नूतन सिद्धान्त ने और भी दृढतर तथा स्पष्ट कर दिया है।

तथाकथित पौत्तलिकता वा मूर्तिपूजा

अब हम दर्शनशास्त्र के उच्च शिखर से उतर कर साधारण अज्ञानी लोगो के धर्म विषय की आलोचना करते हैं। मैं आप लोगो को पहले ही चिताये देता हूं कि हिन्दुस्तान मे बहुईश्वर वाद नही है। प्रत्येक मन्दिर मे कोई व्यक्ति खड़ा होकर सुने तो उसे ज्ञात होगा कि पूजकगण उन मूर्त्तियो मे ईश्वर के समस्त गुण यथा सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता इत्यादि का आरोप करते हैं। इसको बहु-ईश्वरवाद नही कह सकते और न इसका नाम देवता विशेष का प्राधान्यवाद हो सकता है। 'गुलाब को चाहे जिस नाम से पुकारो, पर सुगन्धि वही रहेगी।' केवल नाम से ही किसी वस्तु का पूर्ण ज्ञान नही हो सकता।

मुझे स्मरण है कि जब मैं बालक था, एक ईसाई हिन्दुस्थानी लोगो की भीड़ मे खडा धर्मोपदेश कर रहा था। उसके अन्य मधुर उपदेशो मे एक उपदेश यह भी था कि यदि वह उनकी (हिन्दुओ की) देवमूर्ति को एक छडी मार दे तो वह (मूर्ति) क्या कर सकती है? श्रोताओ मे से एक ने झट उत्तर दिया कि भला यदि मैं ही तुम्हारे ईश्वर को गाली दू तो वह क्या कर सकता है? उपदेशक ने कहा कि जब तुम मरोगे तो तुम्हे दण्ड मिलेगा। तब उस ग्रामीण ने कहा—'इसी प्रकार जब तुम भी मरोगे तो हमारी देवमूर्ति तुम्हे दड देगी।'

वृक्ष की पहचान उसके फल से होती है। और जब मैंने इन्ही लोगो मे जो मूर्ति पूजक कहलाते है, ऐसे पुरुषो को देखा है जिनके समान सदाचारी, आत्म-विवेकी और भक्तिमान् पुरुष अन्यत्र विरले ही देख पडते हैं तो मेरे मन मे विचार उठता है—'क्या पाप से कभी ऐसी पवित्रता हो सकती है?'

बिना मूर्ति के ध्यान करना असम्भव है

कुसंस्कार मनुष्य का शत्रु है, परन्तु सकीर्णता उससे भी घोर शत्रु है। भला, जब ईश्वर सर्वव्यापी है तो ईसाई-धर्मावलम्बी प्रार्थना के लिए गिरजे मे क्यो जाते हैं? वे क्रुस को क्यो इतना पवित्र मानते हैं? प्रार्थना पढते समय आकाश की ओर मुह क्यो करते हैं? कैथोलिक (ईसाइयो का एक सम्प्रदाय) गिरजे मे बहुत-सी मूर्त्तिया क्यो रहती हैं? प्रार्थना पढते समय प्रोटेस्टेंट (ईसाईयो का दूसरा सम्प्रदाय) लोगों के मन मे इतनी भावपूर्ण मूर्त्तिया क्यो रहती हैं? भाइयो, जैसे बिना श्वास के हम नही जी सकते, वैसे ही बिना जड मूर्त्ति के किसी वस्तु का ध्यान वा विचार हम कभी नही कर सकते। और सगति के नियमानुसार

यही जड मूर्त्तिया मानसिक वृत्तियो का उद्घाटन करती हैं और मानसिक वृत्तियो से जड मूर्त्तिया प्रकट होती हैं। सर्वव्यापकता शब्द का यथार्थ अर्थ जगत् के प्राय सब मनुष्य नही समझते। क्या परमेश्वर की कोई बाह्य विस्तृति है? यदि नही, तो जब हम इस शब्द (अनन्त वा सर्वव्यापी) का उच्चारण करते हैं तो विस्तृत जगत् का ज्ञान मन मे क्यो उदय होता है?

हम जानते हैं कि हमारी प्रकृति के नियमानुसार परमेश्वर की अनन्तता (अनन्तभाव) का ध्यान करते समय हमारे अनन्त नीलाकाश या अपार समुद्र के विचार, किसी न किसी कारण से, आप-ही-आप मन मे उदय होते हैं और जैसे कोई-कोई परमेश्वर की सर्वव्यापकता एव पवित्रता का भाव, अपने स्वभावानुसार, गिर्जा, मसजिद तथा क्रुश (सजिया) के साथ सम्बद्ध रखते हैं वैसे ही हिन्दू लोग भी परमात्मा की पवित्रता, नित्यत्व, सर्वव्यापित्व इत्यादि भावो को नाना प्रकार की देव मूर्त्तियो के साथ सम्बद्ध रखते हैं। परन्तु भेद यह है कि कोई-कोई अपने धर्मसम्प्रदायरूपी सीमा मे बन्द रहकर अधिक उन्नति नही करते, क्योकि उनकी राय मे किसी विशेष उपदेश का स्वीकार तथा परोपकार करना ही मुख्य है। किन्तु हिन्दुओ का प्रधान लक्ष्य अपरोक्षानुभूति या आत्मा का साक्षात् करना ही है। मनुष्य को देवतुल्य होना चाहिए—आत्मोपलब्धि करनी चाहिए। अतएव मूर्त्ति, मन्दिर, गिरजा वा धर्मशास्त्र इत्यादि उसके धर्म-जीवन की बाल्यावस्था के सहायक मात्र हैं, ये सब उसके चरम लक्ष्य या उद्देश्य नही।

परन्तु भ्रामात्मक नहीं है

साधक को सर्वदा अपने धर्म-पथ से आगे बढना है, उसको कही ठहरना न चाहिए। वेद मे वर्णित है कि बाह्य उपासना[1] तथा मूर्त्ति पूजन प्रभृति प्रथम अवस्था के सहायक हैं। इससे कुछ उच्च गति प्राप्त करने मे मानसिक उपासना का विधान है। परन्तु ईश्वर-साक्षात् करना ही सर्वोत्कृष्ट और चरमावस्था है। जो धर्मानुरागी साधक प्रथम अवस्था मे देवमूर्त्ति के आगे दण्डवत् करता था वही फिर आत्मज्ञान के लाभ करने पर क्या कहता है, सुनिये—

'न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकम्।
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्नि॥

---

१ उत्तमो ब्रह्मसद्भावो ध्यानभावस्तु मध्यम.।
स्तुतिर्जपोऽधमो भावो बहि पूजाऽधमाधम.॥

महानिर्वाण-तन्त्र, ४ उल्लास।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वम् ।
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।

—कठोपनिषत, ५।१५।

अर्थात्—'उसको (ब्रह्म को) न तो सूर्य प्रकाश कर सकता है, और न चन्द्रमा वा तारे, विद्युत उसको नही प्रकाश कर सकती और न वह जिसे हम अग्नि कहते हैं, यही सब उससे प्रकाशित होते हैं।' इस साधक को अब वाह्य उपासना की आवश्यकता न रहने पर भी अन्य धर्मावलम्बियो की तरह वह मूर्त्ति-पूजन को पाप का मूल नही बताता, वरन् उसको धर्म्मोन्नति रूप मार्ग की एक आवश्यक सीढी समझता है। मनुष्य की बाल्यावस्था ही यौवनादि की जन्मदाता है या उन्हे प्रकट करती है। क्या किसी वृद्ध पुरुष को अपनी बाल्यावस्था वा युवावस्था को बुरा या पाप का मूल कहना उचित है ? शास्त्र की ऐसी आज्ञा नही है कि मूर्त्ति पूजा सब हिन्दू लोगो का अवश्य कर्त्तव्य है। परन्तु यदि कोई मनुष्य किसी मूर्त्ति के आश्रय से आत्मज्ञान की उपलब्धि कर सकता है तो क्या इसे पाप कहना उचित है ? जब वह उस सीढी के भी पार हो जाय तब भी उस मूर्त्ति-पूजन की अवस्था को भ्रम कहना उचित नही है। हिन्दू कहते हैं कि मनुष्य भ्रम से सत्य की ओर नही जाता, किन्तु सत्य से सत्यान्तर मे जाता है—नीचे से ऊपर को जा रहा है। हिन्दुओ के मतानुसार जितने धर्म हैं—अज्ञानियो के धर्म से वेदान्त के अद्वैतवाद तक वे सब उस अनन्त ब्रह्म के ज्ञान और उपलब्धि के भिन्न-भिन्न उपाय हैं। मनुष्य अपने-अपने जन्म एव सस्कार के अनुसार किसी न किसी उपाय का आश्रय कर आगे बढता है। अतएव प्रत्येक जीवात्मा गरुड (Eagle) के बच्चो की तरह ऊचे से ऊचे चढती जाती है और इसी प्रकार अपनी शक्ति बढाती हुई अन्त मे तेजोमय महान् सूर्य तक पहुच जाती है।

बहुत्व मे एकत्व ही प्रकृति का नियम है, यह बात हिन्दुओ को भली भाति ज्ञात है। अन्यान्य धर्मों मे कतिपय नियम निर्दिष्ट एव विधिबद्ध कर दिये गये हैं और उन्ही नियमो के अनुसार समस्त जन-समुदाय जबरदस्ती चलाया चाहते हैं। वे समस्त जन-समुदाय के सम्मुख एक ही माप कोट लेकर राम, श्याम, हरि सबको पहनने की आज्ञा देते हैं। यदि माप का कोट राम, श्याम, हरि को ठीक न हो तो वे लोग नगे ही रहे। हिन्दू लोगो को यह ज्ञात हो गया है कि निरपेक्ष (Abs lute) ब्रह्म का वर्णन, ध्यान और उपलब्धि सापेक्ष (Relotive) ज्ञान द्वारा ही होती है और ये मूर्त्तिया, क्रुस और मुसलमानो का अर्द्धचन्द्रकार सकेत केवल आत्मज्ञान लाभ करने के सहायक हैं। यह बात नही है कि इस सहायता की आवश्यकता सभी को है, पर बहुतो को है, और जिनको इस सहायता की आवश्यकता नही

है उनको भी इसे बुरा कहने का अधिकार नही ।

मैं आप लोगो से और भी एक बात कहता हूं, हिन्दुस्थान मे मूर्त्ति पूजन कोई भयोत्पादक विषय नही है, न वह किसी को कोई बुरा काम सिखलाता है। वरन् इसके विपरीत यह साधारण अधिकारी के लिये सत्यज्ञान-ग्रहण का उपाय है। हिन्दुओ मे भी कुछ भ्रम है, पर ध्यान रखिये कि उससे वे आप ही अपने शरीर को पीडा देते हैं, दूसरे धर्मावलम्बियो का गला नही काटते। कोई मूढ हिन्दू धर्मोन्मादवशत: चिता पर अपने को जला दे तो जला दे, पर भिन्नमतावलम्बी के विनाश के निमित्त वह अग्नि (Fire of Inquisition) प्रज्वलित नही करता। जैसे डाइनो को जला देने से ईसाई-धर्म पर किसी प्रकार का दोषारोपण नही हो सकता वैसे ही अपने शरीर को मूढतावश जला देने से हिन्दू-धर्म मे किसी प्रकार का दोषारोपण नही हो सकता ।

हिन्दुओ के मत में सव धर्म भिन्न-भिन्न पुरुष एव स्त्री के भिन्न-भिन्न कारण और अवस्था के अनुसार बने हैं, पर सव एक ही लक्ष्य अर्थात् ईश्वरोपलब्धि की ओर जा रहे हैं। प्रत्येक धर्म का उद्देश्य जडभावापन्न मनुष्य मे ब्रह्म का प्रकाश होना ही है और वही परमात्मा सवका प्रेरक और उपदेशकर्त्ता है, तो फिर इनमे इतना विरोध क्यो है ? हिन्दू लोग कहते हैं कि बाह्य दृष्टि से ही ऐसा देख पडता है, वास्तव मे यह बात नही। एक ही सत्य वस्तु भिन्न-भिन्न अवस्था और प्रकृति के अनुसार होने से भिन्न-भिन्न प्रतीत होती है ।

एक ही ज्योति है जो भिन्न-भिन्न रङ्गो द्वारा भिन्न-भिन्न रूप से प्रकट होती है और यह प्रत्येक भिन्न-भिन्न अवस्थाओ के उपयोगी होने के लिये अति आवश्यक है। परन्तु इन सव वस्तुओ के भीतर एक ही सत्य विराजमान है, कृष्णावतार मे भगवान् ने हिन्दुओ को यह उपदेश दिया है—

'मयि सर्व्वमिद प्रोत सूत्रे मणिगणा इव ।
यद्यद्विभूतिमत् सत्व श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवागच्छत्वं मम तेजोऽशसभवम् ।।"—गीता ।

"मैं प्रत्येक धर्म मे वैसा ही विराजमान हू जैसा कि मोतियो की माला मे सूत्र रहता है, और जहा कही तुम श्रेष्ठता, पवित्रता और अद्भुत शक्ति का विकास देखो, जिसके द्वारा मनुष्य पवित्रता और उच्च गति लाभ करते हैं, तो जान लो कि मैं ही वहा विराजमान हू ।"

इसका फल है यह कि मैं वडे साहसपूर्वक कहता हू कि संस्कृत धर्म्मशास्त्र मे कोई भी यह लिखा हुआ नही दिखा सकता कि केवल हिन्दू ही मुक्ति के अधिकारी हैं और अन्य कोई जाति नही। व्यास मुनि का वचन है कि "अपनी

जाति और सम्प्रदाय की सीमा के बाहर भी सिद्ध विवेकी पुरुष पाये जाते हैं। ("अन्तरादपि तु तद्दृष्टे।" वेदान्तसूत्र)

एक बात और भी पूछी जा सकती है कि जब हिन्दू लोगो का दृढ विश्वास ईश्वर मे है तो वे लोग बौद्ध-मत मे जो अज्ञेयवाद (Agnosticism) है वा जैन-मत मे जो निरीश्वरवाद (Atheism) है, उनमे क्योकर श्रद्धा रख सकते हैं ? बौद्ध लोग ईश्वर मे विश्वास नही रखते हैं यह ठीक हैं, पर उनका एक मात्र लक्ष्य यही है कि मनुष्यो मे देवत्व का—ईश्वरत्व का—प्रकाश हो। उन्होने परम पिता परमेश्वर को भले ही न देखा हो, पर उन्होंने ईश्वर—अवतार को तो देखा है। जिसने अवतार को देखा उसने परमेश्वर को भी देखा, क्योकि अवतार ईश्वर का ही आदर्श है। हिन्दू मत का यह सक्षिप्त वृत्तान्त है। हो सकता है कि हिन्दू लोग अपना सब अभीष्ट सिद्ध न कर सके हो, पर यदि विश्व जगत् का एक ही धर्म होना सम्भव है तो वह वही होगा जो किसी देश वा काल पर निर्भर न हो, जो असीम ईश्वर के सदृश सीमा बद्ध न हो, जिसकी ज्योति श्रीकृष्ण के भक्तो और ईसामसीह के प्रेमियो, पापियो वा पुण्यात्माओ पर एक-सा प्रकाश डालती हो, जो केवल ब्राह्मण वा बौद्ध, ईसाई वा मुसलमान मुसलमान के ही लिए नही हो, किन्तु इन सब के समुदाय के लिये हो और जिसमे सबकी उन्नति के पथ खुले हो और जो अपनी अपक्षपातिता से अपने अनन्त बाहुओ द्वारा उन निकृष्ट मनुष्यो से लगाकर जिनकी बुद्धि अब भी अधोगामिनी है, उच्च हृदय के विवेकी पुरुषो तक जो समाज के शिरोमणि और पूज्य हैं, सबको अपनी छाती से लगावे और शरण दे।

वह ऐसा धर्म होगा जो पर पीडा और विरोध भाव से रहित हो और समस्त नरनारियो मे परमात्मा को देखे और जिसका उद्देश्य समस्त जाति को आत्मोपलब्धि के अर्थ सब प्रकार से सहायता देने का हो। यदि ऐसे उदार धर्म का दान करोगे तो समस्त जातिया तुम्हारी अनुगामिनी होगी। अशोक महाराज की सभा बौद्ध मत की सभा थी। अकबर की सभा भी जिसका अभिप्राय अति उत्तम और वाछनीय था, फलदायक नही हुई। प्रत्येक धर्म मे एक ही परमात्मा विराजमान है—समस्त जगत् मे यह घोषणा करना अमेरिका के ही हिस्से मे था।

मैं उस परमात्मा से जिसे हिन्दू लोग ब्रह्म कहते हैं, फारसी लोग अहर्मज्द कहते हैं, बौद्ध लोग बुद्ध करके मानते हैं, यहूदी जिसे अहोमा कहकर पुकारते हैं, ईसाई लोग जिसे स्वर्गस्थ पिता कहके मानते हैं—प्रार्थना करता हू कि वह आप लोगो को इस महत् उद्देश्य के पूर्ण करने की शक्ति दे। पूर्व दिशा से तारा (बुद्धदेव और उनका धर्म) उदय हुआ और धीरे-धीरे पश्चिम दिशा की ओर कभी टिमटिमाते हुए, कभी प्रकाश के साथ आया और इसी प्रकार

सम्पूर्ण पृथ्वी के चारो ओर घूमकर फिर पूर्व दिशा मे टसिफु (Tasifu) नदी के किनारे सहस्र गुण प्रकाश के साथ उदय हुआ। हे स्वाधीनता की मातृभूमि कोलम्बिया (अमेरिका का दूसरा नाम) तू धन्य है! यह तेरे ही भाग्य मे था कि तूने अपने पडोसियो के रक्त से अपने हाथ नही रगे। तूने अपने प्रतिवेशियो का धन लूटकर अपने को धनी बनाना अच्छा न समझा और यह तेरे ही भाग्य मे है कि प्रीति अविरोध का झण्डा लेकर तू सभ्य जातियो मे अग्रसर हो।

चौथा भाषण

(सर्वधर्म-परिषद् के १०वें दिन की बैठक मे)

भारत धर्म्म का भूखा नहीं

ईसाईयो को चाहिये कि सत्समालोचना के लिए सदा तैयार रहें, और मुझे विश्वास है कि यदि मैं आप लोगो के कुछ दोषो की विवेचना करू तो आप लोग बुरा न मानेंगे। हे ईसाई धर्मावलम्वी सुहृद्वरो। मूर्ति पूजको की आत्मा के उद्धार लिए उनके पास धर्म-प्रचारक भेजने मे तो आप बडे अनुरागी हैं, परन्तु जब वे अन्न बिना मर जाते हैं तब उनके शरीर के उद्धार के लिए कोई उपाय आप क्यो नही करते? हिन्दुस्थान मे दुर्भिक्ष के समय सहस्रो नर नारी क्षुधा से पीडित होकर मर जाते हैं, किन्तु आप इस बात पर तनिक ध्यान नही देते। समस्त हिन्दुस्थान मे धर्म मन्दिर (गिरजाघर) बनाने मे आप बड़े उद्योगशील हैं, परन्तु हिन्दुस्थान मे धर्म का अभाव नही है—धर्म की कमी नही है। उनकी हाय-हाय केवल रोटी की है। हिन्दुस्तान के लाखो लोग शुष्क कण्ठ से 'अन्न' 'अन्न' चिल्ला रहे हैं। वे मागते हैं अन्न और हम उन्हे देते हैं पत्थर! क्षुधातुरो को धर्म का उपदेश देना वा आध्यात्मिक ज्ञान सिखाना मानो उनका उपहास करना है। भारतवर्ष मे यदि कोई धर्म शिक्षक वेतन-प्राप्ति के लिए धर्म का उपदेश करे तो वह निन्दित हो जाय और लोग उस पर थूकने लगें। मैं यहा कालपीड़ित दरिद्र लोगो के लिए भिक्षा के निमित्त आया हू। परन्तु मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया कि ईसाई राज्य मे मूर्ति पूजको के लिये ईसाई धर्मावलम्बियो से सहायता पाना कितना कठिन है।

इस व्याख्यान के पश्चात् सनातन धर्म के पुनर्जन्मवाद पर स्वामी जी ने भाषण दिया था। अनन्तर सर्वधर्मपरिषद की 12 वें दिन की बैठक 22 सितम्बर शुक्रवार को हुई थी। उसमे हिन्दू धर्म के सम्बन्ध मे ही देर तक भाषण हुआ। उस दिन स्वामी जी ने सनातन-धर्म-सम्बन्धी अनेक बातें कही। विभिन्न धर्मानुयायी स्त्री-पुरुषो ने बडी उत्सुकता के साथ सैंकड़ो प्रश्न उनसे किये और

स्वामी जी ने भी बडी निपुणता के साथ उन प्रश्नो का उत्तर देकर उनकी शका का समाधान किया था।

पाचवां भाषण[1]

बौद्ध धर्म्म के साथ हिन्दूधर्म्म का सम्बन्ध

सभापति महाशय, मेरे भाईयो और मेरे सहायको ! आप लोगो ने सुना है कि मैं बौद्ध धर्मावलम्बी नही हू, परन्तु यदि मैं अपने को ऐसा कहू तो भी कोई हानि नही। चीन, जापान तथा सीलोन के आदिवासी उस महापुरुष लोक गुरु बुद्ध की शिक्षा के प्रतिपालक हैं। परन्तु हिन्दू लोग उसे ईश्वर का अवतार मानते हैं। आपको ज्ञात है कि मैं बौद्ध धर्म्म का समालोचक हू, परन्तु इसका उद्देश्य दोष प्रकट करने का नही। जिसको हम ईश्वर का अवतार मानते है, उसके गुण-दोष विचार से ईश्वर बचावे। परन्तु भगवान बुद्ध के विषय मे यह मत है कि उनके शिष्यो ने उनकी शिक्षाओ को ठीक-ठीक नही समझा। हिन्दूमत अर्थात् वेदोक्त धर्म और वर्त्तमान काल के बौद्ध मत मे वैसा ही सम्बन्ध है जैसा कि यहूदी मत और ईसाई मत मे है। ईसामसीह यहूदी सतान थे और शाक्यमुनि (बुद्धदेव) हिन्दू। परन्तु भेद इतना है कि यहूदियो ने ईसा को केवल निकाल ही नही दिया, किन्तु सूली (क्रूश) पर चढाकर उनकी हत्या तक कर डाली और हिन्दुओ ने बुद्ध को अवतार माना और अभी तक उनका पूजन करते हैं। परन्तु प्रचलित बौद्ध मत मे और भगवान बुद्ध की शिक्षाओ मे जो वास्तविक भेद हम दिखलाना चाहते हैं वह विशेषत यह है कि शाक्यमुनि ने कोई नयी शिक्षा देने के लिए अवतार नही लिया था। वह भी ईसा के समान धर्म्म की रक्षा के लिए आए थे — न कि धर्म्म का नाश करने के लिए। जैसे ईसा यहूदियो की श्रद्धा नूतन धर्म पुस्तक (Newtestament) पर और ईसाइयो की पुरातन धर्म पुस्तक (Oldtestament) पर स्थापित करना चाहते थे, पर यहूदियो ने इस पुरातन धर्म पुस्तक (Oldtestament) की पूर्णता नही समझी, उसी प्रकार बौद्धो ने बुद्ध की शिक्षा को हिन्दू धर्म्म के सत्य (वेद) की पूर्णता नही समझी। मैं फिर भी आप लोगो से इतना कहता हू कि शाक्यमुनि विनष्ट करने नही आया, हिन्दू धर्म की स्वाभाविक परिणति अर्थात् स्वाभाविक विकास प्राप्त होने से जो फल प्राप्त होता है, उसी को उन्होने दिखलाया।

हिन्दू धर्म के दो भाग हैं—एक धर्मकाण्ड और दूसरा ज्ञानकाण्ड। विशेपकर

---

१. सर्वधर्म परिषद के १६वें दिन की बैठक मे।

इसी ज्ञान काण्ड का पठन पाठन सन्यासी लोग किया करते हैं। इसमे जातिभेद नही है। भारतवर्ष मे उच्च और नीच दोनो प्रकार की जातियो के लोग त्यागी हो सकते हैं और फिर उनमे जाति भेद नही रहता। धर्म मे जाति भेद नही है; जाति तो एक सामाजिक बन्धन मात्र है। शाक्य मुनि स्वय सन्यासी थे, और यह उनके तेज एव माहात्म्य का फल है कि उन्होने अपने विशाल हृदय से वेद के गुह्य आशयो को जानकर उनका प्रचार समस्त जगत् मे किया। इस जगत् मे वह सबसे पहला पुरुष हुआ है जिसने धर्म्मोपदेशको की प्रथा चलायी, इतना ही नही, किन्तु भ्रान्त मनुष्यो को अभ्रान्त सत्य धर्म मे ले आने का विचार भी पहले पहल उन्ही के मन मे हुआ।

इस महान् पुरुष के महात्म्य का कारण उसकी सब प्राणियो पर—विशेषकर अज्ञानियो और दीन जनो पर अतिशय दया थी। उसके कोई-कोई शिष्य ब्राह्मण थे। जिस समय बुद्ध भगवान् धर्मोपदेश कर रहे थे उस समय भारतवर्ष की साधारण भाषा सस्कृत न रह गयी थी। सस्कृत उस समय केवल पण्डितो की—पुस्तक की भाषा थी। बुद्धदेव के कुछ ब्राह्मण शिष्यो ने उनके उपदेशो का अनुवाद सस्कृत भाषा मे करना चाहा था, पर बुद्धदेव उनसे सदा यही कहते थे—"मैं अधम और साधारण जनो के लिए आया हू, मुझे उन्ही की भाषा मे शिक्षा देने दो।" इसी कारण अब तक उनके उपदेश भारतवर्ष की उसी समय की भाषा (प्राकृत) मे पाये जाते हैं।

दर्शनशास्त्र की पदवी कितनी ही ऊची क्यो न हो, पर जब तक कि इस लोक मे मृत्यु और मनुष्यो के हृदय मे निर्बलता है, जब तक मनुष्य अपने हृदय की निर्बलता के कारण विलाप करता रहेगा, तब तक ईश्वर मे उसका विश्वास और श्रद्धा रहेगी।

दर्शनशास्त्र के विषय मे उक्त महापुरुष के शिष्यो ने वेद की अनादि चट्टान पर बहुतेरा सिर पटका, पर वे उसे तोड न सके, वरन् साधारण लोगो से अक्षर परमेश्वर को—जिस पर प्रत्येक नारी का प्रेम और भक्ति थी—उठा ले गये, अर्थात् उसकी श्रद्धा मिटा दी और इसका फल यह हुआ कि यह सब मत भारतवर्ष मे मृत्यु को प्राप्त हो गया और अब उसी भारतवर्ष मे जो इस मत की धर्म्मावलम्वी जन्मभूमि है एक भी ऐसी स्त्री अथवा पुरुष नही है जो अपने आपको बौद्ध कहे।

परन्तु इसके साथ ही ब्राह्मण-धर्म की कुछ हानि भी हुई जैसे कि समाज के सस्कार का उत्साह, प्रत्येक प्राणी के साथ सहानुभूति (Sympathy) करुणा और उदारता और बौद्ध धर्म का पतितोद्धार के विषय मे अपूर्व उत्साह आदि उससे अलग हो गये—जिन्होने भारतवासियो को ऐसा उच्च हृदय बना दिया जिसके कारण यूनानी इतिहास-लेखक को, जिसने भारत का वृत्तान्त लिखा है,

यह लिखना पडा कि कोई हिन्दू मूढ वा मिथ्या बोलने वाला नही दिखायी देता और कोई हिन्दुस्थानी स्त्री कुलटा अथवा पतिव्रतहीन नही पायी जाती ।

हे बौद्धगण ! हम लोग न तो आप लोगो के बिना रह सकते हैं और न आप हम लोगो के बिना रह सकते हैं । तब निश्चय रक्खो कि हमारे परस्पर वियोग ने स्पष्ट प्रकट कर दिया है कि न तो आप ही ब्राह्मणो के ज्ञान और बुद्धि के बिना ठहर सकते हैं और न हम लोग ही आपके उच्च हृदय की सहायता के बिना रह सकते हैं । बौद्ध और ब्राह्मणो का परस्पर वियोग ही भारतवर्ष की वर्तमान अधोगति का कारण हुआ है । इसी विभेद से वर्तमान भारत तीस करोड़ भिक्षुको की आवास भूमि हो रहा है और इसी कारण भारत वर्ष एक सहस्र वर्ष से अन्य विजातियो का क्रीतदास हो रहा है । इसी कारण ब्राह्मणो के अद्भुत ज्ञान से उस महापुरुष (बुद्धदेव) के हृदय, उच्च आत्मा और अद्भुत करुणाकारी बल को मिलाकर एक करना चाहिए ।

छठा भाषण

(१७वें दिन की बैठक मे अन्तिम दिन ता० २७ सितम्बर सन् १८९३ ई०)

विदाई

जगत् मे सब धर्मों के सम्मिलन की सम्भवपरता आज पूर्ण रूप से सिद्ध हुई । जिन्होने इसे स्थापन करने और इसकी सिद्धि के अर्थ विशेष प्रकार से श्रम और उद्योग किया, परम दयालु परमेश्वर ने उनकी सहायता की और उनके निस्वार्थं परिश्रम का शुभ फल प्रदान किया है ।

उन महानुभावो को मेरा धन्यवाद है जिनके उदार हृदय और सत्यानुराग ने प्रथम ऐसी अद्भुत कल्पना को जन्म दिया और उसे कार्य्य मे परिणत किया । मैं उस सर्वलोक-सम्मत उदार भाव-समूह का धन्यवाद करता हू जिसके द्वारा यह सभामच वर्षा की भाति प्लावित हुआ है । मैं ज्ञानालोक से आलोकित उन श्रोताओ को धन्यवाद देता हू जिन्होने मुझ पर बराबर कृपा की है और जिन्होने उन युक्तियो को आदरपूर्वक स्वीकार किया है, जिनसे मतमतान्तर के झगडे मिट सकते हैं । इस सुश्रृखल (धार्म्मिक मतो की) स्वर श्रेणी मे कभी-कभी विश्रृंखल भाव भी पाया गया है । मेरा धन्यवाद उनको भी (जो झगडे उठाते हैं) पहुचे क्योकि उनके किञ्चित् विश्रृखल भाव ने साधारण श्रृखल भाव को मधुरतर बना दिया । मत मतान्तर की एकता के विषय मे बहुत कुछ कहा जा चुका है । इस समय मैं अपने सिद्धान्त पर जोर नही देता, परन्तु यदि कोई महाशय यह आशा रक्खें कि अन्य मतो को विध्वश करके एक मत विजयी हो जाए तो एकता हो सकती है, तो मैं उनको यह उत्तर देता हू कि—"भाई,

तुम्हारी यह आशा असम्भव है।" क्या मैं चाहता हू कि ईसाई लोग हिन्दू हो जाएं? कदापि नही, ईश्वर ऐसा न करे। क्या मेरी इच्छा यह हैं कि हिन्दू वा बौद्ध लोग ईसाई हो जाए? ईश्वर इस इच्छा से बचावे। बीज भूमि मे बो दिया गया और मृत्तिका, वायु और जल उसके चारो ओर है हो, तो क्या वह बीज मिट्टी हो जाता है वा वायु वा जल जल हो जाता है? नही वह वृक्ष ही होता है। वह अपने नियम ही से बढ़ता है और वायु, जल और मिट्टी से मिलकर वृक्षाश बनता हुआ एक बड़ा वृक्ष हो जाता है।

यही अवस्था धार्म्मिक मतो की भी है। ईसाई को हिन्दू वा बौद्ध नही होना चाहिए, न हिन्दू वा बौद्ध को ईसाई होना चाहिए। पर प्रत्येक मत को चाहिए कि अन्य मतो के सार को ग्रहण करके पुष्टि लाभ करे और एकत्व (समता) की रक्षा करता हुआ अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार वृद्धि को प्राप्त हो।

इस धर्म्म परिषद् ने जगत् के लिए जो घोषणा की है वह यह है। उसने यह सिद्ध कर दिखलाया है कि शुद्धता, पवित्रता और दयापरता किसी विशेष धर्म्म सस्था (Church) की सम्पत्ति नही, और प्रत्येक धर्म सम्प्रदाय मे अति उत्तम और प्रशसनीय पुरुष और स्त्रिया हुई हैं।

अब इन प्रमाणो के आगे भी यदि कोई अपनी ही रक्षा और दूसरे के विनाश की कल्पना करे तो उसके विषय मे मैं हृदय से खेद प्रकट करता हू और उसे बतला देता हूं कि शीघ्र ही प्रत्येक धर्म की ध्वजा पर उनकी अनिच्छा होने पर भी यह लिखा जाएगा—"परस्पर महायक बनो, विरोध न करो, रक्षक हो, विनाशकारी न बनो, एकता और शान्ति हो, फूट वा कलह दूर हो।"

अमेरिका से प्रत्यावर्तन

(मद्रास स्वागत में मुशी जगमोहनलाल का अभिनन्दन पत्र सहित योगदान—खेतड़ी पधारने का निमत्रण)

मद्रास अभिनन्दन का उत्तर

स्वामी जी जब मद्रास पहुँचे तो वहाँ मद्रास स्वागत-समिति द्वारा उन्हे एक मानपत्र भेंट किया गया। वह इस प्रकार था।

परम पूज्य स्वामी जी,

आज हम सब आपके पाश्चात्य देशो मे धार्मिक प्रचार से लौटने के अवसर पर, आपके मद्रास निवासी सहधर्मियो की ओर से आपका हार्दिक स्वागत करते हैं। आज आपकी सेवा मे जो हम यह मानपत्र अर्पित कर रहे हैं उसका अर्थ यह नही है कि यह एक प्रकार का लोकाचार अथवा व्यवहार है, वरन् इसके द्वारा हम आपकी सेवा मे अपने आन्तरिक एव हार्दिक प्रेम की भेंट देते हैं तथा आपने ईश्वर की कृपा से भारतवर्ष के उच्च धार्मिक आदर्शों का प्रचार कर सत्य के प्रतिपादन का जो महान् कार्य किया है, उसके निमित्त अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

जब शिकागो शहर मे धर्म-महासभा का आयोजन किया गया, उस समय स्वाभाविकत हमारे देश के कुछ भाइयो के मन मे इस बात की उत्सुकता उत्पन्न हुई कि हमारे श्रेष्ठ तथा प्राचीन धर्म का भी प्रतिनिधित्व वहाँ योग्यतापूर्वक किया जाय तथा उसका उचित रूप से अमेरिकन राष्ट्र मे और फिर उसके द्वारा अन्य समस्त पाश्चात्य देशो मे प्रचार हो। उस अवसर पर हमारा यह सौभाग्य था कि हमारी आपसे भेंट हुई और पुन. हमे उस बात का अनुभव हुआ, जो बहुधा विभिन्न राष्ट्रो के इतिहास मे सत्य सिद्ध हुआ है अर्थात् समय आने पर ऐसा व्यक्ति स्वय आविर्भूत हो जाता है जो सत्य के प्रचार मे सहायक होता है। और जब आपने उस धर्म-महासभा मे हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि रूप मे जाने का बीडा उठाया तो हममे से अधिकाश लोगो के मन मे यह निश्चित भावना उत्पन्न

हुई कि उस चिरस्मरणीय धर्म-महासभा मे हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व बड़ी योग्यता पूर्वक होगा, क्योकि आपकी अनेकानेक शक्तियो को हम लोग थोड़ा-बहुत जान चुके थे। हिन्दू धर्म के सनातन सिद्धान्तो का प्रतिपादन आपने जिस स्पष्टता, शुद्धता तथा प्रामाणिकता से किया, उससे केवल धर्म-महासभा पर ही एक महत्त्वपूर्ण प्रभाव नही पड़ा, वरन् उसके द्वारा अन्य पाश्चात्य देशो के स्त्री-पुरुषो को भी यह अनुभव हो गया कि भारतवर्ष के इस आध्यात्मिक स्रोत मे कितना ही अमरत्व तथा प्रेम का सुखद पान किया जा सकता है और उसके फलस्वरूप मानव जाति का इतना सुन्दर, पूर्ण व्यापक तथा शुद्ध विकास हो सकता है, जितना कि इस विश्व मे पहले कभी नही हुआ। हम इस बात के लिए आपके विशेष कृतज्ञ हैं कि आपने ससार के महान् धर्मो के प्रतिनिधियो का ध्यान हिन्दू धर्म के उस विशेष सिद्धान्त की ओर आकर्षित किया, जिसको 'विभिन्न धर्मों मे बन्धुत्व तथा सामजस्य' कहा जा सकता है। आज यह सम्भव नहीं रहा है कि कोई वास्तविक शिक्षित तथा सच्चा व्यक्ति इस बात का ही दावा करे कि सत्य तथा पवित्रता पर किसी एक विशेष स्थान, सम्प्रदाय अथवा वाद का ही स्वामित्व है या वह यह कहे कि कोई विशेष-धर्म मार्ग या दर्शन ही अन्त तक रहेगा और अन्य सब नष्ट हो जायेंगे। यहाँ पर हम आप ही के उन सुन्दर शब्दो को दुहराते हैं, जिनके द्वारा श्रीमद्भागवत गीता का केन्द्रीय सामजस्य भाव स्पष्ट प्रकट होता है कि 'ससार के विभिन्न धर्म एक प्रकार के यात्रा स्वरूप हैं, जहाँ तरह-तरह के स्त्री-पुरुष इकट्ठे हुए हैं तथा जो भिन्न-भिन्न दशाओ तथा परिस्थितियो मे से होकर एक ही लक्ष्य की ओर जा रहे हैं।'

हम तो यह कहेगे कि यदि आपने सिर्फ इस पुण्य एव उच्च उद्देश्य को ही, जो आपको सौंपा गया था, अपने कर्त्तव्य रूप मे निवाहा होता, तो उतने से ही आपके हिन्दू भाई बडा प्रसन्नता तथा कृतज्ञतापूर्वक आपके उस अमूल्य कार्य के लिए महान् आभार मानते। परन्तु आप केवल इतना ही न करके पाश्चात्य देशो मे भी गये, तथा वहाँ जाकर आपने जनता को ज्ञान तथा शान्ति का सदेश सुनाया जो भारतवर्ष के सनातन धर्म की प्राचीन शिक्षा है। वेदान्त धर्म के परम युक्तिसम्मत होने को प्रमाणित करने मे आपने जो यत्न किया है उसके लिए आपको हार्दिक धन्यवाद देते समय हमे आपके उस महान् सकल्प का उल्लेख करते हुए बडा हर्ष होता है, जिसके आधार पर प्राचीन हिन्दू धर्म तथा हिन्दू दर्शन के प्रचार के लिए अनेकानेक केन्द्रो वाला एक सक्रिय मिशन स्थापित होगा। आप जिन प्राचीन आचार्यों के पवित्र मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं, एवं जिस महान् गुरु ने आपके जीवन और उसके उद्देश्यो को उत्प्रेरित किया है, उन्ही के योग्य अपने को सिद्ध करने के लिए आपने इस महान् कार्य मे अपनी सारी शक्ति लगाने का सकल्प किया है। हम इस बात के प्रार्थी हैं कि ईश्वर हमे

वह सुअवसर दे जिससे कि हम आपके साथ इस पुण्य कार्य मे सहयोग दे सकें। साथ ही हम उस सर्व-शक्तिमान दयालु परमपिता परमेश्वर से करबद्ध होकर यह भी प्रार्थना करते हैं कि वह आपको चिरजीवी करे, शक्तिशाली बनाए तथा आपके प्रयत्नो को गौरव तथा सफलता प्रदान करे जो सनातन सत्य के ललाट पर सदैव अकित रहती है।

इसके बाद खेतडी के महाराजा का निम्नलिखित मान-पत्र भी पढा गया :

खेतड़ी के महाराजा का मानपत्र

पूज्यपाद स्वामी जी,

इस अवसर पर जब कि आप मद्रास पधारे हैं, मैं यथाशक्ति शीघ्रातिशीघ्र आपकी सेवा मे उपस्थित होकर, विदेश से आपके कुशलपूर्वक वापस लौट आने पर अपनी हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करता हूँ तथा पाश्चात्य देशो मे आपके नि·स्वार्थ प्रयत्नो को जो सफलता प्राप्त हुई है, उस पर आपको हार्दिक बधाई देता हूँ। हम जानते हैं कि ये पाश्चात्य देश वे ही हैं, जिनके विद्वानो का यह दावा है कि 'यदि किसी क्षेत्र मे विज्ञान ने अपना अधिकार जमा लिया, तो फिर धर्म की मजाल भी नही है कि वह वहाँ अपना पैर रख सके' यद्यपि सच बात तो यह है कि विज्ञान ने स्वय अपने को कभी भी सच्चे धर्म का विरोधी नही ठहराया। हमारा यह पवित्र आर्यावर्त देश इस बात मे विशेष भाग्यशाली है कि शिकागो की धर्म-महासभा मे प्रतिनिधि के रूप मे जाने के लिए आप जैसा एक महापुरुष मिल सका और, स्वामी जी, यह केवल आपकी ही विद्वत्ता, साहसिकता तथा अदम्य उत्साह का फल है कि पाश्चात्य देश वाले भी यह बात भली-भाँति जान गए कि आज भी भारत के पास आध्यात्मिकता की कैसी असीम निधि है। आपके प्रयत्नो के फलस्वरूप आज यह बात पूर्ण रूप से सिद्ध हो गई है कि ससार के अनेकानेक मतमतान्तरो के विरोधाभास का सामजस्य वेदान्त के सार्वभौम प्रकाश मे हो सकता है। और ससार के लोगो को यह बात भली-भाँति समझ लेने तथा इस महान् सत्य को कार्यान्वित करने की आवश्यकता है कि साथ विश्व के विकास मे प्रकृति की सदैव योजना रही है 'विविधता मे एकता'। साथ ही विभिन्न धर्मों मे समन्यन्व, बन्धुत्व तथा पारस्परिक सहानुभूति एव सहायता द्वारा ही मनुष्य जाति का जीवनव्रत उद्यापित एव उसका चरमोद्देश्य सिद्ध होना सम्भव है। आपके महान् तथा पवित्र तत्वावधान मे तथा आपकी श्रेष्ठ शिक्षाओं के स्फूर्तिदायक प्रभाव के आधार पर हम वर्तमान पीढी के लोगो को इस बात का सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि हम अपनी ही आँखो के सामने ससार के इतिहास मे

एक उस युग का प्रादुर्भाव देख सकेंगे, जिसमे धर्मान्धता, घृणा तथा सघर्ष का नाश होकर, मुझे आशा है कि शान्ति, सहानुभूति तथा प्रेम का साम्राज्य होगा। और मैं अपनी प्रजा के साथ ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूँ कि उसकी कृपा आप पर तथा आपके प्रयत्नो पर सदैव बनी रहे।

जब यह मानपत्र पढा जा चुका तो स्वामी जी सभामडप से उठ गए और एक गाडी मे चढ गए जो उन्ही के लिए खडी थी। स्वामी जी के स्वागत के लिए आई हुई जनता की भीड इतनी जबरदस्त थी तथा उसमे ऐसा जोश समाया था कि उस अवसर पर तो स्वामीजी केवल निम्नलिखित सक्षिप्त उत्तर ही दे सके, अपना पूर्ण उत्तर उन्होने किसी दूसरे अवसर के लिए स्थगित रखा।

स्वामी जी का उत्तर

बन्धुओ, मनुष्य की इच्छा एक होती है परन्तु ईश्वर की दूसरी। विचार यह था कि तुम्हारे मानपत्र का पाठ तथा मेरा उत्तर ठीक अग्रेजी शैली पर हो, परन्तु यही ईश्वरेच्छा दूसरी प्रतीत होती है—मुझे इतने बडे जनसमूह से 'रथ' मे चढ कर गीता के ढग से बोलना पड रहा है। इसके लिए हम कृतज्ञ ही हैं, अच्छा ही है कि ऐसा हुआ। इससे भाषण मे स्वभावत ओज आ जाएगा तथा जो कुछ मैं तुम लोगो से कहूँगा उसमे शक्ति सचार होगा। मैं कह नही सकता कि मेरी आवाज तुम सब तक पहुँच सकेगी या नही, परन्तु मैं यत्न करूगा। इसके पहले शायद खुले मैदान मे व्यापक जनसमूह के सामने भाषण देने का अवसर मुझे कभी नही मिला था।

जिस अपूर्व स्नेह तथा उत्साहपूर्वक उल्लास से मेरा कोलम्बो से लेकर मद्रास पर्यन्त स्वागत किया गया है तथा जैसा लगता है कि सम्पूर्ण भारतवर्ष मे किए जाने की सम्भावना है, वह मेरी सर्वाधिक स्वप्नमयी रगीन आशाओ से भी अधिक है। परन्तु इससे मुझे हर्ष ही होता है। और वह इसलिए कि इसके द्वारा मुझे अपना वह कथन प्रत्येक बार सिद्ध होता दिखाई देता है जो मैं कई बार पहले भी व्यक्त कर चुका हूँ कि प्रत्येक राष्ट्र का एक ध्येय उसके लिए सजीवनीस्वरूप होता है, प्रत्येक राष्ट्र का एक विशेष निर्धारित मार्ग होता है, और भारतवर्ष का विशेषत्व है धर्म। संसार के अन्य देशो मे धर्म तो केवल कई बातो मे से एक है, असल मे वहाँ तो वह एक छोटी सी चीज गिना जाता है। उदाहरणार्थ, इग्लैंड मे धर्म राष्ट्रीय नीति का केवल एक अश है, इग्लिश चर्च शाही घराने की एक चीज है और इस लिए उनकी चाहे उसमे श्रद्धा-भक्ति हो अथवा नही, वे उसके सहायक सदैव बने रहेगे, क्योकि वे तो यह समझते हैं कि वह उनका चर्च है। और प्रत्येक भद्र पुरुष तथा महिलाओ से आशा की जाती है कि

वह उसी चर्च का एक मदस्य वनकर रहे, और सदस्यता भद्रता का चिह्न है। इसी प्रकार अन्य देशो मे भी एक-एक प्रवल अगाध शक्ति होती है, यह शक्ति या तो जवरदस्त राजनीति के रूप मे दिखाई देती है अथवा किसी वौद्धिक खोज के रूप मे। इसी प्रकार वही या तो यह सैन्यवाद के रुप मे दिखाई देती है अथवा वाणिज्यवाद के रुप मे। कह सकते हैं कि उन्ही क्षेत्रो मे राष्ट्र का हृदय स्थित रहता है और इम प्रकार धर्म तो उस राष्ट्र की अन्य वहुत सी चीजो मे से केवल एक ऊपरी सजावट की मी चीज रह जाती है।

पर भारतवर्प मे धर्म ही राष्ट्र के हृदय का मर्मस्थल है, इसी को राष्ट्र की रीढ कह लो अथवा वह नीव समझो जिसके ऊपर राष्ट्ररूपी इमारत खडी है। इस देश मे राजनीति, वल, यहाँ तक कि वुद्धिविकास भी गौण ममझे जाते हैं। भारत मे धर्म को सर्वोपरि समझा जाता है। मैंने यह वात सैकडो वार सुनी है कि भारतीय जनता साधारण जानकारी की वातो से भी अभिज्ञ नही है और यह वात सचमुच ठीक भी है। जव मैं कोलम्वो मे उतरा तो मुझे पता चला कि वहाँ किसी को भी इस वात का ज्ञान न था कि यूरोप मे कैसी राजनीतिक उथल-पुथल मची हुई है, वहा क्या-क्या परिवर्तन हो रहे हैं, मत्रिमंडल की कैमी हार हो रही है, आदि आदि। एक भी व्यक्ति को यह ज्ञान न था कि समाजवाद, अराजकतावाद आदि शब्दो का अथवा यूरोप के राजनीतिक वातावरण मे अमुक परिवर्तन का क्या अर्थ है। परन्तु दूसरी ओर यदि तुम लका के ही लोगो को ले लो तो, वहाँ के प्रत्येक स्त्री-पुरुष तथा वच्चे-वच्चे को मालूम था कि उनके देश मे एक भारतीय संन्यासी आया है जो शिकागो की धर्म-महासभा मे भाग लेने के लिए भेजा गया था तथा जिसने वहा अपने क्षेत्र मे सफलता प्राप्त की। इससे सिद्ध होता है कि उस देश के लोग, जहाँ तक ऐसी सूचना से सम्वन्ध है, जो उनके मतलव की है अथवा जिससे उनके दैनिक जीवन का ताल्लुक है, उससे वे जरूर अवगत हैं तथा जानने की इच्छा रखते हैं। राजनीति तथा उस प्रकार की अन्य वातें भारतीय जीवन के अत्यावश्यक विषय कभी नही रहे हैं। परन्तु धर्म एव आध्यात्मिकता ही एक ऐसा मुख्य आधार रहे हैं जिसके ऊपर भारतीय जीवन निर्भर रहा है तथा फलाफूला है और इतना ही नही, भविष्य मे भी इसे इसी पर निर्भर रहना है।

ससार के राष्ट्रो द्वारा वडी समस्याओ का समाधान हो रहा है। भारत ने सदैव एक का पक्ष ग्रहण किया है तथा अन्य समस्त ससार ने दूसरे का पक्ष। वह समस्या यह है कि भविष्य मे कौन टिक सकेगा? क्या कारण है कि एक राष्ट्र जीवित रहता है तथा दूसरा नष्ट हो जाता है? जीवनसग्राम मे घृणा टिक सकती है अथवा प्रेम, भोग-विलास चिरस्थायी है अथवा त्याग, भौतिकता टिक सकती है या आध्यात्मिकता। हमारी विचारधारा उसी प्रकार की है जैसी हमारे पूर्वजो

की अति प्राचीन प्रागैतिहासिक काल मे थी। जिस अन्धकारमय प्राचीन काल तक पौराणिक परम्पराए भी पहुँच नही सकती, उसी समय हमारे यशस्वी पूर्वजो ने अपनी समस्या के पक्ष का ग्रहण कर लिया और ससार को चुनौती दे दी। हमारी समस्या को हल करने का रास्ता है वैराग्य, त्याग, निर्भीकता तथा प्रेम। बस ये ही सब टिकने योग्य हैं। जो राष्ट्र इन्द्रियो की आसक्ति का त्याग कर देता है, वही टिक सकता है। और इमका प्रमाण यह कि आज हमे इतिहास इस बात की गवाही दे रहा है कि प्राय प्रत्येक सदी मे बरसाती मेढको की तरह नए राष्ट्रो का उत्थान तथा पतन हो रहा है—लगभग शून्य से प्रारम्भ करते है, कुछ दिनो तक खुराफात मचाते हैं और फिर समाप्त हो जाते हैं। परन्तु यह भारत का महान् राष्ट्र जिसको अनेकानेक ऐसे दुर्भाग्यो, खतरो तथा उथलपुथल की कठिन-तम समस्याओ से उलझना पड़ा है, जैसा कि ससार के किसी अन्य राष्ट्र को करना नही पडा, आज भी कायम है, टिका हुआ है, और इसका कारण है सिर्फ वैराग्य तथा त्याग क्योकि यह स्पष्ट ही है कि बिना त्याग के धर्म रह ही नही सकता। इसके विपरीत यूरोप एक दूसरी ही समस्या के सुलझाने मे लगा हुआ है। उसकी समस्या यह है कि एक आदमी अधिक से अधिक कितनी सम्पत्ति इकट्ठा कर सकता है, वह कितनी शक्ति जुटा सकता है, भले ही वह ईमानदारी से हो या बेईमानी से, नेकनामी से हो या बदनामी से। क्रूर, निर्दय, हृदयहीन, प्रतिद्वन्द्विता, यही यूरोप का नियम रहा है। पर हमारा नियम रहा है वर्ण-विभाग, प्रस्तिस्पर्धा का नाश, प्रतिस्पर्धा के बल को रोकना, इसके अत्यचारो को रौंद डालना तथा इम रहस्यमय जीवन मे मानव का पथ शुद्ध एव सरल बना देना।

स्वामीजी का भाषण इस प्रकार हो ही रहा था कि इस अवसर पर जनता की ऐसी भीड उमडी कि उनका भाषण सुनना कठिन हो गया। इसलिए स्वामी जी ने यह कहकर ही सक्षेप मे अपना भाषण समाप्त कर दिया।

मित्रो, मैं तुम्हारा जोश देखकर बहुत प्रसन्न हू, यह परम प्रशंसनीय है। यह मत सोचना कि मैं तुम्हारे इस भाव को देखकर नाराज हूँ, बल्कि मैं तो खुश हूँ, बहुत खुश हू—बस ऐसा ही अदम्य उत्साह चाहिए, ऐसा ही जोश हो। सिर्फ इतना ही है कि इमे चिरस्थायी रखना—इसे बनाए रखना। इस आग को बुझ मत जाने देना। हमे भारत मे बहुत बडे कार्य करने हैं। उसके लिए मुझे तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है। ठीक है, ऐसा ही जोश चाहिए। अच्छा, अब इस सभा को चालू रखना असम्भव प्रतीत होता है। तुम्हारे सदय व्यवहार तथा जोशीले अभिनन्दन के लिए मैं तुम्हे अनेक धन्यवाद देता हूँ। किसी दूसरे मौके पर शान्ति मे हम-तुम फिर कुछ और बातचीत तथा भावविनिमय करेंगे —

मित्रो, अभी के लिए नमस्ते ।

चूकि तुम लोगो की भीड चारो ओर है और चारो ओर घूमकर व्याख्यान देना असम्भव है, इसलिए इस समय तुम लोग केवल मुझे देखकर ही संतुष्ट हो जाओ । अपना विस्तृत व्याख्यान मैं फिर किसी दूसरे अवसर पर दूंगा । तुम्हारे उत्साहपूर्ण स्वागत के लिए पुन धन्यवाद ।

स्वामीजी वारानगर मठ छोडने के बाद ९-१० वर्ष के अन्तराल मे कलकत्ता लौटकर नही गए । अमेरिका से वापस आने पर मद्रास (विक्टोरिया हाल)मे भारी जन समुह ने स्वामी जी का उत्साहपूर्वक हर्षोल्लास से स्वागत किया था । बगाल मे स्वामीजी के आगमन की गुरुभाई, सहकारी कार्यकर्ता और भक्तगण बडी उत्सुकता से प्रतिक्षा कर रहे थे । स्वागत के आयोजन की तैयारी मे जोर-शोर से हो रही थी । स्वामीजी भी अपनी राम कृष्ण मिशन के स्थापन की भावी योजना को यथाशीघ्र कार्यान्विन करने के लिए चिन्तातुर थे । स्वामीजी के साथ पश्चिम देशो के भक्त-अनुयायी भी थे । अत स्वामीजी मद्रास से प्रस्थान कर कलकत्ता पहुँचे । कुछ दिन कलकत्ता ठहरने के उपरान्त पश्चिम देशो के भक्तो सहित दार्जीलिग स्वास्थ्य लाभ के हेतु चले गए ।

अमेरिका मे अति परिश्रम के कारण स्वामीजी का स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता चला गया था—

स्वामीजी के गिरते स्वास्थ्य की जानकारी मुन्शी जगमोहनलाल से पाकर राजा अजीतसिह ने अपने गुरु के दर्शनार्थ कलकत्ते जाने की योजना बनाई और तदनुसार १८ मार्च सन् १८९७ को हावडा स्टेशन पहुँचे ।

प्रतिनिधित्व के अभाव में बाधाएँ

भारत से ब्रह्म समाज के प्रतिनिधि—प्रतापचन्द्र मजूमदार, जैन धर्म के प्रतिनिधि वीरचन्द्र गाधी और थियोसाफी के प्रतिनिधि श्रीमती एनी बीसेन्ट तथा चक्रवर्ती महाशय थे। स्वामी विवेकानन्द को सर्वधर्म परिषद् मे भाग लेने के लिए किसी मान्य सामाजिक एव धार्मिक सस्था या सगठन ने मनोनीत नही किया था। रामकृष्ण मिशन की उस समय तक स्थापना नही हुई थी। खेतडी की जनता और राजा अजीतसिंह ने ही अमेरिका प्रस्थान के लिए भावपूर्ण विदाई दी थी। राजाजी स्वामीजी को जयपुर तक पहुँचाने आये और मुन्शी जगमोहन-लाल को यात्रा के लिए आवश्यक सुविधा-सुव्यवस्था के लिए स्वामीजी के साथ वम्वई भेजा। अमेरिका मे स्वामीजी (सर्वधर्म सम्मेलन की सफलता) की प्रतिष्ठा को देखकर वहा के ईसाई पादरियो ने स्वामीजी के खिलाफ आन्दोलन (दुष्प्रचार) खडा कर दिया। ईसाई प्रचारक स्वामीजी के पीछे इस तरह लग गये जैसे गुप्त-चर किसी अपराधी के पीछे। खेतडी मे राजतत्र होते हुए भी राजाजी ने दरबार (जनसभा) मे प्रस्ताव पास कर ४ मार्च, १८९५ ई० को स्वामीजी को पत्र भेजा, जिसमे सर्वधर्म सम्मेलन की सफलता पर वधाई देते हुए—अमेरिकी सह-योगियो के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन की।

स्वामीजी का उत्तर

उक्त पत्र का स्वामी विवेकानन्दजी ने जो सारगर्भित उपदेशपूर्ण उत्तर भेजा था, वह इस प्रकार है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थानमधर्म्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम।
परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृता
धर्मसस्थापनार्थाय सभवामि युगे युगे।

महाराज,

यह भगवान की उक्ति है। वह अनन्त पुरुष उक्त वाक्य की घोषणा करके पाप का नाश करता है और उसी ने पुण्य कर्मों के प्रति इस विश्व मे आग्रह उत्पन्न किया है।

यद्यपि यह सच है कि भगवान की प्रत्यक्ष लीला का वर्णन कई बार अनोखे काव्य के रूप मे हमारी आंखो के सामने आया है और उसने हमारे श्रुति गह्वरो (कानो) मे अमृत की वर्षा की है, परन्तु उक्त महावाक्य का प्रत्येक अक्षर भगवान की शक्ति के प्रभाव से उपयुक्त क्रिया साधन मे कुछ भी अन्तर उपस्थित नही करता। उस विश्व की पहली अवस्थागुण शक्ति का (Qualitative Force) एकत्व (Sameness) है। जब तक मनुष्य, उस प्राथमिक पूर्ण एकत्व को प्राप्त नही करता तब तक उस एकत्व की प्राप्ति के लिए वह युद्ध और बार-बार (इस संसार मे) आत्मप्रकाश करता है। इस ससार मे जो कुछ भेद-भाव है, वह सब उसी एकत्व—समरसत्व को (Homogeneity) पाने के लिए है।

जितने मनुष्य, जितने धर्म और उनकी शाखा-प्रशाखाए हैं, उन सबकी गति एक है—लक्ष्य एक है।

इस ससार मे—इस सर्वविधायक साम्यमय राज्य मे इस अवस्था की प्राप्ति के लिये ही प्रत्येक जाति आश्चर्यजनक आग्रहपूर्वक उसके साधन निमित सभी कार्यों का अनुष्ठान करती है। वे विशिष्ट आग्रह ही उस जाति की विशेषता के परिचायक हैं। उसी विशेषता के द्वारा जातिया सर्वसाधारण का पार्थक्य (अलगाव) निश्चय करती है। यही विशेषताए हैं—इन्ही सब विशेषताओ का सन्निवेश हिन्दू धर्म मे है, क्योकि भारतवर्ष धर्मभूमि है।

धन, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा या अन्य कोई सुख-सम्भोग ही जिनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य है और उसी की प्राप्ति के लिए जिनकी सब चेष्टाएं होती हैं, अदम्य विक्रम और व्यर्थ का रक्तपात करना ही जिनकी शक्ति का कर्त्तव्य हैं—जिनकी यह धारणा है जिनका यह विश्वास है कि इस जीवन का एहिक इन्द्रियजात सुख ही परम सुख है, उन लोगो के लिए यह भारतवर्ष मरुभूमि है। क्योकि यहा की प्रत्येक क्रिया धन, मान और नामबरी मे अन्तर पहुचाने के लिए—प्रवृति हटाने के लिए सदा तत्पर रहती है। भारतवर्ष धमभूमि है; विलासियो का विलास-कुञ्ज नही।

जिनकी आत्माए उस सुदूर-समागत और इन्द्रियो के परे की पवित्र अमृत धारा का पान कर चुकी हैं, साप के केंचुली त्याग करने की भाति जिन मनुष्यो ने इस ससार मे कामिनी, कांचन और कीर्ति—इन समस्त बन्धनो का परित्याग कर दिया है, जिन्होने शान्ति के शिखर पर आरुढ होकर तुच्छ असार वस्तु-कलह और हिंसा-द्वेष के स्थान मे असीम और प्रेम और अपार आनन्द की स्थापना की

है, जिनके अतीत सचित सुकर्मों ने अज्ञ।न का पर्दा हटा दिया है एव नाम और शान के गर्व की निस्सारता उनके नेत्रो के सामने उपस्थित कर दी है, वे असाधारण शक्ति सम्पन्न मनुष्य ही, इस ससार के तत्व जिज्ञासुओ के गुरू हैं। क्योकि जननी भारती का धर्मभण्डार भगवान को जानने-पहचानने के लिए सदा खुला रहता है। यहा किसी के लिए प्रवेष-निषेध की आज्ञा नहीं है। इस माया-मरीचिकामय ससार मे जिनका एकमात्र अस्तित्व है, उन्हे पहचानना हो तो उसी माता के कृपाभण्डार मे आ आश्रय लो, इसके सिवाय उन्हें पहचानने के लिए कोई दूसरा उपाय नही है—कोई दूसरी गति नही है।

इस मनुष्य-समाज मे सबकी बुद्धि एक-दूसरे से भिन्न है। जो जिस प्रकार समझ सकता है, जिसकी जैसी धारणा-जमी हुई है, उसी बुद्धि और धारणा के अनुकूल कोई बात समझायी जाय, तभी वह समझता है। यदि सर्वसाधारण को सामर्थ्य का प्रभाव समझाना हो तो जैसे वे समझ सकते हैं, ठीक वैसे ही उन्हे समझाना उचित है और उसी तरह समझाया जाता है। किन्तु भारतवर्ष अपनी शक्ति-सामर्थ्य का प्रभाव न दिखलाकर भी आज विद्यमान है और अनन्त काल तक रहेगा भी। सदियो से भारतवर्ष, दूसरी जातियो के पावो तले दबा हुआ है, एक दिन भी इसने प्रतिरोध करने की इच्छा नही की। परपदाक्रान्त रहकर भारतवर्ष ने एक दिन के लिए भी बल प्रयोग नही किया, राजनीति से कुछ भी सम्बन्ध नही रक्खा, तथापि यह अस्थिचर्मविशेष भारतवर्ष आज भी वर्तमान है।

कहा जाता है कि जो "योग्य होता है, वही जीवित रहता है।" यदि यह बात सच है तो यह सर्वथा अयोग्य जाति इस समय क्योकर जीवित है? सब देख रहे हैं कि भारतवर्ष प्राण रहित एक ककाल है। ककालसार भारत-सन्तान आज भी ध्वस प्राय क्यो न हो गयी? सुदृढ और बुद्धिशाली अन्य जातियो की अपहरण शक्ति द्वारा दिनो-दिन क्षय होने पर भी अनैतिक हिन्दुओ ने अपनी असीम वृद्धि का परिचय दिया—यह क्यो? जो अपने कटाक्ष मात्र से पृथ्वी को रूधिरधारा प्लावित कर सकते हैं, निस्सन्देह उन्ही की प्रशसा होती है। जो थोड़े लोगो को भरपेट खिलाने के लिए करोडो स्त्री-पुरुषो को उपवास करने लिए बाध्य करते हैं, वे भी प्रशसा के अधिकारी हैं। परन्तु जो करोडो मनुष्यो को दूसरो के आगे से भोजन की थाली बिना खीचे ही शान्ति और सुख मे रखते हैं, उनका कुछ भी यश नही—यह क्यो?

सभी जातियो के प्राचीन पुराण अगणित वीरो के इतिहास से परिपूर्ण हैं। वे सभी वीर विजयी थे। फलत जब तक भारत सन्तान अपने पूर्वजो को विस्मृत नही करेगी, जब तक अपने पूर्वजों की धमनियो मे दौड़ने वाले रक्त की पवित्रता धारण करेगी, तब तक इस पृथ्वी की कोई भी शक्ति उनका नाश नही कर सकेगी।

जो लोग अपने अतीत जीवन की ओर फिर कर देखते हैं, आजकल सभी उनकी निन्दा करते हैं। कहा जाता है, भारत के केवल अतीत का विचार करने

से ही यहा की दशा अत्यन्त शोचनीय है। परन्तु मैं कहता हू कि यह बिलकुल असत्य और उलटी बात है। जिस दिन भारत सन्तान अपनी अतीत की कीर्ति-कथा को भूल जायेगी उसी दिन उसकी उन्नति का मार्ग बन्द हो जायेगा। पूर्वजो के अतीत पवित्र कर्म, आने वाली सन्तान को सुकर्म की शिक्षा देने के लिए अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है। अतीत की नींव पर ही भविष्य की स्थापना होती है। जो चला गया वही भविष्य मे आगे आवेगा। हिन्दुओ के अतीत का इतिहास उनके गौरव की पराकाष्ठा है। उस अतीत गौरव की स्मृति से उनके भविष्य के भी वैसे ही गौरवमय होने की सम्भावना है। अब तक जिन्होने अतीत का उज्जवल इतिहास उनके समक्ष रक्खा है, वे ही हिन्दू जातियो के सच्चे हितैषी हैं।

प्राचीन काल का आचार व्यवहार अमुक प्रकार का था इसी कारण भारत-वर्ष का अध पतन है—यह कुछ बात नही। बल्कि मेरी राय मे तो उन सब आचार व्यवहारो की चरम सीमा मे लोग पहुच नही सके, इसीलिये भारतवर्ष का यह अध.पतन हुआ है। प्रत्येक समालोचक यह जानता है, कि भारतवर्ष के सामाजिक नियमो मे परिवर्तन होता आया है। परिवर्तन के योग्य जो रीति-नीति हैं, काल और धर्म के वशवर्ती हो वे आप-से-आप परिवर्तित हो जायेंगी, इसके लिये कोई प्रयत्न करने की आवश्यकता नही—यह कहना अनुचित नही है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतवर्ष के हिन्दू जाति के उन महाप्राज्ञ मनीषियो द्वारा प्रवर्तित विधि व्यवस्था सबका मर्म है। उन मनीषियो के वशज अपनी धारणा मे उन विधि व्यवस्थाओ को नही ला सकते हैं। इसी कारण भारतवर्ष का यह अध पतन हुआ है।

प्राचीन भारतवर्ष के ब्राह्मणो और क्षत्रियो ने अपनी विजयवासना को पूर्ण करने के लिए सैकडो वर्ष केवल युद्धक्षेत्र मे व्यतीत किये हैं? और उस समय के उद्धत राजा युद्ध को ही अपना जीवन-व्रत समझते थे। एक ओर तो निरक्षर जनता थी ओर दूसरी और विजयाभिलाषी राजा लोग। इन दोनो समूहो को उस समय बाधने के लिए धर्मबन्धन था। यही कारण है कि धर्मसम्बन्धी आचार व्यवहार रीति-नीति कठोर हो गयी। उद्धत और निरक्षर लोगो को धर्मबन्धन से बाध रखने के लिए ही उस समय धर्म के विद्वान को कुछ कठोर (कडा) बनाने की आवश्यकता हुई। इन दोनो प्रकार के झगडो को दूर करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण का आविर्भाव हुआ। क्षात्रतेज और ज्ञान की महिमा की रक्षा के लिए ही भगवान इस धराधाम पर अवतीर्ण हुए थे। जो दर्शनशस्त्र का सार है, स्वाधीनता का सार है और धर्म का सार है, उसी सार तत्व की शिक्षा का उपदेश भगवान श्रीकृष्ण ने गीता मे अर्जुन को दिया है। इस समय भी सब लोगो ने गीता शास्त्र का मूल तत्व को हृदयगम नहीं किया है। वह तत्व अवश्य ही एक दिन हिन्दुओ के ज्ञान गोचर होगा।

दरिद्रों के ऊपर प्रभुत्व और अज्ञ लोगो के शिक्षक होने के लिए क्षत्रिय और ब्राह्मणो का आग्रह धीरे-धीरे असह्य हो गया था। क्या ब्राह्मण और क्या क्षत्रिय — सब ने अपने अधीनस्थो को अनेक बन्धनो से आवद्ध करने के लिये अनेक प्रयत्न किये थे। अन्त मे क्षत्रियो के अदम्य तेज और ब्राह्मणो के असीम ज्ञान का परस्पर सामन्जस्य करने के लिए गीत शास्त्र की उत्पत्ति हुई थी।

इस बात पर विशेष रूप से लक्ष्य रखना चाहिए कि प्राचीन भारतवर्ष मे सामन्जस्य का विधान रखने के लिए जिन दो महापुरुषो ने जन्म धारण किया था वे दोनो क्षत्रिय थे। श्रीकृष्ण और बुद्ध ने भगवान के अवतार रूप से लोगो के द्वार पर जाति और धर्म का कुछ भी विचार न कर ज्ञान का प्रचार किया था।

बौद्ध धर्म मे असाधारण नैतिकता के रहने पर भी उसके कुछ प्रयत्न व्यर्थ हुए थे। इसका कारण यह है कि अन्त मे वह धर्म अनेक प्रकार के कुसस्कारो से आच्छन्न हो गया और बहुत से मन्दिर और देव-देवियो की प्रतिमाए स्थापित हुई।

एक समय इस भारतवर्ष मे दुराचार बहुत बढ गया था। उस दुराचार के घृणित और अनुचित काम श्रीशकराचार्य और उनके सन्यासियो द्वारा ही बन्द हुए थे। जितने दिनो तक इस शुभ सुयोग का उदय नहीं हुआ था उतने दिनो तक भारतवर्ष चुपचाप उन दुराचारियो के अत्याचारो को सहने के लिए बाध्य था। शुभ दिन आया, श्रीशकराचार्य आविभूत हुए। उनके पश्चात श्रीरामानुजाचार्य और श्री माध्वाचार्य का आविर्भाव हुआ। भारतवर्ष से दुराचार की कठिन-कठोर और समाज विद्वेषी क्रियाए न मालूम कहा लोप हो गयी? भारतवर्ष ने फिर उसी ज्ञान और शक्ति के प्रवाह मे अपनी पापराशि को धोकर निर्मलता पायी।

इसके बाद भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास मे फिर एक नया अभिनय हुआ। प्राचीन भारत के तत्कालीन ब्राह्मण और क्षत्रिय धीरे-धीरे बलहीन हो गये। हिमालय और विन्ध्याचल के मध्यवर्ती आर्यों का निवासस्थान, आर्यव्रर्त-जहां श्रीकृष्ण और बुद्ध ने अवतार धारण किया था, वही आर्यों की वासभूमि धीरे-धीरे नीरव हो गवी। आर्यावर्त के ब्राह्मणो और क्षत्रियो की ऐसी अवस्था क्यो हुई? वेद-विद्या के असीम ज्ञान से ज्ञानवान ब्राह्मण और वह अदम्य क्षत्रिय तेज क्यो इस प्रकार शिथिल पड़ गये? भिन्न-भिन्न मत मतान्तरो की वृद्धि ही उस अवनति का कारण है किन्तु वह अवनति केवल सामयिक थी।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन.।
स्व स्व चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्या सर्वमानवा ॥

मनु के इस वाक्य से सबको शिक्षा लेनी चाहिए। अवनत ब्राह्मणो और क्षत्रियो ने फिर दक्षिण प्रदेश के बडे-बड़े मनस्वियो के चरणो मे बैठकर वेद

विद्या, की शिक्षा ली। वेदात-शास्त्र का पुनः अभ्युत्थान हुआ। इस बार वेद-विद्या, जिस दिव्य प्रभा के साथ भारतवर्ष मे अवतीर्ण हुई, इससे पहले ऐसी प्रभा किसी ने नही देखी थी। इस समय अत्यन्त दीन-हीन गृहस्थ भी अपनी छोटी-सी कुटीर मे बैठ कर वेद के अत्यंत कठिन 'आरण्यक' भाग का बडी सरलता से पाठ करने लगे।

क्षत्रिय ही बौद्ध धर्म के नेता थे। यही कारण है कि सर्व साधारण ने बौद्ध धर्म का अवलम्बन किया था। सस्कार और धर्मान्तर के प्रभाव से सस्कृत के धर्म शास्त्र, बौद्ध धर्म के सामने धीरे-धीरे दब गये जिसका फल यह हुआ कि बौद्धो के बीच से सस्कृत की शिक्षा विलुप्त-सी हो गयी। बौद्धो के सस्कृत भूल जाने के कारण क्रमशः वैदिक धर्म और वेद विद्या से भी वे वञ्चित हो गये थे। ऐसी अवस्था मे दक्षिण प्रदेश से जो सस्कार का स्त्रोत आया उससे एक मात्र पुरोहितो का ही उपकार हुआ परन्तु सर्वसाधारण का बौद्ध सम्प्रदाय से भी कुछ उपकार नही हुआ बल्कि वे और भी अज्ञान की साकल मे मजबूत बँध गये।

क्षत्रिय ही सदैव भारतवर्ष के स्तम्भ रूप रहे हैं। क्षत्रिय ही स्वाधीनता का पालन और रक्षण करने वाले हैं। उन्होने भारतवर्ष के बुरे सस्कारो को दूर करने के लिए बार-बार प्रयत्न किये थे और उन्ही लोगो की कृपा से पुरोहितो की अनुचित कठोरता दूर हुई थी।

जब उन लोगो मे अधिकाश अज्ञानता के अन्धकार मे डूबे हुए थे, उस समय उन लोगो मे मध्य एशिया की असभ्य जातियो के रूधिर का स्पर्श हो गया था। जिस समय उन लोगो ने तलवार की सहायता से ब्राह्मणो की प्रभुता दबाने के लिए प्रयत्न किया था, उसी समय भारतवर्ष का पूर्ण अध पतन हुआ। उसी अधः पतन से भारत फिर इस जन्म मे अपना उत्थान नही कर सका। क्षत्रीय ही भारतवर्ष की अस्थिमज्जा है। भारत वर्ष के पतन से ही क्षत्रियो का भी पतन हुआ। क्षत्रिय भी अपने पूर्व गौरव को फिर न पा सके। क्षत्रियो के पतन से ब्राह्मणो का पतन हुआ। उसी धारावाहिक पतन से फिर उत्थान नही हुआ। दो सहोदरो मे एक उन्नत और एक अधःपतित रहे—यह कैसे हो सकता है?

राजाजी, आप जान लें, कि आपके ही पूर्व पुरुषो ने सत्य का जो सार सत्य हैं, उसका आविष्कार किया था। वह सत्य यह हैं कि विश्व एक है, इसलिए जब तक कोई आपको क्षतिग्रस्त नही करेगा तब तक वह कदापि विश्व को क्षतिग्रस्त नही कर सकता। ब्राह्मणो और क्षत्रियो ने जो अत्याचार किये थे, अपनी अमित शक्ति को बनाये रखने के लिए अन्यान्य जातियो की जो हानिया की थी, चक्र-वृद्धि व्याज के साथ उन्हें उसका फल भुगतना पडा है, उन्ही की हानि अधिक हुई। उस स्वकृत कर्म के फल से आज भी वे अध पतित अवस्था मे हैं और न मालूम कितने वर्षों तक वे पराधीनता की बेडी पहने रहेगे।

आप ही के एक पूर्व पुरुष ने जो ईश्वर के अवतार माने गये है, कहा था—

"जिसका अन्त करण एकता मे सम्बद्ध है वह मनुष्य इसी जन्म मे स्वर्ग पाने का अधिकारी है।" हम लोग भी इस बात पर विश्वास रखते हैं। तब क्या उनकी उक्ति मिथ्या है ? अर्थशून्य प्रलाप है ? जब यह बात नही है तब सर्वत्र समदर्शी होकर इसी जीवन मे यदि स्वर्ग लाभ हो जाय तो भगवान से साक्षात्कार हो सकता है। अस्तु एकता के प्रति जब तक एकत्व (Sameness)—मे तन्मय नही हो सकता, तब तक उसके लिए यह ससार अन्धकारपूर्ण है। अतएव सदाशय राजाओ को उचित है कि इसी पथ का अनुसरण करें। वेदान्त जिस पथ का पथिक है, उसी पथ के वे भी पथिक बने। मैं भाष्यकारो की बातें नही कहता। भिन्न-भिन्न मतावलम्बी भाष्यकारो मे से दो या एक किसी विशेष भाष्यकार का अनुकरण करने के लिए नही कहता। महाराज, जो आपके हृदय मे विराज रहा है, परमात्मा रूप से जो इस राज-शरीर मे निवास करता है, वह जैसा समझता है मैं भी उसी प्रकार से वेदान्तशास्त्र समझने के लिए कहता हू। सर्वोपरि सर्वत्र समदर्शन—इसी महोपदेश का अनुसरण करने को कहता हू। सर्वत्र समदर्शन, सभी जीवो मे समभाव, सर्वत्र-सभी जीवो मे, ईश्वर दर्शन करने के लिए महाराज मैं आपसे अनुरोध करता हू।

भगवान ने कहा है—

सर्वभूतस्थमात्मान सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन.॥

—गीता अ. ४ श्लो. २६

अपने को सर्वभूतस्थ जानकर और अपने मे सर्वभूतो को मानकर योगयुक्तात्मा पुरुष सर्वत्र समदर्शन की इच्छा करते हैं। यही मुक्ति का स्वाधीनता का मार्ग है। विषमता ही बन्धन का कारण है। शारीरिक एकता के बिना आज तक इस ससार मे कोई भी मनुष्य, कोई भी जाति शारीरिक स्वाधीनता नही पा सकी। अथवा मानसिक एकता के बिना आजतक कोई भी मानसिक स्वाधीनता पाने मे समर्थ नही हुआ।

मूढता, असमदर्शन और वासना-यही तीनो बातें मनुष्यो के दु खो की कारणी भूत है। इन तीनो मे एक दूसरे के अनुकरण की प्रवृत्ति है। मनुष्य अपने को किसी मनुष्य से बडा क्यो समझेगा ? मनुष्य पशु से श्रेष्ठ है, यह विचार भी उसके मन मे क्यों स्थान पावेगा ? इस ससार मे सर्वत्र ही उसी सर्वव्यापी का निवास है। सर्वत्र यही तो है कि-

"त्व स्त्री त्व पुमानसि त्व कुमार उत वा कुमारी।"

तुम स्त्री, तुम पुरुष, तुम कुमार और तुम्ही कुमारी हो।

बहुतो का यह कहना है कि "यह सब सन्यासियो को ही शोभा देता है, गृहस्थो के लिए यह सब नही है।" यह सच है किन्तु क्या गृहस्थो के लिए

कोई कर्त्तव्य नही है ? गृहस्थो के सैकडो कर्त्तव्य हैं, क्या वे उनका पालन करने के लिए बाध्य नही हैं ? समदृष्टि गृहस्थो के लिए भी आवश्यक है। समदृष्टि रखना गृहस्थ का कर्त्तव्य है और इसी से गृहस्थ के यथार्थ गार्हस्थ्य धर्म का पालन होता होता है। सैकडो लोगो के साथ गृहस्थो को व्यवहार रखना पडता है, सैकडो आत्मीय स्वजन और परिजनो से वे घिरे रहते हैं। इसलिए उन सबके प्रति समदृष्टि रखना ही गार्हस्थ धर्म का यथार्थ उद्यापन है। गृहस्थ सबको समान भाव से देखेंगे तभी वे वास्तविक गृहस्थ हो सकेंगे। प्रत्येक समाज, मनुष्य, जाति और जीव को इस समदर्शन की शिक्षा देनी चाहिए—यही सबका लक्ष्य होना चाहिए। परन्तु शोक है कि लोग समदर्शन के मार्ग मे कठिन वैषम्य ही देख रहे है। अच्छे के नाम पर बुरे की सेवा कर रहे हैं। यही मनुष्य के सर्वनाश का मूल है। इसी विषमता से मनुष्य समाज मे विषमता की धारा प्रवाहित हो रही है। यह असमदर्शन, यही अनैक्य भाव शारीरिक, मानसिक और पारमार्थिक बन्धन का एक मात्र कारण है।

गीता मे भगवान ने कहा है—

सम पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानम् ततो याति परा गतिम् ।।

—गीता। १३/२८

सर्वत्र परमात्मा रूपी ईश्वर अधिष्ठान करता है, यह जानकर जो दूसरो से हिंसा नही करता वही परमगति (मोक्ष) पाता है।

आप लोग राजपूत हैं, आप लोग ही प्राचीन भारत के गौरव हैं। आप लोगो के अध.पतन से जातीय अध पतन हुआ है और आप जब उन्नत होंगे, तभी भारत की भी उन्नति होगी। क्षत्रियो के वशज फिर ब्राह्मण सन्तानो के साथ एकत्र होकर अज्ञानियो की ज्ञानवृद्धि और दीनो की सहायता करते हुए सर्वत्र समदर्शन का परिचय दें। तभी भारत के गत गौरव की प्राप्ति और पितृपुरुषो की अतुल कीर्ति की रक्षा होगी।

वह सुसमय नहीं आया है, उस शुभ मुहूर्त का सुन्दर सयोग अभी नही हुआ है—यह बात कौन कह सकता है ? एक समय एक ध्वनि उठी थी, उस ध्वनि का कम्पन्न घूम-घूमकर प्रतिदिन बल सचय कर रहा है। एक दिन सरस्वती नदी के तट पर खडे होकर एक ब्राह्मण ने जिस ध्वनि का उच्चारण किया था, वह ध्वनि पर्वतराज हिमालय के प्रत्येक शिखर पर प्रतिध्वनित हुई थी और उसी ध्वनि की गूज श्रीकृष्ण, बुद्ध और श्री चैतन्य के अन्त करण से उठी थी। फिर भारत भण्डार का द्वार उन्मुक्त होगा। फिर वही उज्जवल आलोक-दिव्य प्रकाश जिस प्रकाश से यह ब्राह्माण्ड प्रकाशित है, आखो के सामने आवेगा फिर द्वार खुलेगा। और आप, मेरे प्रीतिपात्र राजा हैं। जो जाति सनातन धर्म के लिए

स्तम्भ रूप है, आप उसी जाति के शीर्षस्थानीय हैं। आप उन्ही राम और कृष्ण के वशज हैं। क्या आप चुपचाप वैठे रहेगे? यह निश्चय है कि धर्म की रक्षा के लिए आप ही सवसे पहले आगे आवेंगे।

रामकृष्ण का आशीर्वाद आपके ऊपर अनन्त धारा से वरसे। उनके आशीर्वाद से दीर्घ जीवन लाभकर आप सनातन सत्य की सेवा मे निरन्तर रत रहें—यही विवेकानन्द की आन्तरिक प्रार्थना है।

—विवेकानन्द

स्वामीजी से राजाजी की कलकत्ते में भेंट

(अपने गुरू के दर्शनार्थ अजीतसिंह की कलकत्ता यात्रा)

[नारायण शास्त्री—बागला-मारवाड़ी भक्तो द्वारा दस हजार की दानशीलता-मारवाड़ी भक्तों का समागम]

खेतडी के महाराज स्वामीजी से मिलने राजपूताना से आ रहे हैं यह समाचार पाकर स्वामीजी ने २० मार्च १८९७ को दार्जिलिंग १२ दिन ठहरने के बाद कलकत्ता के लिए प्रस्थान किया। पूर्व निश्चयानुसार राजाजी को २६ मार्च १८९७ को कलकत्ते से विदा होकर खेतडी लौटना था।

दार्जिलिंग मे स्वामीजी अपने भक्तो मि० गोडविन, सेवियर दम्पति, गिरिशचन्द्र घोष एव अमेरिकी भक्तो सहित मि० एम० एन० बनर्जी के निवास-स्थान पर ठहरे हुए थे।

स्वामीजी के पश्चिम से लौटने पर अजीतसिंहजी ने मद्रास अभिनन्दन पत्र सहित जगमोहनलाल को भेजा था। विक्टोरिया हाल मद्रास मे मुन्शीजी ने अभिनन्दन पत्र पढकर राजाजी की भक्ति-स्नेह दर्शाया। यह स्वाभाविक ही था कि अजीतसिंहजी का अपने गुरू के विदेश से लौटने पर दर्शनार्थ आतुर और चिन्तित थे। अन्तोगत्वा गुरू के अस्वस्थता का मुन्शीजी से समाचार पाकर चितातुर अजीतसिंहजी १८ मार्च १८९७ को कलकत्ते पहुचे। राजाजी को यह पता नही था कि स्वामीजी दार्जिलिंग प्रस्थान कर गये हैं। खेतडी की सेठ-साहूकार जनता जिनमे दुलीचद ककरानिया, शिवबक्सजी बागला, स्योदत्तजी, शिवप्रसादजी स्वामी त्रिगुणतितानन्दजी, शिवानन्दजी के अतिरिक्त अन्य गण-मान्य व्यक्ति स्टेशन पर राजाजी के स्वागतार्थ उपस्थित थे।

स्वामी लोगो ने प्राचीन परम्परानुसार नारियल, चावल के पौधे एव दूब से राजा का स्वागत किया। शिववक्सजी वागला के चार तल्ला मकान मे अजीतसिंह जी ठहरे थे। स्वामीजी के अभिनन्दन हेतु सन् १८९४ ई० मे टाउनहाल मे जो सभा हुई थी उसमे भी वागलाजी सम्मिलित हुए थे। इसके कुछ दिन पूर्व शोभा वाजार राजवाडी की सभा मे भी शामिल हुए थे।

जब स्वामीजी दार्जिलिंग से २१ मार्च १८९७ को कलकत्ते पहुचे तब महाराजा के दो व्यक्ति बेरकपुर स्वामीजी की अगुवाही करने भेजे और स्वय सियालद स्टेशन १० वजे प्रात.काल स्वामीजी के स्वागतार्थ पहुचे। स्वामीजी के १० ४५ वजे आगमन से पूर्व ही स्टेशन पर काफी भीड हो गई थी। अधिकतर मारवाडी सज्जन उपस्थित थे। पूरा बडा वाजार क्षेत्र के लोग प्रमुख व्यक्तियो सहित उपस्थित थे। रेल के आने पर राजाजी ने स्वामीजी के प्रथम श्रेणी के डिब्बे मे जाकर दडवत कर अभिवादन किया। स्वामीजी के चरण धोकर पुष्प चढाये, पूजा की, माल्यार्पण के उपरान्त स्वामीजी के साथ अन्य स्वामियो को भी माल्यार्पण किया। स्वामीजी के दर्शनार्थ स्टेशन पर आये लुहारू के नवाब एव अन्य मारवाडियो से स्वामीजी को मिलाया। राजाजी ने हिन्दी मे स्वागत भाषण (एड्रेस) किया और स्वामीजी को भेंट किया। उसके बाद सजी हुई महाराजा की गाडी मे स्वामीजी ने प्रस्थान किया। २०० से अधिक वाहन यात्रा मे सम्मिलित थे। वहा से बागलाजी के निवास-स्थान पर पहुचकर स्वामीजी ने स्नानादि किया और महाराजा ने दरवार लगाया उसमे सम्मिलित हुए। स्वामीजी महाराजा के वगल मे विराजे तत्पश्चात राजाजी ने मोहर से नजर करने के बाद कारपेट पर अन्य व्यक्तियो के साथ बैठ गये। राजाजी के निर्देशानुसार सेठ महाजनो ने स्वामीजी को नजर भेंट की। मारवाडी भक्तो ने १० हजार की दानशीलता वेलूरमठ के लिए की।

सायकाल स्वामीजी, राजाजी ने अन्य साथियो सहित कालीजी के दक्षिणेश्वर मदिर मे दर्शन किये। यहा रामकृष्ण परमहस ने ४० वर्ष तक ध्यान साधना की थी। स्वामीजी और उनकी पार्टी के लोगो के आगमन पर भोलानाथ मुकर्जी (मदिर के खजाची) ने सबका स्वागत किया और भगवती के दर्शन करने मा के मदिर के अन्दर लिवा ले गये ताकि अच्छी तरह दर्शन करा सकें। महाराज ने कहा मूर्ति बडी भावपूर्ण व सुन्दर है। मदिर मे एकत्रित जनसमुदाय ने उनको भावपूर्ण विदाई दी।

दक्षिणेश्वर मठ से आलम बाजार मठ आये जहा महाराजा के सम्मान मे स्वागत-भाषण पढा गया। महाराजा ने वही भोजन किया। आलम वाजार मठ मे राजाजी जव सम्मानार्थ आये थे तव स्वामीजी के पास घुटनो के वल घटो वैठे रहे।

खेतडी राज्य के वाकआत रजिस्टर मे दिये गये वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व के होने के कारण अविकल रूप से दिये जा रहे हैं।

ता० १८ मारच सन् १८९७ ई० मीती फागण सु० १५ स० १९५३ का वीसपतवार मु० कलकत्ता।

सवारी श्रीजी बहादूर की अबल दरजा की गाडी से सुवह छै वजकर ४५ मीन्ट गया हावडा का ईस्टेशन पर पूहची ईस्टेशन पर नवाव साहव लुहारू अपणो देस का सेठ महाजन दूलीचन्दजी स्योप्रसादजी वागला वगैरह-वगैरह तथा

श्री स्वामी जी का भेज्या हुचा त्रिगुणतीतानन्दजी सिवानन्दजी बगैरा स्वामी तथा और सैंकडी लोगा मौजूद छा गाडी ठेरताई नबाव सहाब लुहारू से मील्या थोडी बाता करी पाछै धीरे-धीरे पधार चौकडी की गाडी मे बीराज्या सामने सेठ दूलीचन्दजी स्योप्रसादजी ने बैठाया सबसे आगे गाडी पासा बैंक पाछे डा० चन्दरसिंहजी अलसीसर स्योदानसिंहजी लाम्या बंके पाछे मीर मुनसी लछमीनारायणजी नारायणदासजी बैंकै पाछै और लोग बाग' एक मकान स्योबकसजी बागला को चौमजिलो डेरा वास्ते अटथा का सेठ लोगा तजविज कीयो छो सो सवारी बडा वाजार मे पधारी ''गाडीया की लगाटेर अनकरीव पचास से ज्यादा छी ' मकान का दरवाजा आगे गाडी से उतरकर ऊपर पधार्‌या'''

ता० २० मार्च सन् १८९७ मीती चैत बु० २ स० १९५३ का सनीसर मु० कलकत्ते—

मामूली कार्रवाई क बाद लोग बाग हाजिर होवा वाला से मीलबो व बाता होती रही।

ग्यारा बज्या अग्रेजी आफिसा मे पधार सामान मुलाहिजो फरमायो पसन्द के मुवाफिक षरीद करवा को हुकुम हो तो रह्यो ३ बज्या बाद वापस डेरे पधार '' सेठ दुलीचन्दजी के बगीचे पधार्‌या'''

स्वामी विवेकानन्दजी दार्जिलिग छा वा से तार द्वारा बात होकर वाकी तडके ग्यारा बजे की गाडी से आना को षबर आई वांका ल्यावा वास्ते ईस्टेशन पर पधार्‌या वा उनका डेरा वगैरह का मकान सामान का वन्दोबस्त की हुक्म होती रह्यो—सेठ लोग महफिल मे आया छा वा ने हुकम फरमायो कि स्यामकी स्वामीजी का आगमन को उतसव उमदा तौर प्र होणू चाहिजे था लोगाने मय सारा देशवाली साथ के ईष्टेशन पर चाल कर स्वामीजी को सतकार करो चाय—येक बजे बाद वग्गी सवार होय डेरे पधार आराम कियो।

ता० २१ मार्च सन् १८९७ ई० मीती चैत ब० ३ स० १९५३ का दीतवार कलकत्ते।

सूवही मामूली कार्रवाई के वाद मुनसी लक्ष्मीनारायणजी रामलाल मास्टर ने वारकपर स्वामीजी के सामने जावा को हुकम फरमायो'''

दस वजे वग्गी सवार होय मय सेठ दूलीचन्दजी, स्योदत्तरायजी बगैरा कै सालदा ईस्टेशन पर पधार्‌या रेलगाडी आकर ठहरी श्री हजूर स्वामीजी की गाडी अवल दरजा की मे पधार्‌या स्वामीजी से दण्डवत करी पैर प्रक्षालन कर केसर चन्दन चढाय पुष्पा की माला पहराय गुलदस्तो दियो साथका स्वामी वाने माला पहराई स्वामीजी पलेटफारम पर उतर्‌या वे वषत नवाब साहब लुहारू व सहर का मारवाडी लोग जो पहलां से ईस्टेशन पर स्वामीजी का आगमन पर गया हुवा छा स्वामीजी का दरसण कीया आदम्या को भौत हजुम हो गयो। श्री हजूर जुबान

मुबारिक से अेडरेस पढ्यो—

नवाव साहव लुहारू ने स्वामीजी से मिलाया—धीरे-धीरे पलेटफारम पर से बग्गी तक पधार्या—रस्ता मे लोग बाग पुष्पा की बरषा करता रहया स्वामीजी ने वग्गी मे सरदारी वैंठक प्र सवारकर आप सामने बिराज डेरे पधार्या —सेठ लोगा की गाडी पचास साठ के करीव थी डेरा मे स्वामीजी सनान करवा लाग गया। श्री हजूर सेठ महाजन जो नजर करवा वास्ते भेला हुबा छा वासे बाता करता रह्या बाद मे सब लोगा की नजर लई। स्वामीजी सनान से निमट कर दरवार मे पधार्या कुरसी पर बीराज्या श्री हजूर भेंट करी सारा कमरा मे गलीचा की विछात छी सो गलीचा पर सामिल बीराज गया मा हुकम के सेठ महाजन लोग स्वामीजी की भेंट करी।

पीछे लोगा ने सीष हुई स्वामीजी आराम फरमायो श्री हजूर जूहरी लोगा की हीरा व जेवर ल्यायो हुवो मुलाहिजे फरमाता रह्या—स्वामीजी उठ कर लोग वागा से वाता करता रह्या—स्याम के बकत हाथ मु धोय स्वामीजी बगी सवार होय स्वामीजी के गुरुद्वारे मठ मे पधार्या—स्थान की भेंट करी। रात का आठ वजे करीव सेठ दूलीचन्द का वगीचा मे पधार तार व डाक मुलाहिजे फरमाया थाल आरोग्यो—स्वामीजी जीमकर आराम कीयो। श्रीजी भी बारा वजे के करीब आराम फरमायो।

ता० २२ मारच सन् १८९७ ई० मीती चैत व० ४ स० १९५३ का सोम मु० कलकत्ते।

वगीचे सेठ दुलीचन्द के।

सव ही मामूली कारवाई के बाद पोसाष धारण करती वषत ठाकुर सौरीन्द्र मोहनजी आया वाने या वात कही गई वह वगीचा मे टहलता रह्या। पोसाष धारण कर वारने पधार्या जद ठाकुर भी आ गया बरामदा मे हाथ मीलाय कमरा मे दहणी त्रफ कुरसी प्र वाने बैठाया वाई त्रफ आप बीराज्या थोडी देर स्योकीया वाता हुई वे पाछा गया वाने श्री हजूर बग्गी तक पूहचाया।

स्वामी विवेकानन्दजी से वाता करता रह्या—थाल आरोग्यो—स्वामीजी तो मठ मे पधार्या—श्री हजूर बगीचा से अगरेज सोदागरा की आफिसा मे पधार्या—

ता० २६ मार्च सन् १८९७ को कलकत्ते से रात के ९ बज्या ट्रेन से रवाना हुआ मु० कलकत्ते।

Thursday, 18-3-1897, Miti Phalgun Sudi 15, S Y. 1953, Camp—Calcutta

स्वामीजी को खेतड़ी पधारने का निमन्त्रण

राजा अजीतसिंह लदन से रानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती समारोह मे

सम्मिलित होकर यूरोपीय महाद्वीप की यात्रा करके ६ नवम्बर १८९७ को स्वदेश लौटने पर स्वामीजी ने अपने गुरू भाई स्वामी ब्रह्मानन्द को ३० सितम्बर, १९८७ के पत्र मे निर्देश दिया था कि राजा के लौटने पर बम्बई मे अभिनन्दन-पत्र भेंट करना। उसी दिन स्वामी रामकृष्णानन्द को भी इसका स्मरण कराया था। राजाजी के लौटने मे विलम्ब हुआ। स्वामीजी ने १० अक्टूबर को मरी से पत्र लिखा कि अभिनन्दन-पत्र राजा को भेज देना जो २१ या २२ अक्टूबर को बम्बई पहुँचने वाले हैं। स्वामीजी ने इच्छा प्रकट की थी कि अगर उस समय कोई गुरू भाई वहा हो। बम्बई मे अभिनन्दन-पत्र भेंट नही हो सका अन्तोगत्वा खेतडी मे १२ दिसम्बर १८९७ को स्वामीजी ने भेंट किया।

राजाजी के विदेश से लौटने पर खेतडी मे उत्सव आयोजित किया गया और आयोजको ने इस अवसर पर स्वामीजी को विशेष रूप से निमन्त्रित किया। जहां राजाजी अपने गुरू के दर्शन करने के लिए आतुर थे वही स्वामीजी अपने भक्त को आशीर्वचन करने के लिए चिन्तित। स्वामीजी राजपूताने के लोगो को वेदान्त का सिद्धान्त बताने के लिए भी आतुर थे।

राजाजी की कलकत्ता यात्रा का विवरण

श्रीमान् राजा साहब के साथ श्री ठा० चन्द्रसिहजी साहब (अलसीसर) राज श्री ठा० शिवदानसिहजी साहब (लाम्या) आदि सरदार और चौधरी नारायणदासजी एव पण्डित लक्ष्मीनारायणजी प्रभृति कार्यकर्ता थे। खेतडी राज के पुराने वाकआत मे लिखा है—"१८ मार्च को श्रीमान् की सवारी कलकत्ते पधारी। स्टेशन पर स्वागतार्थ राजा शिवबक्षजी बागला, सेठ शिवप्रसादजी तुलसान, सेठ दुलीचन्दजी ककरानिया प्रभृति एवम् स्वामी विवेकानन्दजी के भेजे हुए स्वामी त्रिगुणानन्दजी, स्वामी शिवानन्दजी आदि तथा लोहारू के नबाब साहब उपस्थित थे। दूसरे दिन बडे लाट साहब की गार्डन पार्टी मे शामिल हुए। लाट साहब से मुलाकात हुई। फारेन सेक्रेटरी मि० कनिंघम ने खूब बातें की। महाराज सर जितेन्द्रमोहन ठाकुर से मिलना हुआ। ता० २१ मार्च को दार्जिलिंग से स्वामी विवेकानन्दजी सियालदह स्टेशन पहुंचे। उनके स्वागत के लिए लोहारू के नबाब साहब और अपनी प्रजा के सेठ-साहूकारो के साथ श्रीमान् राजा साहब स्टेशन पर उपस्थित हुए। स्वामीजी की स्वागत-सभा मे राजाजी बहादुर ने स्वय एक एड्रेस पढा। ता० २२ मार्च को राजा साहब से मिलने के लिए आने वालो मे श्रीमान् सौरिन्द्र मोहन ठाकुर महाशय का नाम विशेष उल्लेखनीय है। २६ मार्च को श्रीमान् अपनी पार्टी के साथ जयपुर के लिए रवाना हुए।"

(आदर्श-नरेश—ले० झाबरमल्ल शर्मा—१९४० ई०)

तृतीय यात्रा

(फिर राजस्थान में अलवर, खेतड़ी, जयपुर, किशनगढ, अजमेर, जोधपुर)

स्वामी विवेकानन्द के अमेरिका से लौटने पर मद्रास वालो ने उनके स्वागत का सर्वप्रथम आयोजन कर अपना उत्साह प्रकट किया था। सहस्रो की सख्या मे एकत्र हो, मद्रासियो ने स्वामीजी को अभिनन्दन-पत्र प्रदान किया था। राजा अजीतसिंह ने अपनी ओर से अभिनन्दन करने के लिए मुन्शी जगमोहनलाल को मद्रास भेजा। मुन्शीजी ने खेतडी का अभिनन्दन-पत्र स्वामीजी को भेट किया। उपस्थित जन-समूह के वीच सभी अभिनन्दन पत्रो के उत्तर मे स्वामीजी ने बडा प्रभावशाली भापण दिया था। मुन्शीजी स्वामीजी को खेतडी पधारने के लिए निमंत्रित भी कर आये थे।

स्वामीजी मद्रास से चलकर घूमते हुए दिल्ली पहुचे और दिल्ली से राजपूताने की ओर चले। ट्रेन के रेवाडी स्टेशन पर पहुंचते ही स्वामीजी ने देखा कि उनके लिए खेतडी नरेश के आदमी सवारी के साथ तैयार खडे है। उस समय शेखावाटी मे जाने वालो को रेवाडी स्टेशन पर उतरना पडता था। रेवाडी फुलेरा कार्ड लाइन तब तक बनी नही थी। स्वामीजी को पहले अलवर जाना था, क्योकि अपने भक्तो से वे प्रतिज्ञा कर चुके थे। इसलिए राजाजी के कर्मचारियो को उन्होंने कह दिया कि आप लोग जाए, हम जयपुर होकर खेतडी पहुचेंगे।

स्वामीजी अलवर में

अलवर की प्रथम यात्रा १८९१ मे स्वामीजी ने अज्ञात घुमक्कड साधू के रूप मे परिचय दिया था किन्तु इस यात्रा मे (१८९७ ई०) मे जगत प्रसिद्ध स्वामी विवेकानन्द का अलवरीय भक्तो ने स्वागत कर प्रवचनो का लाभ उठाया। महाराज । मगलसिह उस वार अलवर मे नही थे।

अलवर मे पाच-छह दिन ठहर कर अपने पूर्व योजना के अनुसार स्वामीजी जयपुर पहुचे और वहा खेतडी भवन (Khetri-house) मे अवस्थान किया। जयपुर से खेतडी पहुचने के लिए सवारी का प्रबन्ध हो गया। जयपुर से खेतडी का

१५० किलोमीटर (४५ कोस) का अन्तर है। लम्बा सफर होने के कारण दो-तीन जगह ठहरना पडता था। स्वामीजी के एक प्रामाणिक जीवनी लेखक ने लिखा है कि उस बार जयपुर से खेतडी जाते हुए रास्ते मे एक जगह स्वामीजी को भूत दिखलाई दिया। जो हो, स्वामीजी की अगवानी के लिए राजाजी बबाई कस्बा प्राय ८ कोस (करीब २५ किलोमीटर) स्वय आये और छह घोडो की गाडी मे अपने साथ बिठा कर उन्हें ससम्मान खेतडी लिवा लाये।

स्वामी फिर खेतड़ी में

खेतडी की प्रजा मे उस समय विशेष उल्लास छाया हुआ था। कारण राजाजी भी विलायत यात्रा निर्विघ्न और सकुशल समाप्त कर लौटे ही थे, इसलिए प्रजा मे उमग थी। स्वामीजी भी हिन्दू धर्म की पश्चिमी देशो मे पताका फहराकर लौटे ही थे।

खेतड़ी में स्वागत समारोह

११ दिसम्बर १८९७ ई० को खेतडी हाई स्कूल मे एक महती सभा (समारोह) मे जिसमे खेतडी के गणमान्य सज्जनो के अतिरिक्त विद्यालय के छात्र, वृद्ध और युवा एकत्रित थे। स्वामीजी और राजाजी को विभिन्न संस्थाओ की तरफ से मान-पत्र भेंट किये गये। खेतडी के शिक्षा-विभाग, स्थानीय यग मैन डिबेटिंग क्लब के अतिरिक्त रामकृष्ण मिशन कलकत्ता की तरफ से जिसके प्राण स्वामी विवेकानन्द भी उपस्थित थे—राजाजी को अभिनन्दन-पत्र प्रदान किये गये गये थे। स्कूल के छात्रो ने राजाजी के सम्मान मे स्वागतगान, कवितापाठ किये—तत्पश्चात् राजाजी की अध्यक्षता मे एक सभा हुई। स्वामीजी विशिष्ट अतिथि के आसन पर विराजमान थे। शिक्षा-विभाग ने उपयुक्त अवसर का लाभ उठाकर प्रवुद्ध छात्रो को परितोषित वितरण का आयोजन किया। स्वामीजी ने परितोपित वितरण किया।

राजाजी ने सक्षेप मे कृतज्ञता ज्ञापन की विशेप तौर से रामकृष्ण मिशन के प्रति जिमके सर्वेसर्वा स्वामीजी स्वय कृपापूर्वक आने का कष्ट किया।

स्वागत समारोह मे खेतडी की जनता ने परम्परागत रीति-रिवाज के अनुसार राजाजी को ५ सोने की मोहरो से भरी ट्रे (थाली) राजाजी को भेंट की, जिसको उन्होने उदारत्तापूर्वक राज्य की शिक्षण सस्थाओ के विकास हेतु प्रदान कर दिया। इमके वाद राजाजी और उपस्थित सम्मानित नागरिको ने स्वामीजी के चरण स्पर्श कर, प्रत्येक ने दो-दो रुपये भेंट कर सम्मान प्रकट किया। समारोह दो घटे तक चला। खेतडी से विदा होते समय राजाजी ने स्वामीजी को ३०००/- रुपये भेंट किये। इस धन को मठ के इन्चार्ज स्वामी सदानन्द और

सच्चिदानन्द (वरिष्ठ) को सौंप दिया ।

तदुपरात स्वामीजी ने राजाजी के सहयोग सहायता के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन कर राजाजी के सत्कार्यों की प्रशंसा अपने भाषण मे की । ठा० रामवक्ससिंहजी के धन्यवाद भाषण के वाद राजाजी ने खडे होकर स्वामीजी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन एव जनता को सोहार्द्र-प्रेम-प्रीति के लिए साधुवाद ।

इसके उपरात गायन हुआ—वाद मे स्वामीजी व उनके साथ समागत अतिथियो सहित भोजन के लिए मदिर के पीछे (तिवारी) स्थान पर आये, जहा चौकी लगी हुई थी—भोजन के लिए वैठे । अन्य गणमान्य सज्जनो के लिए २५० पट्टे लगे हुए थे—उन पर भोजन करने वैठ गये । भोजनोपरात सवकी तरफ से ठा० रामवक्ससिंहजी ने इत्र लगाया । इसके वाद ६ वजे तालाब की दूकानो से खडे-खडे आतिशवाजी देखी । राजाजी अपने महलो मे गये और स्वामीजी अपने साथियो सहित सुखमहल मे जहा ठहराये गये थे रात्रि-विश्राम के लिए चले गये ।

खेतडी मे चारो तरफ रोशनी की गई—तालाव की पैडियो पर, लोरियाघाटी मे वास रोप कर, घर के दरवाजो के आगे दीपक जलाये गये । भोपालगढ पर रोशनी (दीप प्रज्वलित) की गई । १३ ।। मन तेल रोशनी मे खर्च हुआ ।

दर्शनार्थ इस जलसे (समारोह) मे पधारे । हम इस शुभ दिन (शुभ घडी) को वहुत समय से आस लगाये वैठे थे । धन्य हमारे भाग्य परमेश्वर की असीम कृपा से वडे अन्तराल के वाद वह शुभ दिन आया । आज हम लोग प्रसन्नता से फूले नही समाते जवकि हम जानते है हिन्दू धर्म के सनातन सिद्धान्तो का प्रतिपादन आपने जिस स्पष्टता, शुद्धता तथा प्रामाणिकता से किया—हिन्दू धर्म की जयपताका दूरस्थ देशो मे आज तक किसी ने नही फहराई । आपने वेदान्त के प्राचीन सिद्धान्तो को जैसा प्रतिपादित किया वैसा अन्य किसी ने नही । आपकी कभी भी इच्छा नही रही कि हिन्दू, मुसलमान व ईसाई वगैरह किसी धर्मावलम्वी का ईमान धर्म भ्रष्ट या परिवर्तित हो, किन्तु इसके लिए सदैव उपदेश देते रहे हैं कि "इन सव धर्मों का एक ही सार, लक्ष्य परमेश्वर एक है । जिसके भिन्न-भिन्न नाम—परमेश्वर, खुदा, ईसामसीह कुछ भी नामो से स्मरण किया जाए—किसी को आपसी वैमनस्य, लडाई-झगडा नही करना चाहिए । दूसरे धर्म की वुराई करने मे अपना वडप्पन नही समझना चाहिए । इन सव धर्मो की मोतियो की एक माला की एक नामवर डोरी (धागा) जिसको परमेश्वर कहना चाहिए—इस पर अटल विश्वास होना चाहिए । आप प्रेम-भाव मे ही ईश्वर के दर्शन करते हैं—यह परम पूज्य आपके गुरु महाराज रामकृष्ण परमहसजी के सिद्धान्तो का असली अनुसरण है—उन्ही की महती कृपा का प्रसाद है । अमेरिका एव योरोप वाले हमारे हिन्दुस्तान को हेय (गिरी हुई) दृष्टि से देखते थे—यह सिर्फ आपके प्रयत्न से ही सम्भव हो सका है कि उन देशो के हजारो

लोग हम लोगो ने आदिगुरु (जगतगुरु) को स्वीकारा है। हिन्दू धर्म के विशेप सिद्धान्त विभिन्न धर्मों मे बन्धुत्व तथा सामजस्य का पाठ आपने विश्व को पढाया। आज का समारोह आपके सत्कार्य की सुकीर्ति की यशोगाथा गाने के लिए आयोजित किया गया है। इसे आप कृपापूर्वक स्वीकार करेंगे—इसी आशा के साथ। परमेश्वर आपको सब तरह से आनन्द मे रखें—खेतडी राज के जागीरदार, कर्मचारीगण और जनता के हस्ताक्षर सम्मान प्रकट कर अपने को कृतार्थ किया। तदुपरात सवारी बडे मदिर पधारी, स्वामीजी को मदिर के महल मे तालाव के सन्मुख आसन पर बैठाया, तत्पश्चात अधिकारीजी (मदिर) ने आरती उतारी एव दो रुपये भेंट किये। मुन्शी लक्ष्मी नारायणजी ने भी दो रुपये भेंट किये। राजाजी ने स्नान करके कपडे वदले (पोशाक बदली)। अन्य गणमान्य लोग समारोह स्थल (महफिल के स्थान) पर गये। ठीक साढे सात बजे समारोह के लिए प्रस्यान किया। स्वामीजी और उनके साथ समागत अतिथि आगे-आगे चल रहे थे, उनके पीछे राजाजी चल रहे थे। मदिर के महल से लेकर समारोह-स्थल तक लाल गलीचे (रेड-कारपेट) बिछे हुए थे। राजाजी सफेद गद्दे पर बैठे स्वामीजी अपने साथियो सहित कश्मीरी गलीचे पर दाहिनी तरफ विराजे।

गणमान्य एकत्रित सज्जन अपने-अपने स्थान पर बैठ गये और स्वामीजी को सम्मानसूचक भेंट (नकदी) हुई। राज्य के गायको (कलालता) के गायन हुए।

मुन्शी जगमोहनलाल का स्वागत भाषण

हम लोग आज अत्यन्त हर्षित हैं कि आपकी विदेश सफल यात्रा के प्रत्यावर्तन पर जैसे खेतडी के राजाजी को सर्वप्रथम मान-पत्र भेंट करने का सुअवसर मद्रास मे प्रदान किया और दर्शन सुयोग कलकत्ता मे मिला वैसे ही हम खेतडी निवासियो (खेतडी की रियाया-जनता) को आज दोनो सुअवसर (दर्शन और मान-पत्र भेंट करने का) प्रदान कर अति कृपा की है। हमे इस बात पर अत्यन्त हर्ष है कि हम वहुत दिन से आपके विदेश से पधारने पर ही दर्शन की आशा लगाये बैठे थे। आपने हमारे सविनय अनुरोध को स्वीकारा और राजा अजीतसिंह के इगलैण्ड, जर्मनी, फ्रास और इटली की यात्रा से सकुशल ६ नवम्बर को पधारने पर १२ दिसम्बर, १८९७ ई० को उनके सम्मान मे अभिनन्दन समारोह आयोजन किया गया। जागीरदार एव उच्च पदाधिकारी एव सभ्रात सज्जनो ने सम्मान भोज का आयोजन किया था। स्वामीजी ने इस समारोह मे विशिष्ट अतिथि के रूप मे आतिथेय स्वीकार किया था। आज वही शुभ दिन है। स्वामीजी के पहुचने से हर्ष मे हर्ष वढ गया। राजाजी और स्वामीजी के स्वागत मे खेतडी निवासियो ने विभिन्न प्रकार से भाग लेकर प्रेम, भक्ति और उत्साह प्रकट किया। राजाजी निश्चित कार्यक्रम से निवृत्त होकर साढे नौ बजे विक्टोरिया (घोडो की बग्गी) मे

बैठ कर तालाव (पन्नालाल का तालाव अपनी वास्तुकला के लिए शेखावाटी जनपद मे प्रसिद्ध है) गये जहा समारोह के आयोजन की व्यवस्था का निरीक्षण किया।

१० बजे वग्गी मे सवार होकर मुशी जगमोहनलालजी सहित स्वामीजी की अगवानी करने ववाई (खेतडी से १२ मील दूर २० किलोमीटर) गये। स्वामीजी पहले से ही ववाई पहुचे हुए थे। राजाजी ने स्वामीजी का एक स्वर्णमुद्रा (मोहर) और पाच रुपये भेंट कर ससम्मान आदर-सत्कार किया, तत्पश्चात् वग्गीगाडी (विक्टोरिया) मे ववाई से खेतडी के लिए प्रस्थान किया। राजाजी ने स्वामीजी को दाहिनी तरफ वैठा कर सर्वोच्च सम्मान दिया—मुशी जगमोहनलालजी आगे की सीट पर वैठे। खेतडी के द्वार झोझू पहुचने पर स्वामीजी की आरती उतार कर आदर-सत्कार किया गया। हिन्दू रीति के अनुसार देवी-देवता (भगवान) की आरती उतारी जाती है। ठाकुर रामवक्सजी, मुशी लक्ष्मी नारायणजी रिसाले सहित (घोडे, ऊटो एव रथ-वग्गीगाडी) पहले से स्वागतार्थ मौजूद थे। मार्ग मे अनेक स्थानो पर स्वामीजी की आरती उतारकर जनता ने दर्शनलाभ किया।

राजाजी का भाषण

राजाजी ने सभी का धन्यवाद करते हुए अपने भाषण मे कहा था—"मेरे पहले मेरे पिता ने जिन भावो के साथ काम करने का प्रयत्न किया था, मैं उन भावो का विस्तार करने का यथाशक्य उद्योग करूगा। जव से खेतडी के शासन का भार मेरे हाथो मे आया है, तव से मैंने शिक्षा-विभाग की उन्नति की ओर विशेष लक्ष्य रखा है। इसी वर्ष मे तीन नयी पाठशालाए खोली गयी हैं और जो पुरानी हैं, वे भी अच्छी दशा मे चल रही हैं। प्रजा के स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना भी मैंने अपना कर्तव्य समझ रखा है। औषधालय खोलने और आयुर्वेद की शिक्षा दिलाने आदि की व्यवस्था करने का मैं विचार कर रहा हू। राज के उद्योग मे प्रजा का सहयोग होने पर ही उद्देश्य की सिद्धि होगी, इत्यादि।" राजाजी का भाषण समाप्त होने पर स्वामी विवेकानन्दजी वक्तृता करने के लिए खडे हुए।

स्वामीजी का आभार प्रकट

स्वामीजी ने धन्यवादपूर्वक कहा—"भारतवर्ष की उन्नति के लिए जो थोडा-वहुत मैंने किया है, वह कभी न होता, यदि राजाजी मुझे नही मिलते।" (...What little I have done for the improvement of India, would not have been done, if Rajaji had not met me)

स्वामीजी का युवकों को उपदेश

प्राच्य और पाश्चात्य आदर्शों की तुलना करते हुए स्वामीजी ने कहा कि पाश्चात्य देश का आदर्श है भोग और प्राच्य देश का आदर्श है त्याग। स्वामीजी ने खेतडी के नवयुवको को पाश्चात्य आदर्श के मोह मे न पडकर दृढता के साथ प्राच्य आदर्श को ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहन दिया। आपने कहा—"शिक्षा का अर्थ है अपने हृदय मे पहले से वर्तमान ईश्वरत्व को प्रकाशित करना। अतएव बालको को शिक्षा देने के लिए उनके प्रति अगाध विश्वास स्थापित करने की आवश्यकता है। प्रत्येक बालक अनन्त ईश्वरीय शक्ति का आधार है, इस बात पर दृढ विश्वास स्थापित करना होगा। अध्यापको को समझना होगा कि इन बालको के हृदय मे जो ईश्वरत्व सुप्तावस्था मे वर्तमान है उसे जागृत करने का हमे प्रयत्न करना है। बालको को शिक्षा देते समय हमे एक और बात का स्मरण रखना चाहिए और वह बात यह है कि बालक स्वय कुछ सोचना सीखें, इसके लिए उन्हे उत्साहित करना चाहिए। इस मौलिक चिन्ता का अभाव ही भारत की वर्तमान दुरवस्था का कारण है। इस प्रकार यदि उन्हे शिक्षा दी जाए तो वे मनुष्य होंगे और अपने जीवन की अनेक कठिनाइयो को हल करने मे स्वय समर्थ होंगे।

स्वामीजी ने इसी यात्रा मे एक महत्वपूर्ण भाषण 'वेदान्त' विषय पर भी दिया था। उस सभा मे सभापति का आसन-राजा अजीतसिंहजी बहादुर ने ही ग्रहण किया था।

'वेदान्त'

स्वामीजी ने अपने उस भाषण के प्रारम्भ मे ग्रीक और आर्य जाति की विशिष्टता बडी उत्तमता से समझायी और बतलाया कि यूरोप की सभ्यता पर भारतवर्ष की चिन्ता-शक्ति का कितना प्रभाव पडा है। बादशाह शाहजहा के अन्यतम पुत्र दाराशिकोह ने शुकोपनिषद् का फारसी भाषा मे अनुवाद कराया था। जर्मन दार्शनिक विद्वान् शोपनहार उसका लैटिन अनुवाद देखकर मुग्ध हो गये थे। उनके लिखे दर्शन-ग्रन्थो मे उपनिषदो का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। दूसरे दार्शनिक काण्ट ने भी उपनिपदो के उपदेशो की छाया ली है। यूरोप मे साधारणत शब्द-विद्या को चर्चा के लिए ही वहा के पडित सस्कृत की आलोचना-प्रत्यालोचना करते हैं, परन्तु वहा प्रोफेसर डासन जैसे व्यक्ति भी हैं जो किसी अन्य कारण से नही किन्तु दर्शनशास्त्र की चर्चा के लिए ही सस्कृत के अनुशीलन का आग्रह रखते है। स्वामीजी ने यह भी आशा प्रकट की कि आगे चलकर यूरोप मे सस्कृत-साहित्य के प्रति लोगो का आग्रह और भी बढेगा। अनन्तर स्वामीजी ने वेदो के सम्बन्ध में अपना मत प्रदर्शित करते हुए कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड का विपय विशद रूप से समझाया। बीचो-बीच मे जो लोग प्रश्न करते थे उन्हे वे

समाधानकारक उत्तर भी देते जाते थे।

स्वामीजी ने अपने पाण्डित्यपूर्ण भाषण मे यह भी प्रतिपादन किया कि ग्रीक लोगो की तरह आर्य भी जगत् की समस्या की मीमासा करने के लिए पहले वाह्य प्रकृति की ओर दौडे थे—सुन्दर और रमणीय वाह्य-जगत् उन्हें भी प्रलोभित कर धीरे-धीरे वाहर ले गया था। परन्तु भारतवर्ष मे यही विशेषता थी कि यहा जो भाव अत्यन्त उच्चता के द्योतक नही थे, उनका कुछ भी मूल्य नही समझा जाता था। मृत्यु के वाद क्या होगा, इसके यथार्थ तत्त्व का निरूपण करने की इच्छा साधारणत' ग्रीको के मन मे उत्पन्न ही नही हुई, परन्तु हमारे यहा पहले से ही यह प्रश्न वार-वार पूछा जाता रहा है कि मैं कौन हू, मृत्यु के वाद मेरी क्या दशा होगी ? ग्रीको के मत से मनुष्य मरकर स्वर्ग मे जाता है, और उसी को अन्तिम फल माना जाता है। परन्तु हिन्दू इतने से ही तृप्त नही हुए। उनके विचार से स्वर्ग भी स्थूल समार के अन्तर्गत है। हिन्दुओ का मत है कि जो सयोग से उत्पन्न है, उमका नाश अवश्यम्भावी है। वे वहि प्रकृति से पूछते हैं—आत्मा क्या है ? क्या उसे जानती है ? प्रकृति की ओर से उत्तर मिला—नही। क्या ईश्वर है ? प्रकृति ने इमके उत्तर मे कहा—मैं नही जानती। इस उत्तर को पाकर वे प्रकृति के यहा से लौट आते है और समझते हैं कि वाह्य प्रकृति चाहे जितनी महान् हो, परन्तु वह देश और काल की सीमा मे आवद्ध है। तव फिर एक और वाणी निकली, अन्य प्रकार के उच्च भावो की धारणा का उदय होने लगा। उस वाणी से ध्वनि निकली—"नेति" "नेति"। उस समय भिन्न-भिन्न देवता एक हो गये, चन्द्रमा, सूर्य, तारा—केवल यही क्यो,—समग्र ब्रह्माण्ड एक हो गया। उम समय धर्म के इस आदर्श के ऊपर आध्यात्मिकता की भित्ति स्थापित हुई।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकम्। इत्यादि।

वहा सूर्य का प्रकाश नही होता वहा चन्द्रमा और तारे भी नही हैं, यह विजली भी वहा नही चमकती, तो फिर इस सामान्य अग्नि की क्या गिनती ? एक के प्रकाश से ही सव प्रकाशित होते हैं। अब उस सीमाबद्ध अपरिणत व्यक्ति-विशेष—सव के पाप-पुण्य का विचार करने वाले क्षुद्र ईश्वर की धारणा नही रह जाती। उस दशा मे वाहर अन्वेषण नही होता, अपने ही भीतर अन्वेषण आरम्भ होता है।

इस कथन के अनन्तर स्वामीजी ने द्वैत, विशिष्टाद्वैत और अद्वैत सिद्धान्त की चर्चा चलाकर वतलाया कि यह प्रत्येक सिद्धान्त—मत एक-एक सीढी के समान है। एक सीढी पर चढकर ही दूसरी पर पाव दिया जाता है और इस प्रकार निर्दिष्ट स्थान पर पहुचा जाता है। अन्त मे अद्वैतवाद मे स्वाभाविक परिणति होती है। उसकी अन्तिम उक्ति है—"तत्त्वमसि।" आचार्यों ने अपने-अपने मत

की पुष्टि के लिए खीचातान की है। वर्तमान भारत मे धर्म का तत्त्व अन्तर्हित हो गया है केवल थोडे से बाह्य अनुष्ठान मात्र रह गये हैं। इस समय जो लोग हैं, उनकी विचित्र दशा है। रन्धनशाला ही उनका मन्दिर हो रहा है और रसोई के वर्तन देवता। यह भाव जल्दी दूर करना चाहिए। जितना शीघ्र यह भाव दूर होगा, उतना ही हिन्दू-धर्म का, हिन्दू-जाति का कल्याण होगा। प्रयत्न ऐसा होना चाहिए कि जिससे उपनिषदो की महिमा को यथार्थ रूप से हृदयगम कर भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय, भेद-भाव को दूर कर दें। अन्त मे स्वामीजी ने भली भाति समझा दिया कि ज्ञान का अर्थ है बहुत्त्व मे से एकत्त्व का आविष्कार। जब कोई विज्ञान, समुदाय विभिन्नता की ओट मे अस्थित एकत्व का आविष्कार करता है तभी वह उच्चतम सीमा मे पहुच जाता है !

स्वामी विवेकानन्द के खेतडी मे दिये वेदान्त सम्बन्धी भाषण की एक रिपोर्ट विवेकानन्द साहित्यशती ग्रथ मे छपी है जिसके लेखक स्वामी गंभीरानन्द हैं। उसे यहा अविकल उद्धृत करना समीचीन होगा—

खेतड़ी में दिया हुआ भाषण

२० दिसम्बर १९८७ को स्वामीजी अपने शिष्यो के साथ महाराज के बगले मे ठहरे हुए थे, जहा उन्होंने वेदान्त के सम्बन्ध मे करीब डेढ घटे तक व्याख्यान दिया। स्थानीय बहुत से सज्जन एव कई यूरोपीय महिलाए भी उपस्थित थी। खेतडी के राजा साहब सभापति थे, उन्होंने ही उपस्थित श्रोताओ से स्वामी का परिचय कराया। स्वामीजी ने बडा सुन्दर व्याख्यान दिया, परन्तु खेद का विषय है कि उस समय कोई शीघ्रलिपि का लेखक उपस्थित नही था। अत· समस्त व्याख्यान उपलब्ध नही है। स्वामीजी के दो शिष्यो ने जो नोट लिये थे उसी का अनुवाद नीचे दिया जाता है .

स्वामीजी का भाषण

यूनानी और आर्य, प्राचीन काल की ये दो जातिया, भिन्न-भिन्न वातावरणो और परिस्थितियो मे रही। प्रकृति मे जो कुछ सुन्दर था, जो कुछ मधुर था, जो कुछ लोभनीय था, उन्ही के मध्य स्थापित होकर स्फूर्तिप्रद जलवायु मे विचरण कर यूनानी जाति ने एक चारो ओर सब प्रकार महिमामय प्राकृतिक दृश्यो के मध्य अवस्थित होकर तथा अधिक शारीरिक परिश्रम के अनुकूल जलवायु न पाकर हिन्दू जाति ने, दो प्रकार की विभिन्न तथा विशिष्ट सम्यताओ के आदर्शों का विकास किया। यूनानी लोग बाह्य प्रकृति की अनन्त एव आर्य लोग आभ्यन्तरिक प्रकृति की अनन्त सम्बन्धी खोज मे दत्तचित्त हुए। यूनानी लोग बृहत् ब्रह्माण्ड की खोज मे व्यस्त हुए और आर्य लोग क्षुद्र ब्रह्माण्ड या सूक्ष्म जगत् के तत्त्वानु-

सन्धान मे मग्न हुए। संसार की सभ्यता मे दोनो को ही अपना अपना निर्दिष्ट अग विशेप सम्पन्न करना पडा था। आवश्यक नही है कि इनमे से एक को दूसरे से कुछ उधार लेना है। लेकिन परस्पर तुलनात्मक अध्ययन से दोनो लाभान्वित होगे। आर्यों की प्रकृति विश्लेपण-प्रिय थी। गणित और व्याकरण मे आर्यों की अद्भुत उपलब्धिया प्राप्त हुई और मन के विश्लेषण मे वे चरम सीमा को पहुच गये थे। हमे पाइथागोरस, सक्रेटिस, प्लेटो एव मिस्र के नव्य प्लेटोवादियो के विचारो मे भारतीय विचार की झलक दीख पडती है।

इसके पश्चात् स्वामीजी ने यूरोप पर भारतीत विचारो के प्रभाव की विस्तृत समीक्षा करके दिखाया कि विभिन्न युगो मे स्पेन, जर्मनी एव अन्यान्य यूरोपीय देशो के ऊपर इन विचारो की कैसी छाप पडी थी। भारतीय राजकुमार दारा-शिकोह ने उपनिषद् का अनुवाद फारसी मे किया। शॉपेनहॉवर नामक जर्मन दार्शनिक उसका लेटिन अनुवाद देखकर उसकी ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। उसके दर्शन मे उपनिषदो का यथेष्ट प्रभाव देखा जाता है। इसके वाद ही काण्ट के दर्शन-ग्रंथो मे भी उपनिषदो के भावो के चिह्न देखे जाते है। यूरोप मे साधारण-तया तुलनात्मक भापा-विज्ञान की अभिरुचि के कारण ही विद्वान् लोग सस्कृत के अध्ययन की ओर आकृष्ट होते है। परन्तु अध्यापक डॉयसन जैसे व्यक्ति भी हैं जो केवल दार्शनिक ज्ञान के लिए ही दर्शनो का अध्ययन करते हैं। स्वामीजी ने आशा प्रकट की कि भविष्य मे यूरोप मे सस्कृत के पठन-पाठन मे और अधिक दिलचस्पी ली जायेगी। इसके वाद स्वामीजी ने दिखलाया कि पूर्वकाल मे 'हिन्दू' शब्द सार्थक था और वह सिन्धु नदी के इस पार बसने वालो के लिए प्रयुक्त होता था, किन्तु इस समय वह सर्वथा निरर्थक है, क्योकि इस समय सिन्धु नदी के इस पार नाना धर्मावलम्वी बहुत-सी जातिया बसती हैं।

इसके बाद स्वामीजी ने वेदो के सम्वन्ध मे विस्तृत रूप से प्रकाश डाला। उन्होंने कहा, "वेद किसी व्यक्ति विशेष के वाक्य नही हैं। पहले कतिपय विचारो का शनै-शनै विकास हुआ, अतत उन्हे ग्रथ का रूप दिया गया, और वह ग्रथ प्रमाण बन गया।" स्वामीजी ने कहा, "अनेक धर्म इसी भाति ग्रंथवद्ध हुए हैं। ग्रथो का प्रभाव भी असीम प्रतीत होता है। हिन्दुओ के ग्रथ वेद हैं जिन पर अभी हजारो वर्षों तक हिन्दुओ को निर्भर रहना होगा। लेकिन उन्हे वेदो के सम्वन्ध मे अपने विचार वदलने होगे और उन्हे नये सिरे से दृढ चट्टान की नीव पर स्थापित करना होगा। वेदो का वाड्मय विशाल है, किन्तु वेदो का नव्वे प्रतिशत अश इस समय उपलब्ध नही है। विशेष-विशेष परिवार मे एक-एक वेदाश थे। उन परि-वारो के लोप हो जाने म वे वेदाश भी लुप्त हो गये, किन्तु जो इस समय भी मिलते हैं, वे भी इस जैसे कमरे मे समा नही सकते। ये वेद अत्यन्त प्राचीन तथा अति सरल भापा मे लिखे गये हैं। वेदो का व्याकरण भी इतना अस्पष्ट है कि

बहुतो के विचार मे वेदो के कई अशो का कोई अर्थ ही नही निकलता ।"

इसके बाद स्वामीजी ने वेद के दो भागो—कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड की विस्तृत समीक्षा की । कर्मकाण्ड कहने से सहिता और ब्राह्मण का बोध होता है । ब्राह्मणो मे यज्ञ आदि का वर्णन है । सहिता अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, जगती प्रभृति छदो मे रचित गेय पद हैं । साधारणत उनमे इन्द्र, वरुण अथवा अन्य किसी देवता की स्तुति है । इस पर प्रश्न यह उठा, ये देवता कौन थे ? इनके सम्बन्ध मे अनेक मत निर्धारित हुए, किन्तु अन्यान्य मतो द्वारा वे मत खडित कर दिये गये । ऐसा बहुत दिनो तक चलता रहा ।

इसके बाद स्वामीजी ने उपासना प्रणाली सम्बन्धी विभिन्न धारणाओ की चर्चा की । वेबिलोन के प्राचीन निवासियो की आत्मा के सम्बन्ध मे यह धारणा थी कि वह केवल एक प्रतिरूप देह (double) मात्र है, उसका अपना कोई व्यक्तित्व नही होता और वह मूल देह से अपना सम्बन्ध कदापि विच्छिन्न नही कर सकती । इस 'प्रतिरूप' देह को भी मूल शरीर की भाति क्षुधा, तृषा, मनोवृत्ति आदि के विकार होते हैं, ऐसा उनका विश्वास था, साथ ही यह भी विश्वास था कि मृत मूल शरीर पर किसी प्रकार का आघात करने से 'प्रतिरूप' देह भी आहत होगी । मूल शरीर के नष्ट होने पर 'प्रतिरूप' देह भी नष्ट हो जायगी । इसलिए मृत शरीर की रक्षा करने की प्रथा आरम्भ हुई इसी से ममी, समाधि, मन्दिर, कब्र आदि की उत्पत्ति हुई । मिस्र और वेबिलोन के निवासी एव यहूदियो की विचार-धारा इससे अधिक अग्रसर न हो सकी, वे आत्म-तत्त्व तक नही पहुच सके ।

प्रो० मैक्समूलर का कहना है कि ऋग्वेद मे पितर-पूजा का सामान्य चिह्न भी नही दिखाई पडता । ममी आख फाडे हुए हम लोगो की ओर देख रहे हैं । ऐसा वीभत्स और भयावह दृश्य भी वेदो मे नही मिलता । देवता मनुष्यो के प्रति मित्र भाव रखते हैं । उपास्य और उपासक का सम्बन्ध सहज और सौम्य है । उसमे किसी प्रकार की म्लानता का भाव नही है, उनमे सहज आनन्द और सरल हास्य का अभाव नही है । स्वामीजी ने कहा, वेदो की चर्चा करते समय मानो मैं देवताओ की हास्य-ध्वनि स्पष्ट सुनता हूँ । वैदिक ऋषिगण अपने सम्पूर्ण भाव भाषा मे भले ही प्रकट न कर सके हो किन्तु वे सस्कृति और सहृदयता के आगार थे । हम लोग उनकी तुलना मे जगली हैं ।

इसके बाद स्वामीजी ने अपने कथन की पुष्टि मे अनेक वैदिक मत्रो का उच्चारण किया । 'जिस स्थान पर पितृगण निवास करते हैं, उसको उसी स्थान पर ले जाओ—जहाँ कोई दु ख शोक नही है ।' इत्यादि । इसी भाति इस देश मे इस धारणा का आविर्भाव हुआ कि जितनी जल्दी शव जला दिया जायगा, उतना ही अच्छा है । उनको क्रमशः ज्ञात हो गया कि स्थूल देह के अतिरिक्त एक सूक्ष्म देह है, वह सूक्ष्म देह स्थूल देह के त्याग के पश्चात् एक ऐसे स्थान मे पहुच जाती

है, जिस स्थान मे केवल आनन्द है, दु:ख का तो नामोनिशान भी नही है। सेमेटिक धर्म मे भय और कष्ट के भाव प्रचुर है। उनकी यह धारणा थी कि यदि मनुष्य ने ईश्वर का दर्शन कर लिया तो वह मर जायगा। किन्तु ऋग्वेद का भाव यह है कि ईश्वर के साक्षात्कार के पश्चात् ही मनुष्य का यथार्थ जीवन आरम्भ होता है।

अव यह प्रश्न उठा, ये देवता कौन थे ? इन्द्र समय-समय पर मनुष्यो की महायता करते हैं। कभी-कभी वे अत्यधिक सोम का पान भी करते हैं, स्थान-स्थान पर उनके लिए सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी प्रभृति विशेषणो का भी प्रयोग हुआ है। वरुण के सम्वन्ध मे भी इसी प्रकार की नाना धारणाएँ हैं। देवो के चरित्र मम्वन्धी ये मव वर्णनात्मक मत्र कही-कही वहुत ही अपूर्व है और भाषा भी अत्यन्त उदात्त है। इसके पश्चात् स्वामीजी ने प्रलय वर्णनात्मक विख्यात नासदीय सूक्त, जिसमे अन्धकार का अन्धकार से आवृत होना वर्णित है—सुनाया और कहा, जिन लोगो ने इन सव महान् भावो का इस प्रकार की कविता मे वर्णन किया है, यदि वे ही असभ्य और असस्कृत थे तो फिर हमे अपने को क्या कहना चाहिए ? इन ऋषियो की अथवा उनके देवता इन्द्र, वरुण आदि की किसी प्रकार की समालोचना करने या उनके वारे मे कोई निर्णय देने मे मैं अक्षम हू। मानो क्रमागत दृश्य पर दृश्य वदलता चला आ रहा है और सवके पीछे **एक सद्विप्रा वहुधा वदन्ति** की यवनिका है। इन देवताओ का वर्णन वडा ही रहस्यमय, अपूर्व और अति सुन्दर है। वह विल्कुल अगम्य प्रतीत होता है—पर्दा इतना सूक्ष्म है कि मानो स्पर्श मात्र से ही फट जायगा और मृगमरीचिका की भाति लुप्त हो जायेगा।

आगे चलकर स्वामीजी ने कहा, "मुझे एक वात वहुत सम्भव और स्पष्ट मालूम होती है और वह यह है कि यूनानियो की भाति आर्य लोग भी ससार की समस्या हल करने के लिए पहले वाह्य प्रकृति की ओर उन्मुख हुए—सुन्दर रमणीय वाह्य प्रकृति भी उन्हे प्रलोभित करके धीरे-धीरे वाह्य जगत् मे ले गयी। किन्तु भारत की यही विशेषता है कि जिस वस्तु मे कुछ उदात्तता नही होती उसका यहा कुछ मूल्य ही नही होता। मृत्यु के पश्चात क्या होता है, इसकी यथार्थ तात्त्विक विवेचना साधारणत यूनानियो के हृदय मे उठी ही नही। किन्तु भारत मे आरम्भ से ही यह प्रश्न वार-वार पूछा जा रहा है—'मैं कौन हूँ ? मृत्यु के पश्चात् मेरी क्या अवस्था होगी ?' यूनानियो के मत मे मनुष्य मर कर स्वर्ग जाता है। स्वर्ग जाने का क्या अर्थ है ? कुछ के वाहर जाना, भीतर कुछ नही है। सब कुछ केवल वाहर है। उनका लक्ष्य केवल वाहर की ओर था, केवल इतना ही नही, मानो वे स्वय भी अपने आप से वाहर थे। और उन्होंने सोचा, जिस समय वे एक ऐसे स्थान मे जा पहुचेंगे जो वहुत कुछ इसी ससार की भाति है, किन्तु वहा इस ससार के दु:ख-क्लेश का सर्वथा अभाव है, तभी उन्हे ईप्सित सभी वस्तुए प्राप्त हो जाएगी और वे तृप्त हो जाएगे। उनकी धर्म सम्वन्धी भावना इसके और ऊपर नही उठ सकी।

किन्तु हिन्दुओ का मन इतने से तृप्त नही हुआ। उनके विचार मे स्वर्ग भी स्थूल जगत् के अन्तर्गत है। हिन्दुओ का मत है कि जो कुछ सयोगोत्पन्न है उसका विनाश अवश्यम्भावी है। उन्होने वाह्य प्रकृति से पूछा, "आत्मा क्या है, इसे क्या तुम जानती हो ?" उत्तर मिला, "नही।" प्रश्न हुआ, "क्या कोई ईश्वर है ?" प्रकृति ने उत्तर दिया, "मैं नही जानती।" तब वे प्रकृति से विमुख हो गये और वे समझने लगे कि वाह्य प्रकृति कितनी ही महान् और भव्य क्यो न हो, वह देश-काल की सीमा से आवद्ध है। तब एक अन्य वाणी सुनायी देती है नये उदात्त भावो की धारणा उनके मन मे उदित होती है। यह वाणी थी 'नेति, नेति'—'यह नही, यह नही'—उस समय विभिन्न देवगण एक हो गये, सूर्य, चन्द्र, तारा इतना ही क्यो, समग्र ब्रह्माड एक हो गया—उस समय इस नूतन आदर्श पर उनके धर्म का आध्यात्मिक आधार प्रतिष्ठित हुआ।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्नि ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

(कठोपनिषद् ३/१)

—'वहा सूर्य भी प्रकाशित नही होता, न चन्द्र, न तारा, न विद्युत्, फिर इस भौतिक अग्नि का तो कहना ही क्या ! उसी के प्रकाशमान होने से ही सब कुछ प्रकाशित होता है, उसी के प्रकाश से ही सब चीजें प्रकाशित हैं।' उस सीमावद्ध, अपरिपक्व व्यक्तिविशेष, सबके पाप-पुण्यो का विचार करने वाले क्षुद्र ईश्वर की धारणा शेष नही रही, अब बाहर का अन्वेषण समाप्त हुआ, अपने भीतर अन्वेषण आरम्भ हुआ। इस भाति उपनिषद् भारत के बाइबिल हो गये। इन उपनिषदो का यह विशाल साहित्य है। और भारत मे जो विभिन्न मतवाद प्रचलित हैं, सभी उपनिषदो की भित्ति पर प्रतिष्ठित हुए।

इसके बाद स्वामीजी ने द्वैत, विशिष्टाद्वैत, अद्वैत मतो का वर्णन करके उनके सिद्धान्तो का निम्नलिखित कथन से समन्वय किया। उन्होंने कहा, "इनमे प्रत्येक मानो एक सोपान है—एक-एक सोपान पर चढने के बाद परवर्ती सोपान पर चढना होता है, सबके अन्त मे अद्वैतवाद की स्वाभाविक परिणति है और अन्तिम है **तत्त्वमसि**।" उन्होंने बताया कि प्राचीन भाष्यकार शकराचार्य, रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य आदि भी उपनिषद् को ही एकमात्र प्रमाण मानते थे, तथापि सभी इस भ्रम मे पडे कि उपनिषद् एक ही मत की शिक्षा देते है। सबने गलतिया की हैं। शकराचार्य इस भ्रम मे पडे थे कि सब उपनिषदो मे केवल अद्वैतवाद की शिक्षा है, दूसरा कुछ है ही नही। इसलिए जिस स्थान पर स्पष्ट द्वैत भावात्मक श्लोक मिलते थे, उन्होंने अपने मत की पुष्टि के लिए खीचतान कर उनका विकृत अर्थ किया। रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य ने भी शुद्ध अद्वैतभाव प्रतिपादक वेदाशो की द्वैत व्याख्या करके वैसी ही भूल की है। यह सर्वथा सत्य है कि

उपनिषद् एक तत्त्व की शिक्षा देते हैं, किन्तु इस तत्त्व मे सोपानारोहण की भाति शिक्षा दी गयी है। इसके बाद स्वामीजी ने कहा कि खेद की बात है कि वर्तमान भारत मे धर्म का मूल तत्त्व नहीं रह गया है, सिर्फ थोडे वाह्य अनुष्ठान मात्र शेप वचे हैं। भारतवासी इस समय न तो हिन्दू ही हैं और न वेदान्ती ही। वे केवल छूआछूत मत के पोषक हैं। रसोई-घर ही उनके मन्दिर हैं और रसोई की हडिया और वर्तन ही उनके देवता हैं। इस स्थिति का अन्त होना ही चाहिए, और जितना शीघ्र इसका अन्त हो, उतना ही हमारे धर्म के लिए अच्छा है। उपनिषद् अपनी महिमा मे उद्भासित हों और साथ ही विभिन्न सम्प्रदायो मे विवाद की इति भी हो जाय।

शरीर स्वस्थ न होने से इतना ही वोल कर स्वामीजी थक गये। अत उन्होंने आध घटे विश्राम किया। उनके व्याख्यान का शेपाश सुनने के लिए श्रोतागण इस वीच धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करते रहे। स्वामीजी वाहर आये और उन्होंने फिर आध घटे भाषण किया। उन्होंने समझाया कि वहुत्व मे एकत्व की खोज को ही ज्ञान कहते हैं और किसी विज्ञान का चरम उत्कर्ष तव माना जाता है, जब सारे अनेकत्व मे एकत्व का अनुसधान पूरा होता है। यह नियम भौतिक विज्ञान तथा आध्यात्मिक विज्ञान दोनो पर समान रूप से लागू होता है।

वाकआत रजिस्टर में तृतीय यात्रा का विवरण

ता० १२ दिसवर, सन् १८९७ ई० मीती पोह व० ४ स० १९५४ का दीतवार

सवारी श्रीजी वहादूर दामइकवालहु की सफर विलायत, जर्मनी, फरास, इटली कर परसनता के साथ ६ नवंबर को खेतडी दाखिल हुई-तीकी वावत जागीरदार, व वडी-वडी तनखा वालो की त्रफ से जाफत देणू करार पाकर आज को दीन मुकर्रिर कीयो छो ओर स्वामी विवेकानन्दजी का आणे प्र महफिल होणू राख्यो छो सी आज वोह दिन है।

श्री अन्नदाताजी महाराज बाद कार्रवाई मामूली ९॥ बज्या बग्गी सवार तलाव पर पधार जगा महफिल वगेरह की जो तजवीज करी गई मुलाहिजे फरमाई।

१० वज्या वग्गी सवार मय मुनसी जगमोहनलालजी स्वामी विवेकानन्दजी की पेसवाई प्रधारे-वबाई पहूच्या-स्वामीजी पहला से आया हुवा मौजूद छा से वा कनै पधार भेंट म्होर १, रु० ५, कीया वासे वाता होती रही ४ वज्या स्वामीजी महाराज ने दहणी त्रफ वरावर मुनसीजी ने सामने वग्गी मे सवार कर रवाना हुवा-झीझू मे पहुच्चा-स्वामीजी की आरती हुई ठा० रामबकसजी मुनसी लछमी-नारायणजी वगैरह दस पाच आदमी बरीसालो धास पेसवाई वासो मौजूद छो सो साथ हुवो-सवारी वडे मदिर पधारी और हर जगह मोको प्र स्वामीजी की आरती

उतरती आई-मदर का महल तालाब कानी का मे स्वामीजी ने आसण पर बैठाया अदकारीजी (अधिकारीजी) मदर का आकर आरती उतारी व रुपया २ भेंट कीया और मु० लछमीनारायणजी २ रु०, जोरजी गणेस दारोगो १ रु०, बाबू जीवनदास २ रु० भेंट कीया फेंर आप तो असनान कर पोसाप करी। लोग-बाग महफिल मे गया—७॥ बज्या श्रीहजूर स्हाब मय स्वामीजी महाराज विवेकानन्द-जी के रवाना हुवा सो आगे २ तो स्वामीजी व बाका साथ का ओर पाछे आप पग पावडा कद का थाना का मदर का म्हल का बारना से और महफिल की जगह तक कीया गया—महफिल मे पधार गदी सादा पर बीराज्या स्वामीजी मय साथ-का के दहणी त्रफ गलीचा पर बीराज्या—महफिल मे—लोगबाग बैठ्या सो स्वामीजी की भेंट माफिक तफसील करी :—

ठा० रामबकसजी २ रु०, पडित गोपीनाथजी २ रु०, जालमसिंहजी २ रु०, मुनसी जगमोहनजो २ रु०, साह अरजनदासजी २ रु०, ठाकर चदरसिंहजी २ रु० धाभाइ रायबकसजी २ रु०, प० कनयालालजी २ रु०, ठा० स्योसिंहजी २ रु०, देवीसहायजीजोसी २ रु०, हरनाथजी वाकोटीका २ रु०, करनैलजी रघुवीरसिंहजी २रु०, गुलाबखाजी २रु०, हकीम अहमदअलीजी २रु०, प०लछमीनाराणजी मोटका २ रु०, आनदीलालजी तहसीलदार २ रु०, भगतरायजी तहसीलदार २ रु०, बसती-लाल चौधरी २ रु०, गगासहायजी मोदी २ रु०, नारायणदासजी चौधरी २ रु०, 'प० सकरलालजी २ रु०, सबलसिंहजी गुढा ५ रु०, षुडारादका ५ रु०, ठाकर बसतरायजी २रु०, श्रीभाल धनजी २ रु०, धाभाई मुसरफषाजी २ रु०, हरनाथजी गो० १ रु०, भारतजी सलेदीजी का १ रु०, अलीहसनमीर १ रु०, सरदार अलीषा १ रु०, गागजी बडागावका १ रु०, लालजी बडा गाव का को बेटो १ रु०, कानजीमोकावत १ रु०, महतावषाजी १ रु०, चौ० गगासहायजी १ रु०, लाला भगोतीलालजी १ रु०, भैरजीरोवजीका १ रु०, भुरजीमेडत्यो १ रु०, जुगलकिशोर १ रु०, मेजरसादूलजी टकणोत १ रु०, श्री गोपालजी १ रु०, लाला बनसीधर १ रु०, रामलालजी १ रु०, तषतजी इन्दरपुरका १ रु०, बसन्तीलाल लाला १ रु०, मेजर रघुवरदयाल १ रु०, बसेसरलालजी १ रु०, स्हानानजी पतरोल १ रु०, दीदारबकस १ रु०, इनसपेक्टर फजल रसूल षा १ रु०, गुलाबराय स्हा १ रु०, जीसुप चौधरी १ रु०, तारबाबू रहमबकस १ रु०, टूटो १ रु०, हुसेनअलीपठाण १ रु०, लछमीनारायण पजाबी १ रु०, प्रसादीमलजी १ रु०, देवीदयाल १ रु०, स्योनारायणसगी १ रु०, मगलजी षाटूको १ रु०, नानूस्हा १ रु०, जोधजी १ रु०, बडाऊ का हबीब १ रु०, चोबदार महमदो १ रु०, चोबदार मेदूफरास १ रु०, महमदोनथूको १ रु० उमरमीर १ रु०, बालाबकस १ रु०, जुवाला १ रु० मुनीम कोठी १ रु०, रामनाथ कानुनगोबो १ रु०, सिमुलालजी १ रु०, रामनारायणजी १ रु०, रामजीदास १ रु०, लाला भादरमल १ रु०, लाला छोटेलाल १ रु०, लाला

चेनसुष १ रु०, ज्यामादार स्हापूरका ११ रु०, भलाआदमी हीरा १ रु०, सराफ सुखदेवस्हा १ रु०, हरीसिंजी १ रु०, सावतजी रीसालदार १ रु०, अम्बादत्तजी मिश्र १ रु०, गणेशजी स्हा १ रु०, जवारजी ठा० १ रु०, जुमरदीषा १ रु०, फरीद सहाजतपांजीको १ रु०, कीसनजी दफेदार १ रु०, मीरजा नवाब १ रु०, रामपरसाद १ रु०, मेजर जगमोहन १ रु० ।

नजर भेंट हुई जीते कलालता को गाणू हूवो—वाद मे सब लोगो की त्रफ से मुनसी जगमोहनलालजी पडा होकर ईसपीच सुनाई कि —

"हम लोग आज अत्यन्त हर्षित हैं कि आपको कामयाबी के साथ पश्चिमी जहान से भारत वरस मे वापस पधारने पर जैसे षेतडी नरेश को पहले-पहले आपकी सेवा मे एड्रेस पेस कराने का मौका मदरास मे और दरसुन का मौका कलकत्ते मे मिला वैसे ही हम लोग षेतडी निवासियों को भी आज दिन दोन्यु बातो का मोका हासिल हुवा है और ज्यादा षुमी ईस बात की है कि आज पधारना होते ही हम लोगो का निमत्रण कु मजूर फरमाकर हमारे इस तकरीब के आजके जलसे मे पधारे हम लोग वहुत दिनो से आसा किये हुए थे कि कब वोह दिन उगे कि जब श्री स्वामीजी महाराज के फिर षेतडी ही मे दरसन होर्ये सो धन्य है परमेश्वर की आज वोह एक मुदत से चाहा हुवा दिन उगा—हमलोग फूले नही समाते हैं—जब कि हम जानते हैं कि हिन्दू धरम की जयपताका दूर-दूर मुलको मे आज तक किसी ने ऐमी नही लगाई और वेदान्त के पराचीन सिद्धान्त वगैरह को भी जैसा नहीं जमाया जसा कि आपने षुद तकलीफ उठाकर दूर-दूर मुलको मे पधार कर किया है—आपकी कभी यह मनस्या नही कि हिन्दू, मुसलमान व ईसाई वगैरह किसी का भी ईमान धरम बिगडे या बदले बलके उपदेस करते हैं इन सब मजहबो का जो एक लक्ष परमेश्वर है जिसका कुछ भी नाम लिया जावे परमेश्वर, षुदा या कुछ भी उसके मामले किसी को भी झगडना नही चाहिये दूसरे के मजहव या फिरके की बुराई करने मे अपनी बडाई हरगिज नही समझना चाहिये और इन सब मजहबो रूपी मोतियो की माला की एक नामवर डोरी जीसको परमेश्वर कहना चाहिये उस पर सवको येक दिल होकर मजबूत रहना चाहिये ईषतलाकात मे येकसा नीयत होना कूदरत के नकसे मे शामिल इसको पहचानना चाहिये—यह उपदेस आपका इस जमाने की समझ जिस तरीके से गवारा कर सकती है उनही तरीको पर हुवा है जिसमे परमपुज्य आपके श्रीगुरुमहाराज रामकृष्ण परमहसजी के सिद्धान्त का असलीअकुर और आपका सविस्तर उपाय वडे रूप मे स्यामिल है—अमेरिका युरोप वाले ईस हिन्दूसथान को दूनीया और दोन्यु मामलु मे भौत गीरा समझते थे अब वर अकस उसके यह सीरफ आपही की कोसीस से हुवा है कि हजारू लायक-लायक आदमी उन देसो के इस भाँत वरसु कै मामलु मे सवसे ज्यादा तरकी कीया हुवा मानने लगे हैं आज का जलसा जो हम लोगो ने इस बात की कदर दीषलाने को

कीया है। इसकी तवाजो को उम्मेद है कि आप कीरपा करके कबुल फरमावेंगे। परमेश्वर आपको सब तरह से आनद रखें—

षेतडी राज के जागीरदार तनषाहदार मुलाजिम यह कही—और दसषत लोगो का।

ठा० रामबकसजी, पडित गोपीनाथजी, स्हा अरजनदासजी, मुनसी जगमोहनजी, प० कनयालालजी, करनल रघुवीरसिहजी, जोसी देवीसहायजी, लछमनदासजी, गगासहायजी नायब, आनदीलाल तहसीलदार, हणूमान तहसीलदार, घाभाई हरनाथजी, प० लछमीनारायणजी, बसतीलाल चौधरी, प० शकरलाल, गणेस स्हा चीठानवीस, रामजीदास, लाला मखनलाल, लाला जोरावरसिंह, भुरसिह मुलकपरियो, ठाकुर बलुतसिह सलेदीजिका, बालसिह चिराणाका, सावतसिह बडाऊका, सादूलसिह गोपालका, महाबकस प्रसरामका, बलासिह गोपालका, प्रतापसिह बीका, नारायणदास चौधरी, मगतराय तहसील-दार, हरनाथसिह बाकोटीका, जोधसिह, भगोतीलाल, लाला बकसीराय धीराणका, बनसीधर, बसन्तराय श्रीमाल, बालुसिह, कपतान हसनअली, भगुतसिह सलेदीका, गुलावेपा, भादरमल श्रीमाल, लछमीनारायणमीर मुन्सीयह दसषत छा।

और बाद मे स्वामीजी महाराज श्री विवेकानन्दजी, श्री हजुर दामयकबालहु की तारीफ मे ईसपीच कही—पाछै ठा० रामबकस सिहजी कही···बाद श्री हजुर दामइकबालहु वहादुर ने षडे होकर जवानमुबारिक से फरमाया।

बाद मे आप तो वीराज गया जद गायणू होकर थोडी देर फेर बठा से स्वामीजी व वाका आदम्या नै आगे कर मन्दर का पाछाने जीमण की जगा पधार्‌या सो आप वास्ते व स्वामीजी और स्वामीजी का साथया के वास्ते तीवारी मे चौकिया लगी हुई मोजूद छी और पाटा लग्या हुआ मौजुद छा सो बीराज्या साथका लोग ढाइसैक २५० करीब पाटा पर बैठ्या और आपके नीचे गदी मोडो रह्यो बाद आध घण्टा के थाल हाजिर हुवा सो आरोगता रहा बाद जीमण के सबकी तरफ से ठा० रामबकसजी अत्र लगाकर फूलमाला पहराइ फेर बठा से ६ बज्या रवाना होकर तालाव की दोकाना पर से पडा-षडा आतीसबाजी मुलाहिजे फरमाई। फेर बग्गी सवार महला पधार्‌या। स्वामीजी सुषमहल डेरा मे गया।

रोसनी तलाव पर पैडिया पर लेरियाघटी व बास रोपकर दरवाजा आगै दीवा धराया गया गढ पर रोसनी हुई तीमे तेल मण १३॥ लाग्यो।

ता० १३ दीमम्बर सन् १८९७ ई० मीती पोह बु० ५ स० १९५४ का सोमवार।

सुषमहल स्वामीजी कने पधार वामे वाता करता रह्या।

ता० १४ दीमम्बर सन् १८९७ ई० मीती पोह बु० ६ स० १९५४ मगलवार।

स्यामकी वाग अजीत निवास पधार्‌या स्वामी विवेकानन्दजी साथ गया वापीस स्वामीजी के डेरे पधार्‌या वाता करता रह्या । ८ वज्या महला पधार्‌या ।

ता० १५ दीसम्बर सन् १८९७ ई० मीती पौह बु० ६ स० १९५४ बुधवार ।

रात ने स्वामीजी आ गया सो सरदमहल मे वासे वाता होती रही । ९॥ वज्यां वह तो गया आप थाल जीमकर आराम फरमायो ।

ता० १७ दीसम्वर सन् १८९७ ई० मीती पौह बु० ८ स० १९५४ सुकरवार ।

१॥ वज्या मदरसा मे पधारे स्वामीजी मौजूद छा सो सभा करी व सकरलालजी हेडमास्टर अेडरेस दीयो वा हेडमासटर उस्ताद लोगा स्वामीजी व श्री हजूर की तारीफ मे सो स्यामील न्यारा है ओर आपकी थेंकर की अेडरेस दीयो—फेर वन्ध अजीत समद पर जाकर वोह दीपायो ओर लडका मदरसा का आया छुट्टी २ रोज लाडू १५ रु० का दीवाया ।

ता० १८ दीमम्वर सन् १८९७ ई० मीती पौह व० १० स० १९५४ का सनीवार ।

अजीत निवास वाग सें ७ वज्या वापस पधार स्वामीजी के डेरे वांसें वाता करी ।

ता० १९ दीसम्वर सन् १८९७ ई० ।

तीसरे पहर चीराणी की डुगरी मे मय स्वामीजी के पधारे—सीकार करी —घुडदौड कराई ।

ता० २० दीसम्वर सन् १८९७ ई० दीतवार ।

स्वामी विवेकानन्दजी आगया वासें टहलता-टहलता वाता होती रही । फेर उप्र पधार वरामडा मे बीराज्या स्वामीजी महाराज से वाता होती रही ।

७ वज्या शाम मय स्वामीजी के रवाना होकर सुषमहल पधारे आज स्वामीजी की तरफ से धर्म बिसे की वात-चीत छी सो बठे ओर भी लोग वाग कुरस्या पर बैंठ्या छा सो स्वामीजी धरम वीसे मे ईसपीच दई ।

ता० २१ दीसम्वर सन् १८९७ ई० मीती पौह बु० १२ स० १९५४ मगलवार ।

४॥ वज्या शाम मय हजूरी चेला व स्वामीजी के बग्गी सवार जैंपुर नैं रवाना हुवा शाम की ववाई दाषील हुवा तहसील मे डेरो हुवो—स्वामीजी से वाता होती रही ।

ववाई से २२ दीसम्बर को चल कर—१ वज्या पीथमपुरी का सर मे पहुचे ओर रात को थोई पध्यार कर थाल जीम आराम फरमाया—

थोई से २३ दीसम्बर को ६ बजे रवाना होकर ७ वज्या जैंपुर दाषील हुवा ।

ता० २४ दीसम्बर सन् १८९७ ई० मे मु० जैपुर।

स्वामीजी से वाता करी।

ता० २५ व २६ दीसम्बर—साधारण राजकीय कामो मे सलग्न रहे।

ता० २७ दीसम्बर सन् १८९७ ई०।

६ बज्या गोविंददास का बगीचा मे पधार्‍या बठे स्वामी विवेकानन्दजी की ईसपीच हुई।

ता० २९ दीसम्बर सन् १८९७ ई०।

स्वामीजी से वाता होती रही।

ता० १ जनवरी सन् १८९८ ई० मीती पोह सु० ७ स० १९५४ का सनीसर।

मु० जैपुर रवानगी स्वामीजी।

फेर स्वामी विवेकानन्दजी आया वानै डडोत प्रणाम कर वासे बाता होती रही। स्वामीजी आज रवाना हो छा सो वानै पूहचावा ने ८ बज्या बग्गी सवार कर मय मुनसी जगमोहनलालजी के ईस्टेशन पर पधारे फेर टाईम आई जद स्वामीजी तो रेल मे सवार होकर अजमेर ने रवाना हो गया आप वापस डेरा पधारे।

अधिक ठहरने का स्वामीजी को अवकाश न था। इसलिए खेतडी से विदा होकर वे पुन जयपुर चले गये। राजाजी भी उन्हे पहुचाने के लिए साथ-साथ जयपुर तक गये।

स्वामीजी जयपुर में

२३ दिसम्बर १८९७ ई० को जयपुर पहुचे एव १० दिन ठहरने के उपरान्त १ जनवरी १८९८ ई० को किशनगढ होते हुए जोधपुर के लिए प्रस्थान किया। जयपुर मे लोगो के आग्रह से गोविंददास के बगीचे मे एक सभा हुई। अध्यक्षीय आसन भी राजाजी बहादुर ने ही सुशोभित किया था। उस सभा मे स्वामीजी एक हृदयग्राही भाषण देकर जोधपुर आदि की ओर प्रस्थान कर गये थे।

स्वामीजी के साथ राजाजी की कोरी वाचनिक सहानुभूति (जबानी जमा-खर्च) न थी। वे उनके सच्चे सहायक और हितैषी थे। स्वामीजी की सहायता बराबर उनकी आवश्यकता की पूर्ति करने के रूप मे करते रहते थे। स्वामीजी की माता को एक सौ रुपये मासिक की सहायता देने की राजाजी बहादुर ने स्थिर व्यवस्था कर दी थी और यह सहायता राजाजी और स्वामीजी के लोकान्तरित होने के बाद भी खेतडी राज के खजाने से स्वामी विवेकानन्दजी की माता को उनका देहावसान होने तक निरन्तर मिलती रही।

स्वामीजी के गुरुभाई स्वामी अखण्डानन्द का राजस्थान में कार्य

स्वामी अखण्डानन्द का पूर्वाश्रम का नाम गगाधर गगोपाध्याय था। उनका जन्म ब्राह्मण कुल मे ३० सितम्बर १८६३ ई० मे कलकत्ता के अहिरटोला मोहल्ले मे हुआ था। स्वामी अखण्डानन्द सन् १६२५ से १६३४ तक दस वर्ष तक रामकृष्ण मिशन के उपाध्यक्ष तथा १६३४ से ७ फरवरी १६३७ ई० मृत्युपरान्त मिशन के अध्यक्ष रहे। परमहस के सान्निध्य मे आध्यात्मिक उन्नति की, तत्पश्चात परिव्राजक जीवन यापन तथा स्वामी विवेकानन्द से प्रोत्साहित होकर "दरिद्रदेवोभव" (मानव मात्र मे ईष्ट सेवा) को आदर्श मानकर जीव सेवा मे जीवन व्यतीत किया। स्वामीजी की मान्यता थी कि कर्म ही महान साधन है। दूसरो के लिए जीना ही सचमुच जीना है, उनके जीवन का मूल मत्र बन गया था।

श्रीरामकृष्ण देव के १८८६ मे शरीर छोडने के पश्चात् गगाधर परिव्राजक के रूप मे सामने आते हैं। वे हिमालय, तिब्बत (तीन बार), राजपूताना, गुजरात महाराष्ट्र के अनेक दर्शनीय एव तीर्थ स्थानो पर पैदल ही भ्रमण करते रहे थे।

राजस्थान मे जयपुर, अजमेर, आबूरोड, उदयपुर, चितौडगढ, नाथद्वारा भी गये थे। खेतडी एवं शेखावाटी जनपद के अलसीसर-मलसीसर-चिडावा-सूरजगढ झुझनू आदि स्थानो पर तो सेवा और शिक्षा का कार्य अपने गुरु भाई स्वामी विवेकानन्द के आदेश से कराते ही रहे।

स्वामी विवेकानन्दजी अमेरिका मे थे उसी समय उनके गुरुभाई स्वामी अखण्डानन्द का खेतडी मे शुभागमन हुआ। पहले भी वे खेतडी पधार चुके थे। राजाजी ने उनके आतिथ्य का यथोचित प्रबन्ध कर दिया। स्वामी अखण्डानन्दजी ने शेखावाटी की स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर लिया। राजाजी के विनम्र व्यवहार और शिष्टाचार से स्वामीजी मुग्ध हो गये। स्वामीजी का कथन है कि "प्राय. डेढ महीने तक मैं मेहमान की तरह

खेतडी मे रहा और लाइब्रेरी से पुस्तकें मगाकर—विशेष कर 'थियोडोर पारकर' की ग्रथावली पढता रहा।" अनन्तर स्वामीजी मलसीसर के ठाकुर श्री भूरसिहजी साहब और उनके कनिष्ठ भाई ठा० श्री चतुरसिहजी के आमन्त्रण से प्राय छ महीने मलसीसर मे रहे। मलसीसर से पुन. खेतडी आये। शेखावाटी के जनसाधारण से मिलने पर उन्हे उनके सुख-दु ख का हाल मालूम हुआ। वहा के गरीबो के कष्ट से स्वामीजी का हृदय एक विशेष प्रकार के कष्ट का अनुभव कर रहा था। उन्होने अपने हृदय की व्यथा स्वामी विवेकानन्दजी को लिखी और शेखावाटी मे कार्य करने की आवश्यकता दिखलाते हुए उनकी अनुमति चाही। स्वामी अखण्डानन्दजी का उत्साह देखकर राजाजी ने भी उनके उद्देश्य के प्रति सहानुभूति प्रकट की और कहा कि आप कार्य कीजिये, जिस प्रकार की सहायता की आवश्यकता होगी, वह आपको राज्य से दी जायगी। उधर अमेरिका से स्वामी विवेकानन्दजी का पत्र[1] पहुंच गया, जिसमे उन्हे राजपूताने मे काम करने के लिए उत्साहित किया गया था। अपने मन के उत्साह, स्वामी विवेकानन्द के

---

१ स्वामी अखण्डानन्दजी को स्वा० विवेकानन्दजी का खेतडी मे जो उत्साहवर्द्धक पत्र मिला, उसके कुछ अवतरण इस प्रकार हैं —

• •• राजपूताने के भिन्न-भिन्न स्थानो के ठाकुरो मे आध्यात्मिक भाव और लोक-हितैषिता को प्रचारित करने की चेष्टा कीजिये। हमे कार्य करना उचित है और आलसी बनकर बैठे रहने से यह हो नही सकता। कभी-कभी मलसीसर, अलसीसर तथा अन्याय "सरो" की यात्रा किया कीजिये।• •

•••••खेतडी के निर्धन और नीची जाति के लोगो के घर जाकर उन्हें धार्मिक-शिक्षा दीजिये। उन्हे भूगोल तथा अन्य तरह के विषयो के मौखिक पाठ दिया कीजिये। आलसी बनकर बैठे रहने, राजसी भोजन करने तथा केवल 'हे प्रभो रामकृष्ण !' कहने से कोई लाभ नही। समय-समय पर दूसरे गाँवो मे भी जाया कीजिये और लोगो का जीवन तथा धर्म के तत्त्वो की शिक्षा दीजिये। कर्म, पूजा और ज्ञान—यही सब शिक्षा के प्रधान विषय हैं। इनका सम्पादन करने से मन पवित्र हो जायेगा अन्यथा अग्नि के बदले भस्म के ढेर मे आहुति देने के समान सब कुछ निष्फल होगा। ••••

• • गेरुआ वस्त्र विलासिता के लिए नही है। यह श्रेष्ठ कर्मों की ध्वजा है। लोक-हित के लिए आपको तन, मन और वचन से प्रस्तुत रहना चाहिये आपने पढा होगा—मातृ देवो भव, पितृ देवो भव—किन्तु मैं कहता हू—दरिद्र देवो भव, मूर्ख देव भव—यह जान लेना कि इनकी सेवा करना परम धर्म है।••••••

विवेकानद।

आदेश और राजाजी की सहायता से स्वामी अखण्डानन्दजी जन-हित मे लग गये। इसी समय प्रसिद्ध लोक-सेवा-परायण सस्था 'रामकृष्ण मिशन' के कार्य की नीव खेतडी मे डाली गयी। उसके उद्देश्य के अनुसार कार्य प्रारम्भ किया गया। अन्यान्य कार्यों के अतिरिक्त शिक्षा-प्रचार का काम भी स्वामी अखण्डानन्दजी ने हाथ मे लिया। राजाजी की उदारता से खेतडी हाईस्कूल की स्थापना हो चुकी थी। उसमे अच्छे-अच्छे अध्यापक नियुक्त थे, परन्तु विद्यार्थियो की सख्या अधिक न थी। इसका कारण यह था कि लोगो ने उस समय तक विद्याध्ययन का महत्त्व विशेष नही समझा था। स्वामी अखण्डानन्दजी घर-घर जाकर लोगो को विद्या के लाभ समझाने लगे। उन्हे मालूम हुआ कि खेतडी मे दरोगा जाति के सैकडो घर हैं और पढने योग्य लडको की सख्या भी कम नही है। स्वामीजी ने उन लोगो मे अपने बालको को पढाने की अभिरुचि उत्पन्न की, परन्तु कठिनता यह थी कि राज की नौकरी मे लगे रहने के कारण दरोगो के लडके पढने का अवसर नही पाते थे और उच्च कर्मचारी उनकी शिक्षा के विरोधी भी थे। स्वामीजी ने राजाजी को पूरी परिस्थिति सुनायी। दयालु राजाजी ने दरोगो के बालको को पढाने की आज्ञा तुरन्त दे दी। पढनेवाले लडको के भोजन (पेटिये) की भी व्यवस्था कर दी गयी। यद्यपि राजकर्मचारियो को यह व्यवस्था अच्छी नही लगी, उन लोगो ने विरोध किया और राजाजी से कहा कि दरोगो के लडके राज मे नौकरी करते हैं, उन्हे स्कूल मे भेजने से काम मे हानि पहुचेगी। परन्तु राजाजी अपने विचार पर दृढ रहे। स्वामी अखण्डानन्दजी के प्रयत्न से स्कूल मे विद्यार्थियो की सख्या बढ कर तिगुनी हो गयी। स्वामीजी ने असमर्थ विद्यार्थियो को पुस्तक आदि की सहायता देने के लिए एक फण्ड खोला और चन्दे के रूप मे राजकर्मचारियो से भी उसमे सहायता प्राप्त की। राजा साहब और उनकी रानी साहिबा की सहायता मुख्य थी ही।

× × ×

राजाजी का हृदय उपदेश को कितना ग्रहण करता था, इसका एक उदाहरण भी लीजिये :—

राजाजी प्रात काल ८ बजे से पहले नही जागते थे, सोते ही रहते थे। स्वामी अखण्डानन्दजी को महल मे ही रहने का स्थान दिया गया था। जिधर राजाजी सोते थे उसके दूसरी ओर बरामदे मे स्वामीजी का आसन था। गरमी के दिन थे। स्वामीजी प्रात काल ही उठ जाते थे, परन्तु राजाजी के उठने मे प्रति दिन देर हुआ करती थी। एक दिन स्वामी अखण्डानन्दजी ने राजाजी से पूछा—"आप शय्या-त्याग किस समय करते हैं ? आपको विलम्ब से उठने की आदत कब से है ? यह आदत स्वास्थ्य के लिये अच्छी नही है। विशेषत. एक राजा के लिए तो बहुत बुरी है। आप पर इतने लोगो की रक्षा का भार है और आप निश्चित होकर ९ बजे

तक सोते रहे—यह वात क्या राजधर्म के अनुकूल है ?"

राजाजी ने सरलता के साथ विनम्र शब्दो में उत्तर दिया—"यह आदत मुझे वहुत समय से है। जव मैं जयपुर रहता था, तभी से यह आदत है।जयपुर दरबार स्वर्गवासी महाराज सवाई रामसिहजी की मुझ पर वडी कृपा थी। मेरी देखभाल भी स्वय करते थे। मैं प्राय उनके पास ही रहा करता था। रात को ३ बजे तक महाराज विलियर्ड खेला करते थे। मैं भी उनके साथ रहता था, खेलता भी था। वाद मे सोता था। ऐसी दशा मे देर से उठने की आदत पड जाना स्वाभाविक है। महाराज १० वजे तक उठते थे और ८,९ वजे मैं, उसी समय की यह आदत है।"

स्वामीजी ने कहा था…"अव आपके लिये यह उचित नही है। नीतिकारो ने असमय सोने की वडी निन्दा की है।" स्वामीजी ने यह श्लोक भी कहा था —

'कुचेलिनं दन्तमलापधारिणम्
वह्वाशिन निष्ठुरवाक्यभाषिणम् ।
सूर्योदये चास्तमये च शायिनम्
विमुञ्चति श्रीरपि चक्रपाणिनम् ॥

मैला-कुचैला कपडा पहननेवाला, दातो को साफ न रखनेवाला, बहुत खाने वाला, कडी वातें वोलनेवाला, सूर्यास्त और सूर्योदय के समय सोनेवाला यदि चक्रपाणि—विष्णु भी हो तो लक्ष्मी उसे छोड देती है। दूसरे की तो वात ही क्या ?

इस वार्तालाप के दूसरे दिन से ही राजाजी ने प्रात काल उठना आरम्भ कर दिया। इतने दिनो की आदत उन्होंने बात की बात मे छोड दी। कैसी सरलता है। अच्छी वातो के ग्रहण करने का कितना अनुराग है।

यह किसी से अज्ञात नही है कि प्रति वर्ष भारतवर्ष से हड्डिया बटोरकर विदेश भेजी जाती हैं। स्वामी अखण्डानन्दजी ने किसी सवाद-पत्र मे पढा कि गत वर्ष ४४ लाख रुपये की हड्डिया भारत से विदेश को भेजी गयीं। इस सवाद की चर्चा करते हुए स्वामीजी ने राजाजी से कहा—"हड्डियो की खाद बडी अच्छी होती है, इसमे जमीन की उपजाऊ शक्ति बढती है। परन्तु स्वार्थी विदेशी व्यापारियो और कमीशन या दलाली के भूखे लोभी ठेकेदारो के कारण अब हड्डिया भी वचने नही पाती। हड्डियो से जमीन को जो स्वाभाविक खाद मिलती थी, वह मिलने नही पाती। इसी से उपजाऊ शक्ति दिनोदिन घटती जाती है। स्वामीजी ने राजाजी से यह अनुरोध भी किया कि यदि आप अपनी अधिकार-सीमा मे ऐसी व्यवस्था कर दें कि जिससे हड्डिया वाहर न जाने पावें तो वडा उपकार हो," राजाजी ने स्वामीजी का प्रस्ताव स्वीकार कर उस समय एक आज्ञा पत्र द्वारा हड्डियो के वाहर जाने देने का निषेध कर दिया था।

खेतडी नरेश प्राय आबू पर्वत पर प्रति वर्ष जाया करते थे। उनके आबू जाने से पूर्व स्वामी अखण्डानन्द जयपुर आये और यहा पर राजस्थान समाचार के सपादक समर्थदास से उनका परिचय हुआ था और उन्ही के साथ वे अजमेर गये थे। फिर चित्तौड होते हुए वे उदयपुर पहुचे। उदयपुर मे रामबाग उद्यान के पास गणेश मदिर मे ठहरे थे।

उदयपुर मे चातुर्मास के लिए अनेक नागा सन्यासी आये हुए थे। स्वामी अखण्डानन्द से भी राज पुरोहित मिले और इनके भोजन इत्यादि की व्यवस्था राज-कोष से करने की अनुमति चाही थी। इस पर स्वामी अखण्डानन्द ने अपनी प्रतिक्रिया इन शब्दो मे व्यक्त की थी, "यदि महाराणा का कोई भी पुत्र भूखा न हो और राजा स्वय मुझे भिक्षा दे तो मैं ले सकता हूँ। महाराणा के अठारह लाख पुत्र हैं और उनमे से कोई भी भूखा नही है, यह आश्वासन दिलाना होगा।" राज पुरोहित उन्हे कुछ भी ग्रहण करने के लिए सहमत नही कर पाये। उदयपुर हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक ने स्वामी अखण्डानन्द को समाचार दिया कि इस बात से महाराणा बहुत नाराज हो गये हैं और उनका जीवन सकटमय है। स्वामी अखण्डानन्द को वस्त्र तथा भोजन भी नही प्राप्त हो पाता था। ऐसी विषम परिस्थिति मे उन्होने एक पत्र हरिसिंह लाडखानी को जयपुर लिखा और कुछ रुपये मंगाये। उनसे वस्त्र खरीदे और मदिर मे अन्न की व्यवस्था की। कुछ रुपये उन्होंने गरीब भीलो को भोजन कराने मे खर्च किये।

स्वामी अखण्डानन्द उदयपुर से लौट पडे और नाथद्वारा पहुचे। नाथद्वारा मे उन्होने रघुनाथ भडारी का आतिथ्य स्वीकारा। यहां सालगराम व्यास के सरक्षण मे स्वामी अखण्डानन्द ने एक मिडिल स्कूल प्रारभ किया और उसका भार एक विद्वान क्षिरोदचन्द्र मित्र के ऊपर छोडकर ओकारेश्वर की ओर चले गये। वहा से वे इन्दौर, उज्जैन, रतलाम, चित्तौड, जयपुर होते हुए खेतडी पहुचे थे। खेतडी मे स्वामीजी ने "आदर्श वैदिक विद्यालय" की स्थापना की। यहा पर मूल रूप से वेदाध्ययन होने लगा। स्वामीजी ने मलसीसर, झुझुनूँ, खडेला, सूरजगढ इत्यादि अनेक गावो मे भ्रमण किया और लोक-कल्याण के कार्यों का प्रतिपादन किया।

स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रेरित होकर ही स्वामी अखण्डानन्द ने लोकहित सेवा कार्यों का व्रत लिया था और इस कार्य की समता और विषमताओ से जूझते हुए एक बार विचलित होकर सोचने लगे थे . क्या गरीबो की सेवा के लिए केवल उन्ही को आदेश हुआ और अनेको गुरुभाई आध्यात्मिक आनद मे ही डूबे रहेगे तथा वे इस बोझ को ढोते रहेंगे। इस सशय का निवारण स्वामी रामकृष्णनन्द द्वारा लिखे गये पत्र से हो गया था जो कि स्वामी अखण्डानन्द को उदयपुर छोडने से कुछ समय पहले ही प्राप्त हुआ था। पत्र द्वारा स्वामी विवेकानन्द ने सब गुरु

भाइयो को मानव सेवा करने का आदेश दिया था। रामकृष्ण मिशन "आत्मनो मोक्षार्थम् जगद्वितीय च" के उद्देश्य को लेकर आगे बढ रहा है। राजस्थान के लिए यह गौरव की बात है "शिव भाव से जीव सेवा" का प्रथम बीज बोने के लिए स्वामी विवेकानन्द ने राजस्थान की मरु भूमि ही मे स्वामी अखण्डानन्द को निमित बनाया था। स्वामी विवेकानन्द के इस आशय की पुष्टि उनके लन्दन से १३ नवम्बर, १८९५ को स्वामी अखण्डनन्द को लिखे गये एक पत्र से होती है, "मेरी ऐसी धारणा है कि तुम राजपूताना मे एक केन्द्र स्थापित करने की ओर विशेष ध्यान दो। यह केन्द्र जयपुर या अजमेर किसी भी मध्यस्थ स्थान मे होना चाहिए। इसके पश्चात खेतडी व अलवर मे उपकेन्द्र स्थापित किये जा सकते हैं।"

यहाँ स्वामीजी के अमेरिका से लिखे पत्र देना समीचीन होगा।

स्वामी अखण्डानन्द को लिखित पत्र

१८९४

स्वामीजी ने अपने गुरुभाई—सहकारी कार्यकर्त्ता को राजस्थान में कार्य, करने, गरीबों के उद्धार के लिए सेवा और शिक्षा का निर्देश (उपदेश) देकर कार्य में हृदय से जुट जाने के लिए प्रेरित किया।

प्रिय अखण्डानन्द,

तुम्हारा पत्र पाकर मुझे अति प्रसन्नता हुई। बडे ही आनन्द का विषय है कि खेतडी मे रहते हुए तुम्हारे स्वास्थ्य मे अच्छी वृद्धि हुई है।

तारक दादा ने मद्रास मे खूब काम किया है बडा ही आनन्ददायक समाचार है। मैंने मद्रासवासियो से उसकी बहुत प्रशसा सुनी हैं।···

राजपूताना के विभिन्न स्थानो मे रहनेवाले ठाकुरो मे आध्यात्मिक एव परोपकार के भाव के विकास करने का प्रयत्न करो। हमे काम करना है और काम केवल बैठे रहने से नही हो सकता। अलसीसर, मलसीसर और जो वहा के दूसरे "सर" हैं वहां जाया करो। मन लगाकर सस्कृत व अग्रेजी का अध्ययन करो। प्रतीत होता है कि गुणनिधि पजाव मे होगा। उसको मेरा विशेष प्रेम पहुचाना और उसे खेतडी ले आना। तुम उसकी सहायता से सस्कृत पढो और उसे अग्रेजी पढाओ। जैसे भी हो मुझे उसका पता अवश्य भेजना। गुणनिधि है अच्युतानन्द सरस्वती।

खेतडी नगर की दरिद्र एव निम्न जातियो के द्वार-द्वार जाओ और उन्हें धर्म का उपदेश दो। उन्हे भूगोल तथा अन्य इस प्रकार के विषयो पर मौखिक पाठ पढाओ। जब तक दरिद्रो के लिए कोई कार्य न करो तब तक खाली बैठकर राजभोग खाकर "हे प्रभु रामकृष्ण"

कहने से कोई लाभ न होगा। कभी-कभी दूसरे गांवो मे भी जाओ तथा लोगो को जीवन कला की शिक्षा दो और धर्मोपदेश भी करो। कर्म, उपासना और ज्ञान—पहले कर्म, उससे तुम्हारा मन शुद्ध हो जाएगा। नही तो राख के ढेर पर पडी आहुति की भाति सभी निष्फल हो जाएगा। जब गुणनिधि आ जाए तब राजपूताना के प्रत्येक गाव मे दरिद्र और कगालो के द्वार-द्वार घूमो। यदि लोग तुम्हारे भोजन को दूषित बतायें तो उस प्रकार के भोजन को तुरन्त त्याग दो। दूसरो के हित के लिए घास खाकर रहना अच्छा है। गेरुआ वस्त्र भोग के लिए नही है, यह वीर कार्य की पताका है। अपने शरीर, मन और वाणी को जगद्धिताय अर्पण करना होगा। तुमने पढा है, "मातृ देवो भव, पितृ देवो भव"—अपनी "माता को ईश्वर मानो, अपने पिता को ईश्वर मानो"—परन्तु मैं कहता हू "दरिद्र देवो भव, मूर्ख देवो भव"—दरिद्र, निरक्षर, मूर्ख और दु खी—यही तुम्हारे ईश्वर हो। यह जानो कि केवल इन्ही की सेवा करना परम धर्म है।

साशीर्वाद
विवेकानन्द

(२)

मार्फत-ई० टी० स्टर्डी, १८९५

स्वामीजी ने अखण्डानन्दजी को राष्ट्रीय एकता, निरन्तर परिश्रम, अनुशासन की आवश्यकतापर बल देते हुए राजपूताना में कार्य करने का निर्देश दिया।

प्रिय अखण्डानन्द,

मुझे तुम्हारे पत्र को पढकर प्रसन्नता हुई। तुम्हारा विचार महान है परन्तु हमारे राष्ट्र मे सगठन गुण का सर्वथा अभाव है। यही एक ऐसी कमी है जिससे हर प्रकार की बुराई उत्पन्न होती है। हम किसी भी कार्य को सबका सर्वमान्य कार्य बनाने के सर्वथा विरुद्ध रहते हैं। सगठन के लिए प्रथम आवश्यकता आत्मा पालन की है। मैं थोडा-सा काम मेरी इच्छा होती है तब करता हूँ—फिर उसे मैं छोड देता हूँ। इस प्रकार का काम व्यर्थ होता है। हमको अथक और निरन्तर परिश्रम करना चाहिए। बराबर मुझसे पत्र-व्यवहार रक्खो। मेरा मतलब यह है कि मुझको हर महीने या महीने मे दो बार मुझको लिखते रहो कि तुम क्या कर रहे हो और उसका क्या परिणाम रहा। हम को यहाँ इगलैंड मे अग्रेजी एव सस्कृत के अच्छे ज्ञाता सन्यासी की आवश्यकता है। मैं शीघ्र ही फिर अमेरिका जाऊँगा और उसको यहाँ मेरी अनुपस्थिति मे कार्य करना होगा। इस कार्य के लिए

मुझे शरद व शशि के अतिरिक्त अन्य कोई नही दिखाई देता। मैंने (एस) के पास रुपया भेज दिया है और उसको शीघ्र ही रवाना हो जाने के लिए लिख दिया है। मैंने राजाजी से निवेदन किया है कि उनके बम्बई स्थित एजेन्ट के शरद को जहाज पर चढाने मे मदद कर दें। मैं लिखना भूल गया—पर यदि तुम श्रम कर सको तो कृपया शरद के साथ मूंग का थैला, चने और अरहर की दाल और कुछ मसाला जिसे मेथी कहते हैं भिजवा देना। कृपया प० नारायणदास, मि० शकरलाल, ओझाजी, डाक्टर और सबको मेरा प्यार कहना। क्या तुम्हारा विचार है कि यहाँ गोपी की आँखो के लिए दवा मिल जायेगी ? हर जगह तुम्हे पेटेन्ट दवाइया मिल जायेंगी लेकिन वे सब गडबड हैं। कृपया उसको वह अन्य लडको को मेरी आशिष करना। थानेश्वर बाबू ने मेरठ मे किसी सोसाइटी की स्थापना की और हम लोगो के साथ मिलकर काम करना चाहते हैं। प्रसगवश लिखना है कि वह कोई पत्र भी चलाते है। काली को वहा भेज दें और यदि वह कर सके तो उसे मेरठ का सेन्टर चलाने दें और पत्र को हिन्दी में चलाने का प्रयत्न करें। मैं भी कभी-कभी थोडी मदद कर दूंगा। जब काली मेरठ चला जायेगा और वहाँ के क्या हाल हैं पर मुझको रिपोर्ट करेगा तब मैं कुछ रुपया भेजूगा। अजमेर मे सेंटर खोलने का प्रयत्न करो। प० अग्निहोत्री ने सहारनपुर मे कोई सोसाइटी प्रारभ की है। उन्होने मुझे पत्र लिखा है। सबसे मैत्री भाव रक्खो। काम, काम, बस इस प्रकार सेंटर खोलते रहो। कलकत्ता व मद्रास मे तो पहले से ही सेंटर हैं और मेरठ और अजमेर मे भी तुम सेंटर खोल सको तो बहुत अच्छा हो। इस प्रकार ६३ विभिन्न स्थानो पर धीरे-धीरे सेंटर खोलते जाओ। यहा मेरे सब पत्र C/o E T Study Esgr, High Vew, Cunestum, Reading, England अमेरिका के लिए C/o Miss Philips, 19 w 38 th Street New york के पते पर भेजो। शनै शनै. हमे सारे ससार मे फैल जाना है। सर्वप्रथम अनुशासन की आवश्यकता है। तुम्हे आग मे कूदने के लिए तैयार रहना चाहिए—यदि काम होगा। — इस प्रकार की सोसाइटियाँ राजपूताना के विभिन्न गाँवो मे स्थापित करो। यही मेरा लिखना है।

तुम्हारा प्रिय
विवेकानन्द

(३)

लन्दन १८ नवम्बर, १८९५

राजपूताना मे केन्द्र स्थापित करने के निर्देश दिये हैं। रा० से तात्पर्य राजाजी अजीतसिहजी है। ना से पडित नारायणदासजी से, जिनसे स्वामीजी ने खेतड़ी मे पाणिनी रचित अष्टाध्यायी का अध्ययन किया था।

प्रिय अखण्डानन्द,

तुम्हारा पत्र पाकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम जो कार्य कर रहे हो, वह बहुत अच्छा है। बडे उदार और मुक्तहस्त हैं, परन्तु इसलिए उनसे इसका नाजायज फायदा न उठाना चाहिए। तुम अपना कार्य इसी प्रकार करते रहना परन्तु अपने अध्ययन की ओर विशेष ध्यान रखना। य० बाबू ने मुझे एक हिन्दी पत्रिका भेजी है, जिसमे अलवर के पण्डित रा० ने मेरे शिकागो-भाषण का अनुवाद किया है। इन दोनो व्यक्तियो को मेरी विशेष कृतज्ञता और धन्यवाद पहुचाना।

> अब तुम्हारे लिए कुछ विशेष लिखता हू। राजपूताना मे एक केन्द्र स्थापित करने का विशेष प्रयास करो। जयपुर या अजमेर-जैसे किसी केन्द्रीय स्थान मे वह होना चाहिये। तदुपरान्त अलवर, खेतडी आदि शहरो मे उसकी शाखाए स्थापित करो। सबसे मिलना-जुलना। हम किसी से विरोध नही करना चाहते। पडित ना-जी को मेरा प्रेमालिगन देना। वे बडे ही कार्यशील व्यक्ति हैं और भविष्य मे विशेष कार्यदक्ष बनेंगे। श्री मा-और-जी से मेरा यथायोग्य प्रीति सम्भाषण कहना। ··

स्वामी अखण्डानन्दजी खेतडी-नरेश से इतने प्रभावित थे कि २७.९ १९२७ ई० को खेतडीनरेश और स्वामी विवेकानन्द पुस्तक की प्रस्तावना लिखने की कृपा की—

"मेरे हृदय मे पडित झाबरमल्लजी शर्मा के आग्रहपूर्ण अनुरोध ने खेतडी नरेश स्वर्गवासी राजा अजीतसिहजी बहादुर के नाम की स्मृति ताजा बना दी है। वृद्धावस्था और अस्वस्थता आदि के कारण अशक्त रहने पर भी मैं "खेतडी नरेश और विवेकानन्द" नामक प्रस्तुत पुस्तक के लिए कुछ पक्तिया लिख देने के अनुरोध को टाल न सका।

मेरा परिचय खेतडी नरेश राजा अजीतसिहजी बहादुर से सर्व प्रथम सन् १८९३ ई० मे हुआ था। इससे पहले ही राजाजी, पूज्यपाद स्वामी विवेकानन्द जी महाराज की कृपा पाकर धन्य हो चुके थे। स्वामीजी की आज्ञा के अनुसार बहुत दिनो तक मुझे भी खेतडी मे रहने का अवसर मिला। खेतडी राज्य और उसकी प्रजा की उन्नति के लिए विविध प्रकार के सदनुष्ठानो मे मे भाग लेता रहा। शिक्षा-प्रचार की ओर ही मेरा मुख्य लक्ष्य था। राजा अजीतसिहजी बहादुर स्वय ही बडे गुणग्राही और विद्योत्साही पुरुषरत्न थे। फिर स्वामीजी के सत्सग के प्रभाव से उनका चरित्र अधिकतर समुज्ज्वल हो गया था। राजाजी का जोडा आज के राजस्थानी नरपति समूह मे दिखलायी नही देता। मुझे यह कहने मे सकोच नही कि राजाजी नीतिमत्ता, नम्रता एव शिष्टाचार के मूर्तिमान स्वरूप थे। सब तरह के गुणवान पुरुषो का आदर और सत्कार करना ही उनका

स्वभाव था। गुणियो की परीक्षा करने की रीति भी उनकी अनूठी थी। क्षमा-गुण के लिए तो वे आदर्श थे। मैंने स्वय देखा, एक पजाबी फक्कड राजाजी के समीप उपस्थित होकर अकारण उन्हे गालिया देने लगा, फिर भी उनकी धैर्यच्युति नही हुई, बल्कि उसकी सेवा का यथोचित प्रबन्ध कर अपनी स्वाभाविक शिष्टता का परिचय देने मे ही उन्होंने आनद माना। इस क्षमाशीलता एव अतिथि सत्कार-परायणता का उनके दरबारियो पर बडा अच्छा प्रभाव पडा था।

प्राचीन नीतिवचन है—

"सत्य ब्रूयात् प्रिय ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्"

किन्तु राजा अजीतसिहजी बहादुर के मुह पर अप्रिय सत्य वचन बारम्बार कहकर मैंने उनकी जो धैर्ययुक्त क्षमा देखी, वह मुझे अन्यत्र या किसी और रईस मे दृष्टिगोचर न हुई। राजाजी वस्तुत अति कठोर हितकारी सत्यवचन के जैसे आदर्श श्रोता थे, वैसे ही अद्भुत कर्मी भी थे। वे अच्छे कवि थे और उनका हृदय प्रेमपूरित था। उनके रचित एक मधुर पद की याद मुझे अभी तक बनी हुई है। पद की टेक थी—"पिय बिन मोकू कछु न सुहावै। तडपत जिय अति ही अकुलावै"—पद की समाप्ति मे था—"मरण न देत आस मिलबे की" बस, इस शेष पंक्ति के भाव की प्रशमा करते समय पद गाते हुए स्वामी विवेकानन्दजी महाराज मगन हो जाते थे। यह एक ही पद राजाजी के प्रेमपूर्ण भावुक हृदय का प्रकृष्ट परिचायक है। राजाजी अपनी प्रजा की उन्नति के लिए सदा तत्पर रहते थे।

> "राजाजी की मृत्यु के थोडे ही समय बाद स्वामी विवेकानन्दजी ने इहलीला सवरण की। राजाजी के वियोग का उनके हृदय मे बडा दु ख था और उस दु ख को उन्होने कई वार हम लोगो के सामने व्यक्त किया। वास्तव मे राजा अजीतसिहजी, स्वामीजी के अनुरक्त भक्त और एक प्रधान सहायक स्तम्भ थे। हिन्दू ससार के प्रधान सपादक श्रीयुत पडित झाबरमल्लजी शर्मा को धन्यवाद है कि उन्होंने राजा और स्वामीजी के पारस्परिक सबध का परिचय देनेवाली यह सुन्दर पुस्तिका लिखकर देशवासियो के समक्ष रख दी। पुस्तक सूत्र रूप होने पर भी इसमे कोई विशेष घटना छूटने नही पायी है। आशा है, हिन्दी भाषा भाषी जनता इस पुस्तक के महत्त्व को समझेगी।"

अखण्डानन्द

(स्वामी विवेकानन्दजी के गुरुभाई और सहकारी कार्यकर्त्ता)

बेलूड मठ
२७ ९ २७

स्वामी विवेकानन्द के राजस्थानी भक्त

राजस्थान मे स्वामीजी सर्वप्रथम अलवर आये थे अत वहां उनके अनेक भक्त होने स्वाभाविक थे। फिर अजमेर आबू यात्रा मे वहा के स्थानीय लोगो मे से भी कुछ उनके परम भक्त हो गये। खेतडी नरेश से परिचय के पश्चात् खेतडी मे तो अनेक भक्त हो गये। उनमे से कुछ का उल्लेख उचित है—

महाराजा मंगलसिंह (अलवर)

महाराजा मगलसिंह १४ दिसबर सन् १८७४ ई० को अलवर की राजगद्दी पर बैठे। उस समय १५ वर्ष १ दिन की आयु थी। युवा राजकुमार ने २२ अक्टूबर, १८७५ को उच्चशिक्षा हेतु मेयो कालेज मे प्रविष्ट होकर पूर्ण शिक्षा ग्रहण की। किशनगढ के महाराज पृथ्वीसिंह की राजकुमारी से सन् १८७७ को विवाह हुआ। १८८५ मे रतलाम महाराज की राजकुमारी से द्वितीय विवाह हुआ। जिनकी कोख से जयसिंह का जन्म हुआ। १८८५ ई० मे ही ब्रिटिश सेना मे आनरेरी लेफटिनेंट कर्नल हुए एव १८८९ ई० मे Knight Grand commander की पदवी से सम्मानित किये गये। महाराजा मगलसिंह प्रगतिशील विचारो के थे, उन्होंने अपने विवाह पर न्योता देने की परम्परा को मानने से साफ इनकार कर दिया। प्राचीन रीति-रिवाज के अनुसार राजा के विवाह का समस्त खर्च जनता एव अधिकारियो को वहन करना पडता था। वे आडम्बरो के खिलाफ थे। नैनीताल मे अधिक मदिरापान से २२ मई, १८९२ को शरीर त्याग कर इस असार संसार से सदैव के लिए मुक्ति पाई। मूर्ति पूजा पर स्वामी विवेकानन्द का तर्क सगत उपदेश सुनकर स्वामी जी के भक्त बन गये थे। भारतवर्ष मे प्रथम राजा थे, जिन्होने स्वामीजी को सम्मान प्रदान किया।

लाला गोविन्दसहाय (अलवर)

गोविन्दसहाय जी का जन्म सन् १८६६ मे हुआ था। आगरा कालेज से

एफ० ए० की शिक्षा प्राप्त कर अलवर महाराजा की सेना मे हैडक्लर्क के पद पर आसीन हुए। एक दिन जब वे अपने कार्य से वापस लौट रहे थे तो उन्होंने कम्पनी बाग मे एक वृक्ष के नीचे एक सन्यासी को बैठे देखा। उन्होंने उनसे सम्पर्क किया और उनके व्यक्तित्व से बडे प्रभावित हुए, और उन्हे गुरु वरण किया। प्रारभ मे अलवर आने पर स्वामीजी पसारी बाजार मे एक बगाली डाक्टर के यहा ठहरे हुए थे और गोविन्दसहाय के अनुरोध पर उनके निवास स्थान पर ठहरने के लिए चले गये। गोविन्दसहाय पर स्वामीजी की बडी कृपा रही और उन्होने समय-समय पर उन्हे पत्र भी लिखे जिससे स्पष्ट है कि स्वामीजी ने गोविन्दसहाय को अपना शिष्य बनाया और प्राणायाम साधना की सीख पत्रो से देते रहे। गोविन्दसहाय के माध्यम से दीवान रामचन्द्र स्वामीजी के सम्पर्क मे आये और महाराजा मगलसिंह को स्वामीजी से मिलाने का श्रेय इन्ही को जाता है। आपकी मृत्यु १९२५ मे हुई।

दीवान रामचन्द्र (अलवर)

दीवान रामचन्द्र महाराजा मगलसिंह के विश्वासपात्र और अलवर राज्य के प्रधानमत्री थे। वे प्रशासकीय कार्य मे कुशल थे। उनके समय मे चोरी डाका करने के अपराध मे फासी की सजा का प्रावधान सर्वप्रथम हुआ। परिणामस्वरूप अलवर राज्य मे अपराध नगण्य के बराबर हुए। दुर्भाग्यवश अत मे जिस फासी का उन्होंने प्रावधान किया था उसी पर अग्रेजो के षड्यत्र के कारण रामचन्द्रजी को फासी लगा दी गई। दीवान रामचन्द्र ने ही महाराजा मगलसिंह से स्वामी विवेकानन्द की भेंट करायी और स्वामीजी के परमभक्तो मे रहे। स्वामी विवेकानन्द और महाराजा मगलसिंह की मूर्ति पूजा का वादविवाद इन्ही दीवान रामचन्द्र की हवेली पर हुआ जिसके परिणामस्वरूप महाराजा मगल सिंह स्वामीजी के परम अनुरक्त भक्त हो गये।

श्री हरबक्स फौजदार (अलवर)

महाराजा मगलसिंह के समय मे जेल अधीक्षक और हाकिम जागीर थे। कुशल प्रशासक और मितव्ययी प्रवृत्ति के थे। महाराजा मगलसिंह के विवाह पर अधिक खर्चा करने से सबधित अधिकारियो को उन्होंने दडित किया। जब अधिकारियो ने महाराजा मगलसिंह से इसकी शिकायत की तो बडी चतुराई से रूलबुक के अतर्गत जो नियम महाराजा ने स्वय बनाये थे उनको हाजिर करते हुए दलील दी कि महाराज ये नियम आपके ही बनाये हुए हैं, और इनकी अवहेलना करना न्यायोचित नही होगा। इस तरह वे महाराजा के विश्वस्त कार्यकर्त्ताओ मे रहे। स्वामी विवेकानन्द से उन्होंने नाम जप की शिक्षा ली जिसका स्वामीजी

द्वारा गोविन्दसहाय को लिखे गये पत्रो मे स्पष्ट उल्लेख है।

ठा० हरिसिंहजी लाड़खानी (जयपुर)

ठा० हरिसिंह लाडखानी रायसल दरबारी के पौत्र केसरीसिंहजी के वशज थे, जो लाडखान के पुत्र थे। पहले वे लोग खोरी ग्राम मे रहते थे। इनके एक पूर्वज खेतडी सस्थान मे सेवारत थे। खेतडी के राजा बाघसिहजी और अभयसिह-जी ने इस वश के बाघसिह और बैरी साल को निराधनू की जागीर प्रदान की थी। इसी कुल मे रामवक्ष सिह हुए जो राजा अजीतसिहजी के परम विश्वास पात्र थे। उन्होंने निराधनू के अतिरिक्त जयपुर राज्य से खाटू भी इस्तमरार इजारे पर ले लिया था। सौभाग्यसिहजी बहुत योग्य पुरुष थे। वे खेतडी मे महाप्रबन्धक रहे और जयपुर के महाराजा स० रामसिह जी (द्वि०) के भी परम प्रीतिपात्र थे। उनके और रामसिहजी के सवाद रूप मे एक वेदान्तपरक रामसौभाग्य शतक काव्य की रचना प० गोपीनाथजी दाधीच ने की है। हरिसिहजी सौभाग्यसिह-जी के पुत्र थे। वे परम योग्य, वीर और स्पष्टवादी थे। कुछ समय राजा अजीत-सिहजी के पास खेतडी भी रहे थे। फिर जयपुर आये तो उनकी योग्यता से प्रसन्न होकर बाबू कान्तिचन्द्र मुखर्जी प्रधानमत्री ने उन्हें जयपुर का फौज बख्शी बनाया। वे महाराजा माधवसिहजी के साथ एडवर्ड सप्तम के राज्यारोहण समा-रोह मे भी इगलैड गये और सम्मानित हुए। कुछ दिनो बाद महाराजा की उन पर नाराजी हुई। परन्तु थोडे समय बाद सुलह हो गई और उनकी जागीर पुन. बहाल कर दी गई। वे तहरीरें लिखाने और मुकदमो मे सलाह देने मे बडे कुशल थे। बहुत से लोग उनसे राय लेने उनके डेरे पर आया करते थे। बडी अवस्था मे भी वे नियमित व्यायाम करते थे और स्फूर्तिवान थे। उन्होंने 85 वर्ष की लम्बी आयु पाई।

(राव संसारचन्द्र सेन जयपुर)

बाबू ससारचन्द्र सेन का जन्म बगाल के चौबीस परगना के ग्राम नाटाजोड के उच्च वैद्य-कुल मे हुआ था। आप श्रीयुत नीलाबर सेन के ज्येष्ठ पुत्र थे। आगरा कालेज मे शिक्षा पाकर जयपुर महाराजा कालेज मे आप अध्यापक हुए। वहा से जयपुर के राजपूत स्कूल के हेडमास्टर हुए। सयोग की बात है, वहा उनके छात्रो मे जयपुर के वर्त्तमान महाराजा साहब बहादुर भी थे। इनके राज्य-सिंहा-सनारूढ होते ही बाबू साहब प्राइवेट सेक्रेटरी के प्रतिष्ठित पद पर नियत किये गए फिर राव बहादुर बाबू कातिचन्द्र मुकर्जी सी० आई० ई० के स्वर्गवास के पीछे वे तो कौंसिल के इलाके गैर के मेम्बर और पीछे प्रधानमत्री बनाये गये। महाराजा साहब ने इन्हें ताजीम और पाच हजार रुपये की पुश्तैनी जागीर प्रदान करके

इनकी सेवाओ का पारितोषिक दिया और उन्होने अपनी गुणग्राहकता दिखाई। दिल्ली-दरवार के अवसर पर ये राव वहादुर वनाये गये। १९०३ ई मे राय-वहादुर की उपाधि से अलकृत किये गये। जब प्रिंस ऑफ वेल्स जयपुर पधारे थे तव उनसे स्वय इन्हे एम० वी० ओ० का तमगा मिला था। जनवरी १९०९ ई. को इन्हें सी० आई० ई० की उपाधि मिली थी जिसका पदक राजपूताना के एजेंट गवर्नेनर जनरल ने स्वय वावू साहव के घर जाकर दिया था। सौम्य स्वभाव और सुशील वृत्ति से वावू साहव सर्वप्रिय हो गये थे। उनकी स्वामिभक्ति से उनके स्वामी अति प्रसन्न थे, उनके न्याय और सरल स्वभाव से प्रजा अति प्रसन्न थी और उनके सत्कार से उनके अतिथि प्रसन्न थे। इनका स्थान जयपुर मे और इनके भाई स्वर्गीय हेमचन्द्र सेन का देहली मे, प्रवासी वगालियो का वडा भारी आश्रय था। जयपुर महाराज साहव की विलायत-यात्रा, दुर्भिक्ष और प्लेग का सुप्रवध, युवराज का स्वागत, राजसेवा मे शिक्षितो की अधिक नियुक्ति, कालेज मे विज्ञान की उच्च शिक्षा का प्रवन्ध, डाकखाने का सुधार आदि प्रमुख कार्य किये। ससारचन्द्र सेन का जन्म सन् १८४६ ई मे हुआ और ११ मई, १९०९ ई० को जयपुर मे देहावसान हुआ। वे जयपुर राज्य के तीसरे वगाली प्रधानमत्री थे। इनके पहले क्रमानुसार श्री हरिमोहन सेन तथा कान्तिचन्द्र मुखो-पाध्याय इसी पद पर रहे थे।

ठाकुर मुकन्दसिह

ठाकुर मुकुन्दसिह अलीगढ की ओर के रहनेवाले एक प्रसिद्ध आर्य-समाजी सज्जन थे। स्वामी विवेकानन्द पर उनकी श्रद्धा जम गयी थी। स्वामीजी भी उनसे वहुत प्रसन्न थे। आर्य समाज के सिद्धान्त-ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश मे "न तस्य प्रतिमा अस्ति"—इस वाक्य द्वारा मूर्तिपूजा का खण्डन किया गया है। ठाकुर मुकुन्दसिह दुराग्रही नही,—विचारशील व्यक्ति थे। धार्मिक आलोचना के सिलसिले मे ठाकुर साहव ने प्रसङ्गवश कहा था कि "इस खण्डन के द्वारा ही मूर्ति-पूजा का होना सिद्ध है क्योकि जो वस्तु होती है उसी का खण्डन किया जाता है। इस विचार-शक्ति और निष्पक्षताकी स्वामीजी प्रशसा करते थे। स्वामीजी की विद्वत्ता का भी ठाकुर माहव पर वडा प्रभाव पडा और वे उनके भक्त वन गये थे।

मुन्शी फैज अली (किशनगढ़)

स्वामीजी जयपुर से अजमेर होते अप्रैल १८९१ ई० को आवू पर्वत पहुचे। वहा स्वामीजी नक्की झील के ऊपर स्थित चम्पा गुफा मे ठहरे हुए साधनारत थे।' उदार हृदयीमुन्शी फैज अली उस समय किशनगढ़ स्टेट की

ओर से आवू मे पोलिटिकल एजेंट के पास वकील थे। वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने पर स्वामीजी को कष्ट मे देखकर मुन्शीजी द्वारा सेवा के लिए बार-बार अनुनय-विनय करने पर एक दिन स्वामीजी ने उन्हे गुफा द्वार पर किवाड (दरवाजा) लगवाने की आज्ञा प्रदान की। इस पर मुन्शीजी ने निवेदन किया कि किशनगढ कोठी मे वे अकेले रह रहे हैं तथा वहा स्वामीजी के निवास हेतु उपयुक्त स्थान एव सुविधाए उपलब्ध हैं। मुन्शी फैज अली के आत्मिक आग्रह को स्वामीजी टाल न सके तथा किशनगढ कोठी मे रहने लगे। मुन्शी फैज अली ने खेतडी के राजा अजीतसिंह के दिवान मुन्शी जगमोहनलाल को स्वामीजी से मिलाया। स्वामीजी के परम सहयोगी भक्त राजा अजीतसिंह को जगमोहनलाल के माध्यम से मिलाने का श्रेय भी मुन्शी फैज अली को ही है।

मुन्शी जगमोहनलालजी (खेतड़ी)

मुन्शी जगमोहनलालजी खेतडी के प्रसिद्ध स्वर्गीय राजा साहव श्री अजीतसिंहजी वहादुर के कामदार मुन्शी हरिवख्शजी के पुत्र थे। सवत १९२३ मे उनका जन्म हुआ था। अपनी अवस्था के १७वें वर्ष तक वे जयपुर मे रहे और विद्याध्ययन किया। सवत १९४१ मे पिता का देहान्त हो जाने के कारण श्री राजा अजीतसिंहजी साहब की सेवा मे उपस्थित हुए। राजा साहव ने शिक्षा दिलाकर सव तरह से उन्हे अपनी सेवा के उपयुक्त बनाया और उनसे अपनी राजकीय सेवायें ली। विभिन्न पदो पर कार्य करने के अनन्तर राजा साहव ने उन्हे अपने महकमा मुख्तियारी (राज सभा) के वैदेशिक विभाग का सदस्य वना दिया था। राजा साहव के स्वर्गवास के पश्चात् सन् १९०१ मे मुन्शीजी को खेतडी से अलग होने के लिए विवश होना पडा। खेतडी से अलग होने के पीछे प्राय. २॥ वर्ष वे खेतडी के प्रतिष्ठित प्रजाजन सेठ दुलीचदजी ककरानिया के आतिथ्य मे कलकत्ते रहे। इस अवधि मे उन्होंने सेठजी के साथ श्रद्धापूर्वक तीर्थयात्रा की और उसका वृत्तात पुस्तकाकार लिखकर प्रकाशित किया। तीर्थों के सम्बन्ध मे वह अच्छी पुस्तक है। सन् १९०३ मे अलवर-नरेश ने मुन्शीजी की नियुक्ति अपने यहा की। वहा क्रमश उन्होने डिपार्टमेटल सेक्रेटरी, जुडिशियल सेक्रेटरी, प्राइवेट सेक्रेटरी, स्टेट सेक्रटरी और महकमा आलिया हजूरी के जनरल सुपरिटेंडेंट इत्यादि पदो पर रहकर बडी दक्षता से काम किया। सन् १९१६ मे श्रीमान अलवरेन्द्र ने इतिहास कार्यालय की स्थापना कर मुन्शीजी को उसका अध्यक्ष वनाया सन् १९०५ मे अलवरेन्द्र ने "ताजीम" और सन् १९१८ मे "राज्य-रत्न" की पदवी का सम्मान प्रदान किया। हिन्दी, अग्रेजी, उर्दू, फारसी और सस्कृत के अतिरिक्त और भी कई एक प्रान्तीय भाषाए मुन्शीजी जानते थे। राज-



राजस्थानी भक्तों के साथ स्वामीजी का दुर्लभ चित्र (1891)



राजा अजीतसिंह—खेतडी महाराज
(स्वामीजी के प्रधान सहायक स्तम्भ)



महाराजा मगलसिह (स्वामीजी के प्रथम राजस्थानी
राजा जो भक्त वने)



प० सूर्यनारायण (जयपुर)
स्वामीजी से धर्मचर्चा की



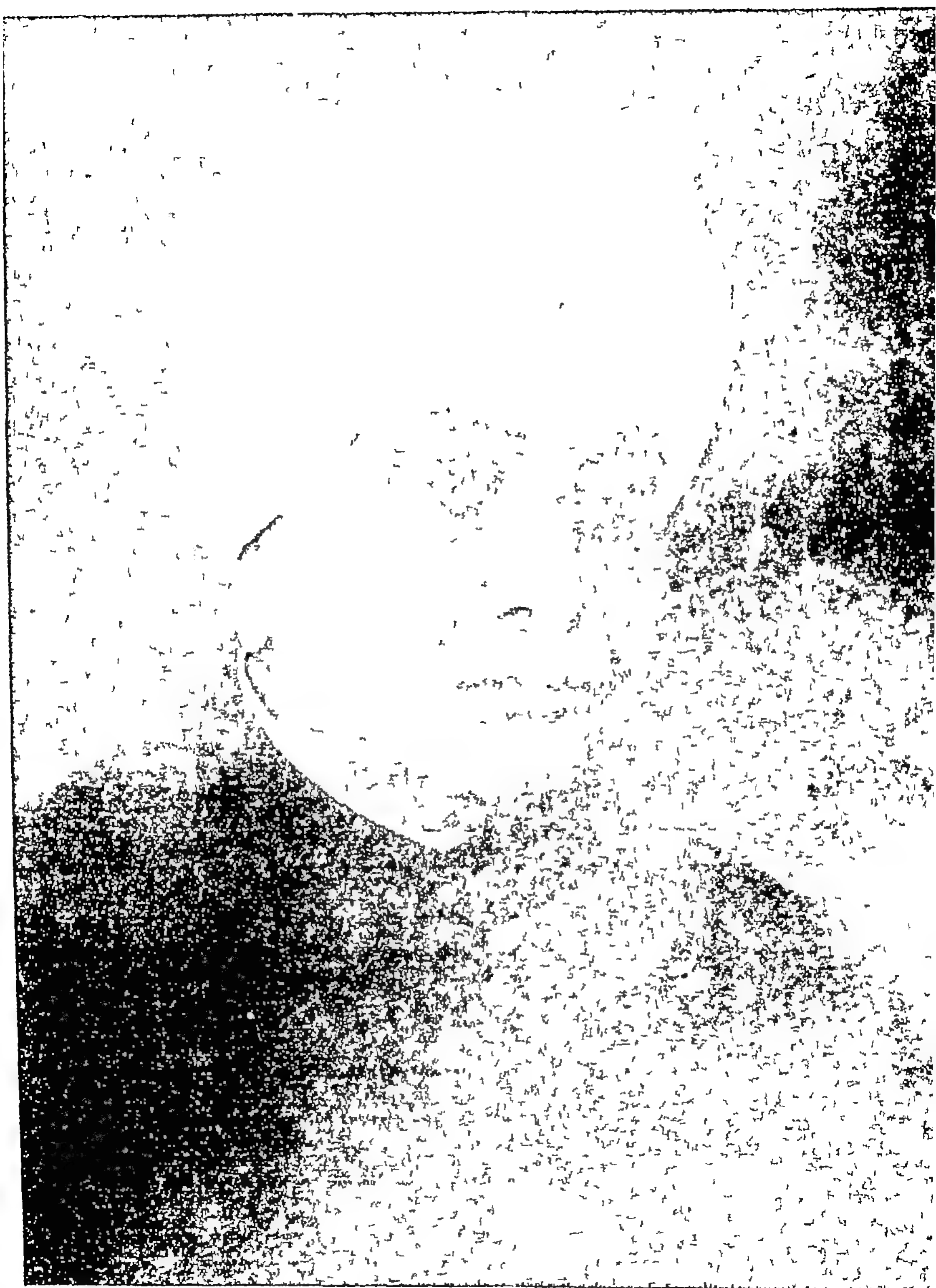
राव ससारचन्द्र सेन (प्रधानमन्त्री जयपुर)
स्वामीजी का समादर किया



ठाकुर भूरसिंह शेखावत (मलसीसर)
स्वामीजी के अनुरक्त भक्त



ठाकुर चतुरसिंह (मलसीसर) स्वामीजी और
अखण्डानन्द जी के भक्त



हरविलास शारदा (अजमेर) शारदा एक्ट के जनक

पूताने की राजनीति मे वे पूर्ण दक्ष थे। 'तीर्थ-यात्रा' और 'राजधर्म' नामक प्रकाशित पुस्तको के सिवाय 'हित की बात' और 'ब्रिटिश साम्राज्य मे देशी राज्यो की स्थिति' तथा 'सूर्यवशी नरेशो के मुकुटानुसधान के दौरे का विवरण' आदि मुन्शीजी की अप्रकाशित रचनाए हैं। उर्दू, हिन्दी और सस्कृत मे उनकी बहुत-सी फुटकर कविताए हैं। अलवर के इतिहास का बहुत-सा भाग मुन्शीजी के तत्वावधान मे लिखा जा चुका था। अन्त मे वृद्धावस्था की असमर्थता के कारण अलवरेन्द्र ने जीवनभर के लिए उन्हे एक ग्राम दे दिया था। सन् १९२१ मे मुन्शीजी का देहान्त हुआ।

खेतड़ी के राजपंडित नारायणदासजी शास्त्री

पडित नारायणदास का जन्म सन् १९४५ ई० (स० १९०२ विक्रमाब्द) मार्गशीर्ष कृष्णा ८ को अलवर राज्य के 'गाजी का थाना' नामक गाव मे हुआ था और काशी मे उन्होने पहले प० गोविन्द शास्त्री से और पीछे महामहोपाध्याय प० शिवकुमार शास्त्री से शिक्षा पायी। सन् १८८३ (स० १९४२) मे राजा अजीत-सिंहजी बहादुर की गुण-ग्राहकता से पडितजी का खेतडी मे आगमन हुआ। व्याकरण पर आपका असाधारण अधिकार था। खेतडी की राजकीय सस्कृत पाठशाला मे विद्यार्थियो को आप व्याकरण की शिक्षा देते थे। बाद मे कई वर्षों पडितजी फतहपुर मे रायबहादुर सेठ रामप्रतापजी चमडिया द्वारा स्थापित 'शेखावाटी सस्कृत महाविद्यालय' मे अध्यापन करते रहे। प्रथम राजस्थान ब्राह्मण सम्मेलन के आप सभापति बनाये गये थे। श्रावण महीने मे (स० १९८१) सन् १९२४ मे उनका देहावसान हो गया।

ठाकुर भूरसिंहजी शेखावत (मलसीसर)

राजश्री ठा० भूरसिंहजी शेखावत जयपुर के ठिकाने मलसीसर के अधिपति थे। सवत् १९१९ (सन् १८६२ ई०) मे उनका जन्म हुआ था। बाल्यावस्था से ही उन्हे विद्या और विद्वानो से प्रेम था। सत्सङ्ग ने उन्हे मद्यपान का विरोधी और एक पत्नीव्रती बना दिया था। अतएव ३६ वर्ष की अवस्था मे पत्नी का देहात हो जाने पर भी उन्होने दूसरा विवाह नही किया। बहुत वर्षों तक वे जयपुर स्टेट कौंसिल के मेम्बर रहे। मेम्बरी से अवकाश ग्रहण करने के बाद भी उन्होंने जयपुरस्थ अपने मलसीसर भवन मे ही अवस्थान किया। जयपुर के पण्डितो से ही नही, वल्कि अपने समय के राजपूताने के प्राय सभी विद्वानो और कवियो से उनका परिचय एव प्रेम रहा। इतिहास-साहित्य के ठाकुर साहब विशेष प्रेमी थे। "विविध-सग्रह", "महाराणा यश प्रकाश" और "श्लोक-सग्रह" आदि अपनी पुस्तको के कारण वे साहित्य-क्षेत्र मे प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। इन पक्तियो के

लेखक को शेखावतो के इतिहास की अपनी सग्रह की हुई सामग्री १६१४ ई० मे देने की कृपा की थी। वे साधु-महात्माओ के सत्सग का भी लाभ उठाते रहते थे। सन् १६३२ ई० मे ठाकुर साहब का देहान्त हुआ। वे स्वामीजी के भक्तो मे प्रमुख थे। स्वामीजी की राजस्थान की तीनो यात्राओ मे ठाकुर साहब ने दर्शन-लाभ कर स्वामीजी के वचनामृत का भी लाभ उठाया।

पंडित शंकरलाल शर्मा (खेतड़ी)

पडित शकरलाल शर्मा का जन्म श्रावण शुक्ला, ५ रविवार, सवत् १६२१ वि० (सन् १८६४) को मेरठ मे हुआ था। उनके पूर्वज जयपुर राज्यान्तर्गत 'विहार' नामक ग्राम के निवासी थे। पडित शकरलाल के पितामह विहार से मेरठ छावनी सदर बाजार मे जा बसे थे। पडितजी के पिता पडित हजारीलाल शर्मा पजाब के जालन्धर जिले मे स्कूल इन्सपेक्टर थे। प० शकरलाल के जन्म से ४ मास पूर्व ही उनका परलोकवास हो गया था। प० शकरलाल का पालन-पोषण और शिक्षण उनके पितव्य प० चिरजीलाल के तत्वावधान मे हुआ। प० शकरलाल ने मेरठ हाई स्कूल मे एण्ट्रेन्स तक पढकर प्रयाग के म्योर सेण्ट्रल कालेज मे शिक्षा पायी। पश्चात् कार्य क्षेत्र मे प्रविष्ट हुए। राजा अजीतसिहजी बहादुर के स्वर्ग-वास के कुछ दिनो बाद ही प० शकरलाल ने खेतडी से पृथक् हो अलवर राज्य का आश्रय ग्रहण किया। बहुत वर्षों तक अलवर की ओर से मेयो कालेज मे मोतमिद रहने के बाद आपने अवकाश ले लिया है।

पडित सुन्दरलाल झा (खेतड़ी)

पडित सुन्दरलाल झा अपने समय के श्रेष्ठतम वैदिक रहे हैं। आप काशी (बनारस) के तत्कालीन वेद-विद् घाटियाजी की शिष्य परम्परा मे प्रतिभाशाली स्नातक थे। गुणग्राही राजा अजीतसिह के समय मे खेतडी सस्कृत विद्यालय मे व्याकरण की गद्दी पर व्याकरण केसरी पण्डित नारायणदत्तजी वेद की— गद्दी पर प० सुन्दरलालजी झा को बैठाया। खेतडी और शेखावाटी जनपद के शतशः विद्यार्थियो को अपना शिष्य बनाकर आद्योपान्त सहिता अध्ययन करवाया। पण्डितजी के सहस्रो शिष्यो ने वेद अध्ययन मे निपुणता प्राप्त कर यथेष्ट यश और धन उपार्जित किया।

अलवर निवासी भक्तो मे मौलवी साहब (राजकीय पाठशाला मे अध्यापक) डा० गुरुचरण लश्कर (अलवर के राजकीय चिकित्सालय मे चिकित्सक के पद पर आसीन), प० शम्भुनाथ इन्जीनियर, जयपुर के प० सूर्यनारायण (वेदान्ती), आबू के वक्सीनेटर गुहा (बगाली सज्जन), किशनगढ के वकील फैज अली, खेतडी के प० सुन्दरलाल झा, एव ठा० चतरसिहजी, अलसीसर निवासी प्रगति स्वामी-

जी के भक्तो मे प्रमुख थे ।

ठाकुर चन्द्रसिंह जी (अलसीसर)

खेतडी चीफशिप (Chief ship) के सस्थापक भोपालसिंहजी के भाई पहाडसिंहजी के द्वितीय पुत्र समर्थसिंह अलसीसर (शेखावाटी जनपद) के पुत्र कुशालसिंह थे और कुशालसिंह के विशालसिंह। विशालसिंह के तीन पुत्र हुए—(१) छत्तूसिंह (२) बनेसिंह (३) गणपतिसिंह। छत्तूसिंह के पुत्र स्वामीजी के प्रधान सहायक स्तम्भ राजा अजीतसिंह थे जो खेतडी के राजा फतेहसिंह के (दत्तक पुत्र) गोद बैठ गये और उन्होने अपना हिस्सा अपने चाचाओ मे बाट दिया। गणपतिसिंह के पुत्र ठाकुर चन्द्रसिंह का अपने चचेरे भाई राजा अजीतसिंह से विशेष प्रेम था। ठा० चन्द्रसिंह बन्दूक का अचूक निशाना लगाने के लिए राजपूताना मे प्रसिद्ध थे। अलसीसर मे रहते हुए भी खेतडी प्राय आना-जाना बना रहने से स्वामीजी के सत्सग का लाभ उठाया। जब कभी स्वामीजी खेतडी आते ठा० चन्द्रसिंह उनके दर्शनार्थ खेतडी पहुच जाते थे ।

बाल-विवाह विरोधी—शारदा एक्ट के जनक—हरविलास शारदा (अजमेर)

हरविलास शारदा का जन्म ३ जून, १८६७ को हुआ। १८८८ मे कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी ए. की डिग्री हासिल कर १८८९ मे गवर्नमेट कालेज, अजमेर मे अध्यापक नियुक्त हुए .

1889-91 Was elected member of the Royal Asiatic Society of Great Britian & Ireland, Fellow of the Royal Society of Literature, Great Britain and Ireland, Fellow of the] Royal Statistical Society of London, Fellow of the Teachers' Guild of Great Britain and Ireland Member of the Statistical Association of Boston, U. S A , Associate of the Royal Archaelogical Institute of Great Britain and Ireland.

१९०८ से १९१२ तक विभिन्न न्यायालयो मे जज के पद पर आसीन हुए। १९२४ मे सेन्ट्रल लेजिसलेटिव असेम्बली के अजमेर-मेरवाडा से सदस्य चुने गये और १९२७ और १९३० ई० मे फिर इसके सदस्य चुने गये। अत मे १९२५-२६ मे जोधपुर के हाई कोर्ट मे वरिष्ठ न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति हुई। दयानन्द के गुरू स्वामी विरजानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र, स्वामी दयानन्द

का जीवन चरित्र, 'महाराणा हमीर', 'महाराणा सागा', 'महाराणा कुम्भा' आदि सुप्रसिद्ध साहित्यिक कृतियो के रचयिता के रूप मे बडी ख्याति अर्जित की। समाज सुधार के क्षेत्र मे बाल विवाह का विरोध किया। परिणाम स्वरूप सरकार को बाल विवाह विरोधी एक्ट पास करना पडा जो शारदा एक्ट के नाम से जाना जाता है। स्वामी विवेकानन्द का इन्होने दर्शन लाभ किया और उनसे बहुत प्रभावित हुए।

मनीषी समर्थदानजी

मनीषी समर्थदानजी का जन्म शेखावाटी (जयपुर राज्य) के सीकर सस्थान के नेछवा ग्राम मे सिढायच-चारण-कुल मे सवत् १९१४-१५ के लगभग हुआ था। आरभिक शिक्षा उर्दू की पाने के बाद आर्यसमाज के सस्थापक श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती के सग मे रहे और हिन्दी एव सस्कृत का ज्ञान अर्जित किया। मुन्शी की जगह इसी समय उन्होने अपनी उपाधि मनीषी बतायी थी। स्वामीजी के वैदिक प्रेस के प्रबधक रूप मे बहुत समय तक मनीषीजी ने कार्य किया था। स्वामीजी के वेदभाष्य के पहले सस्करण मे उनका नाम छपा हुआ है। स्वामीजी के देहावसान के अनतर अजमेर को उन्होंने अपना आवास स्थान बना लिया और वहा राजस्थान यत्रालय की स्थापना की। अपने प्रेस से उन्होने 'राजस्थान-समाचार' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला था, जिसको आगे चलकर उन्होने दैनिक कर देने का साहस किया था। राजपूताने मे 'राजस्थान-समाचार' सार्वजनिक उच्च भावनाओ का पहला प्रसारक था। राजपूताने के कितने ही नरेश और सामन्त-सरदार मनीषीजी का बडा समादर करते थे। तत्सामयिक काश्मीर नरेश ने उन्हे अपना "पोलपात" बनाकर ताजीम के सम्मान युक्त पैर के लिए सोने का कडा प्रदान किया था। मनीषीजी ने कितनी ही पुस्तकें लिखी और कितनी ही प्रकाशित की थी। अन्त मे अपनी वृद्धावस्था मे पहुचकर उन्होने वैद्यक-विद्या पढी और उसी को अपने जीवन निर्वाह का साधन बनाया। मनीषीजी मस्त, बेलाग और लोकख्याति से अलग रहनेवाले साहित्य-सेवी थे। अपनी प्रतिकूल परिस्थिति से युद्ध करते-करते उन्होंने सवत् १९७१ मे परलोकवास किया।

सेठ दुलीचन्द ककरानियां (चिड़ावा)

सेठ दुलीचन्दजी ककरानिया मेसर्स हरसुखदास दुलीचन्द—फर्म के मालिक, चिडावा (इलाका खेतडी) निवासी, भारतवर्ष मे अपनी अमीरी और शौकीनी के लिए एक प्रसिद्ध व्यक्ति हो गये हैं। कलकत्ते के दर्शनाकाक्षी देशी और विदेशी यात्रियो के लिए उनका दमदम रोड स्थित "ओरकिड डेल" नामक विलास उद्यान (बगीचा) एक विशेष स्थान बना हुआ था। अपने समय के कलकत्ते के मारवाडी

समाज के प्रधान पुरुषो मे सेठजी की गणना थी। श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय आदि सस्थाओ की स्थापना और सचालन मे आपका भी सहयोग था। अन्त मे भाग्यवश आर्थिक स्थिति बिगड गयी थी। सवत् १९८६ मे काशी मे परलोकवासी हुए। जन्म सवत् १९१७।

राजा अजीतसिंह (खेतड़ी)

सवत् १९२७ (सन् १८७०) विक्रमाब्द—अपनी ९ वर्ष की अवस्था मे खेतडी की राजगद्दी पर बैठने के अनन्तर सन् १८८० (सवत् १९३७ वि) मे शिक्षा एव अधिकार सम्पन्न होकर राजा अजीतसिंह बहादुर ने शासन भार ग्रहण किया था। इसके पश्चात् उन्होंने अपने विशिष्टि गुणो का परिचय दिया और वे अपने समय (सन् १८८० से १९०० ई) तक के राजपूताने मे एक न्याय-परायण, धर्मज्ञ, उदार, प्रजाहितसाधक, शिक्षित, शिक्षा प्रचारक, सुधारप्रिय, कवितानुरागी और गुणग्राही आदर्श शासक समझे गये। प्राचीनता के अनुयायी होते हुए राजा साहब नवीनता के मित्र थे। स्वामी विवेकानन्दजी को श्रीमान् ने उस समय आश्रय एव सहायता दी थी, जिस समय कि उनकी विशेष ख्याति का डका नही बजा था। स्वय स्वामीजी ने यह मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है।

मुन्शी जगमोहन लाल को लिखित पत्र

राजा अजीत सिंह के व्यक्तित्व पर स्वामीजी का मुन्शी जगमोहन लाल को लिखित पत्र स्पष्ट परिचायक है, कि वे राजाजी से कितना प्रभावित थे। स्वामीजी के शब्दों मे "उनका (अजीतसिंहजी का) और मेरा जन्म महान कार्यों को करने के लिए हुआ है। हम एक-दूसरे के पूरक हैं। आगे लिखा है कि "अजीतसिंह और मै दो ऐसी आत्माएं हैं जो मानव समाज के कल्याण के लिए एक महान कार्य करने मे परस्पर सहयोग देने के लिए जन्मे हैं। यह पूर्व जन्म का सम्बन्ध है। आगे लिखा है, "यह विश्वास रखो कि अजीतसिंह महान कार्यों को करने के लिए ही जन्मे हैं।"

मूर्री
११ अक्टूबर १८९७

प्रिय जगमोहन लाल,

मुझे तुम्हारे व राजा साहब के सभी पत्र जो तुमने पुन प्रेषित (Redirect) किये थे, ठीक से प्राप्त हुए। मैं इसी सप्ताह रावलपिण्डी जाऊगा। वहा से जम्मू और फिर कराची जाऊगा। और तब कराची से काठियावाड और कच्छ होता हुआ राजपूताना पहुचूगा। खेतडी पहुचने मे मुझ एक मास लग जायेगा।

कलकत्ते का अभिनन्दन पत्र समय पर तैयार हो जायेगा। सेठ ने वम्बई के अभिनन्दन पत्र के लिए वचन दे दिया है—तुम उससे मिलना या उसे लिखना कि वह इस कार्य को सम्पन्न कर दे। मद्रास वाला अभिनन्दन पत्र भी तैयार हो जायेगा। स्वामी ब्रह्मानन्दजी को मठ के पते पर लिखो कि वे कलकत्ते से इस अभिनन्दन पत्र की एक प्रतिलिपि तुम्हे वम्वई के पते पर भेज दें। आलासिगा को भी समय पर तैयार रहने के लिए लिखो।

मुझे यह कहना आवश्यक नही है कि राजाजी की सफलता पर मुझे कितना गर्व है। मैंने उन्हें वर्षों पूर्व ही वता दिया था कि उनका और मेरा जन्म महान कार्यों को करने के लिए हुआ है और यह तो उसका श्रीगणेश मात्र है। उन पर और उनके परिवार पर प्रभु की पूर्ण कृपा रहे।

कुछ विशेष व्यक्तियो का जन्म किसी विशेष काल मे सामूहिक रूप से कुछ विशेष कार्य करने के लिए होता है। अजीतसिह और मैं दो ऐसी आत्मायें हैं जो मानव समाज के कल्याण के लिए, एक महान कार्य करने मे परस्पर सहयोग देने के लिए जन्मे हैं। हम एक-दूसरे को प्रेम किये बिना नही रह सकते। यह पूर्व जन्म का सम्वन्ध है। हम एक दूसरे के पूरक हैं। वे अपनी शक्तियो के सबध मे सशयशील थे। अब उन्हें अपने आप मे विश्वास करना होगा। प्रभु को धन्यवाद दें, इससे महान् कार्य होगे। फौलाद की तरह सत्य पर अटल रहो, कचन की तरह जैसे तुम हो सुन्दर बने रहो, प्रत्येक कार्य के लिए सन्नद्ध रहो, और सर्वोपरि यह विश्वास रखो कि अजीतसिह महान् कार्यो को करने के लिए ही जन्मे हैं। यदि वह त्रुटिया भी करें तो उनके प्रति अपने विश्वास को न खोना। तुम्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि राजा सन्यासी नही बनेंगे। अपने नेना मे विश्वास होना प्रथम कर्त्तव्य है। यह विश्वास रखो कि राजा अजीतसिह हमारी जाति के एक महान नेता बनेंगे ही। उनकी त्रुटिया होते हुए भी उस व्यक्ति मे क्या है यह तुम अभी तक नही जानते हो। प्रभु ने मुझे यह दिखा दिया है, और शनैः-शनै. तुम भी जान जाओगे।

साशीर्वाद
विवेकानन्द

पुनश्च · जब तुम वम्वई के लिए रवाना होओ, तो मैं जिन तीन सन्यासियो को जयपुर भेज रहा हूं, उनकी देखभाल के लिए किसी को नियुक्त कर देना। उनके भोजन एवं रहने के लिए अच्छे स्थान का प्रवन्ध कर देना। वे मेरे वहा आने तक वही रहेगे। वे अच्छे व्यक्ति है—अधिक पढे-लिखे

न होते हुए भी सरल हैं। वे मेरे हैं—और उनमे से एक मेरे गुरु भाई हैं। यदि वे चाहे तो उन्हे खेतडी ले जाना। मैं भी वहा शीघ्र ही पहुचूगा। मैं अब शान्ति से यात्रा कर रहा हू। मैं इस वर्ष अधिक भाषण नही दूगा। मुझे अब इस कोलाहल और व्यर्थ की बातो मे विश्वास नही है जिनसे कोई व्यावहारिक लाभ नही होता है। मुझे अब कलकत्ता मे अपनी सस्था के निर्माण मे शान्त प्रयास करना चाहिए। उसी निमित्त मैं शान्तिपूर्वक विभिन्न केन्द्रो मे धन सग्रह के लिए घूम रहा हू।

तुम्हारा
वि०

राजा अजीतसिहजी बहादुर के सबध उनके गुणो की प्रशशा करते हुए स्वामी अखण्डानन्दजी ने एक घटना का विवरण इस प्रकार दिया है।

"एक वर्ष मे जितने त्योहार आते हैं, खेतडी मे रहकर उन सबको मैंने देखा। त्योहार मनाने मे निस्सदेह राजपूताना बडा उत्साह रखता है। एक दिन राजाजी की वर्षगाठ का महोत्सव भी मुझे देखने का अवसर मिला। उस दिन जन्मतिथि के उपलक्ष मे देव-पूजा, ब्राह्मण-भोजन आदि आवश्यक कृत्यो के अनन्तर दरबार होता है और राज्य के कर्मचारी तथा, अन्य प्रजा के लोग नजर देते हैं। मैं यद्यपि दरबार मे सम्मिलित नही हुआ, क्योकि, सन्यासी के लिए यह आवश्यक नही था, तथापि लोगो के आग्रह से ऊपर बराडे मे ऐसे स्थान पर बैठ गया कि जहा से मुझे दरबार का दृश्य अच्छी तरह दिखलाई दे रहा। दरबार के बीच मे राजाजी खूब चमकीली पोशाक मे विराजमान थे। उनके दाहिने और बाए पार्श्व मे यथाधिकार राज के सरदार और उमराव बैठे हुए थे। इनके सिवाय हाकिम अमला और प्रजा के गण्यमान्य सज्जनो से दरबार पूर्ण था। दीवानखाने से बाहर आसा-सोटाधारी चोबदार पहरे पर डटे हुए थे। दरबार के बीच एक अहलकार सूची लेकर खडा हुआ और जिसका नाम उसने पुकारा, वही मुहर या रुपये राजाजी की नजर करके यथास्थान बैठ गया। इसी समय एक घटना ऐसी देखने मे आयी कि, जिससे मेरा हृदय विदीर्ण हो गया। मैंने देखा कि कुछ किसान जिनके शरीर कठिन परिश्रम से पककर श्याम हो रहे थे, झुण्ड-के-झुण्ड बाहर दूर खडे हुए है। अपने राजा के दर्शन की लालसा से वे नजर करने के लिए दूर-दूर से आये थे। उनमे से जो लोग उत्साहपूर्वक आगे बढकर दरबार की शोभा देखना चाहते थे, वे बुरी तरह चोबदारो द्वारा प्रताडित कर दिये जाते थे—भेड-बकरियो की तरह भगा दिये जाते थे। मैंने वहा के आदमी से पूछा कि, 'क्यो भाई, यह क्या बात है?' उसने मुझसे कहा कि "महाराज, बात क्या? यही राज के आधार अन्नदाता किसान हैं। किन्तु अभागो की यह दशा है कि राजा के दरबार को देखने का भी इन्हे मौका नही दिया जाता। ये राजाजी को नजर देने के लिए

आये हैं, परन्तु राज-दर्शन इनके भाग्य मे कहा ? शाम को राजा का मुसाहिव बैठकर इनसे नजर के नाम पर रुपये वसूल कर लेगा और ये गरीव रुपयो से राज के खजाने को भरकर अपने घरो को चले जायेंगे। जो कर्मचारी हैं, एक-दो मुहर देकर सम्मान-भाजन बनते हैं किन्तु ये गरीव कठिन परिश्रम से अन्नोत्पादन करके राज को देते हैं, प्रजा को देते हैं और ऊपर से नजर देने के समय ऐसा सम्मान पाते हैं।"

किसानो के इस अपमान मे मुझे राज-लक्ष्मी का अपमान दिखलाई दिया और मेरा हृदय जल उठा। दरबार विसर्जित हो गया, परन्तु मैं दिनभर व्याकुल रहा। सायकाल जब राजा साहव अपने खास सरदारो के साथ बैठे, तब उन्होंने मुझसे पूछा, "कहिये महाराज, दरवार का आनन्द कैसा रहा ?" आनद का नाम सुनते ही मेरे चित्त मे क्षोभ की लहर फिर जाग उठी। मैंने कहा—"आनन्द ? कैसा आनन्द ? जिस समय आपका दरवार हो रहा था, उस समय मैं सन्ताप से जल रहा था, मानो मेरी छाती पर एक-एक पत्थर गिर रहा था।" यह सुनते ही सब आश्चर्यचकित हो मेरी ओर ताकने लगे। राजाजी ने नम्रता से पूछा—"यह क्यो महाराज ?" इस पर मैंने दरवार के समय गरीवो के साथ दुर्व्यवहार होने का वृत्तात कह सुनाया। उस कष्ट-कथा को कहते-कहते मेरा कण्ठावरोध हो गया, आखो से अश्रुधारा वह चली। यह देखकर सहृदय राजाजी की भी आखें गीली हो गयी। उनके हृदय पर विलक्षण विजली-सी दौड गयी। वडे गभीर स्वर मे धीरता के साथ उन्होंने कहा—"गगासहाय, इस बात को याददाश्त के लिए लिख लो कि, अगले दरबार मे किसी को नही रोका जाय और सब की नजर मैं स्वय लूगा।"

इसके वर्षभर वाद वर्षगाठ का दरबार फिर सदा की भाँति हुआ। उसमे स्वामी विवेकानन्दजी भी उपस्थित थे। राजा अजीतसिहजी ने अपने वचन को स्मरण रखा और प्रजा के छोटे-वडे—सभी लोगो ने दरबार मे सम्मिलित होकर स्वय नजर देते हुए अपनी भक्ति प्रदर्शित की। वह दृश्य चिरस्मरणीय था, वह भाव स्वर्गीय था और वह समय अपूर्व मुखर था।

राजा अजीतसिंह की मृत्यु पर

हिन्दी साहित्य संसार के प्रसिद्ध बाबू बालमुकुन्दजी गुप्त ने अपने सपादित 'भारत मित्र' मे स्वर्गीय राजा बहादुर का चित्र प्रकाशित करने के साथ ही लिखा था

"गत ता० १८ जनवरी, १९०१ ई० को शेखावत-वशज राजा अजितसिंह बहादुर खेतडी नरेश सिकन्दरे की इमारत से गिरकर परलोकगामी हुए। सिकन्दरा आगरे मे है। वह अकबर वादशाह की कबर की इमारत है। उसी पर चढकर राजा दूर-दूर की चीजो को देख रहे थे। एक मीनार से पाव फिसला। नीचे गिरे

और तुरन्त प्राण विसर्जन हुआ। जिन अकबर बादशाह की वह कबर है उन्ही के पिता हुमायू बादशाह ने 'दीन पनाह' की सीढियो से गिरकर प्राण दिया था। उसके बाद एक नरेश के गिरकर मरने की घटना यही सुनने मे आयी।

"जयपुर नरेश स्वर्गवासी महाराज रामसिह को राजा से बडा स्नेह था। उन्होने जयपुर बुलाकर राजा को शिक्षा दिलाई। राजा अजीतसिह सस्कृत, हिन्दी और अग्रेजी मे अच्छी योग्यता रखते थे। वेदान्त के बडे ही प्रेमी थे। सगीत मे भी अच्छा दखल था। उनका राज्य छोटा होने पर भी वह अपने अच्छे गुणो से वडे-वडे नरेशो के प्रियपात्र बने थे। जोधपुर नरेश महाराज जसवन्तसिह आपका वडा आदर करते थे। जम्मू और काश्मीर नरेश से भी मेल था। महारानी विक्टोरिया की हीरक जुबिली पर आप विलायत जाकर जर्मनी के सम्राट से मित्रता कर आये थे। दु ख की वात है कि जयपुर के गत दीवान बावू कान्तिचन्द्र मुखर्जी दूसरे योग्य रईसो पर जिस प्रकार प्रसन्न रह सकते थे वैसे ही इन पर भी न रहते थे। इसी से विलायत से लौटने के बाद राजा अजितसिह को कुछ बिरादरी के झगडे मे फसना पडा था। पर अन्त मे उन्ही की जय हुई। खेतडी नरेश ने दूसरे राजा-महाराजो की भाति वहुत से विवाह नही किये। केवल एक ही किया। उनको ८ वर्ष का पुत्र और दो कन्याए है।

"राजा की अचानक मृत्यु हुई जिससे उनकी सारी प्रजा शोकाकुल है। खेतडी नरेश दो बार कलकत्ते पधारे थे। एक बार सवत् १९४७ (सन १८९०) मे और दूसरी बार सवत् १९५३ (सन् १८९७) मे। यहा उनकी बडी खातिरदारी हुई थी।

"कलकत्ते के मारवाडियो को खेतडी नरेश के मरने का बडा शोक हुआ। उनकी प्रजा मे से बहुत लोगो ने मुण्डन कराया। २० जनवरी, १९०१ को मारवाडी एसोसियेशन के वार्षिकोत्सव मे खेतडी नरेश की प्रजा की राजभक्ति का हमने अपूर्व दृश्य देखा। बा० शिवप्रसाद झुझुनूवाला (रायबहादुर) मुण्डन कराये हुए थे, सेठ दुलीचन्द ककरानिया भी मुण्डन कराये हुए थे तथा उन्होंने एक ओजस्विनी वक्तृता द्वारा राजा के लिए बडा शोक प्रकट किया। जान पडता था राजा की अकाल मृत्यु के लिए लोगो का चित्त बडा ही व्यथित है।"

अन्त मे भारतमित्र सपादक ने यह लिखते हुए अपना लेख समाप्त किया है—"राजा अजितसिह की जो मूर्ति है, वर्तमान राजा-महाराजो मे ऐसी सुन्दर क्षत्रिय मूर्ति और दिखलाई नही देती। मानो ब्रह्मा ने रूप और क्षत्रियत्व लेकर यह मूर्ति वनायी थी।"

राजा अजीतसिह जी वहादुर की आकस्मिक मृत्यु के लिये जयपुरेन्द्र श्री महाराजाधिराज सवाई सर माधवसिह वहादुर ने भी शोक के साथ दु ख प्रकट करते हुए यह फरमाया था कि "मेरे राज्य का एक रत्न जाता रहा।" परन्तु

स्वार्थी लोगो की चालबाजियो से जो वैमनस्य की गांठे पड गयीं थी, वे राजा साहब के जीते जी नही खुली।

जो हो, बुरे कर्म करके कोई सुखी नही रह सकता। जिन स्वार्थलोलुप लोगो ने अपनी कल्पित बातो को आधार बनाकर जयपुरेन्द्र श्री० महाराजधिराज सवाई सर माधवसिंह बहादुर और राजा साहब के मनो मे वैमस्य उत्पन्न करने का पाप किया था, वे लोग भी सुखी नही रह सके और उन्होंने अपने कर्मों का फल मानसिक सन्ताप की अग्नि मे जलते हुए इसी जन्म मे पा लिया। अस्तु,

राजा अजीतसिंह बहादुर चले गये और उस लोक को चले गये, जहां किसी व्यक्ति की प्रसन्नता अथवा अप्रसन्नता कुछ बना या बिगाड नही सकती, परन्तु वे जो कीर्तिकर-कार्य कर गये हैं उनके कारण उनका नाम एक प्रजारजक, सुधार प्रिय, विद्या प्रेमी, गुण ग्राहक आदर्श नरेश के रूप मे चिरकाल तक स्मरण किया जाएगा।

"मूरित से कीरति बडी, बिना पख उड जाय,
सूरति कबहु न थिर रहे, कीरति कबहु न जाय।"

कीर्तिर्यस्य स जीवति।

राजा जयसिंह (खेतड़ी)

राजा अजीतसिंह की तीसरी सन्तान राजकुमार जयसिंह का जन्म सन् १८९२ (माघ शुक्ला ६ सवत १९४९) आगरा मे हुआ। स्वामीजी की मगल-कामना और आशीर्वाद से ही यह हुआ था। ३० जनवरी, १९०१ तदनुसार माघ शुक्ला ११, सवत् १९०४ बुधवार को गद्दी पर बैठे। उस समय ८ वर्ष की अवस्था ही थी। ११ जुलाई, १९०४ को मेयो कालेज (अजमेर) मे शिक्षा-प्राप्ति के लिए प्रविष्ट हुए। 'उसने कहा था' के अमर कहानीकार एव हिन्दी ससार के प्रसिद्ध विद्वान पडित चन्द्रधरजी शर्मा गुलेरी बी० ए० आपके अभिभावक और शिक्षक (गार्जियन ट्यूटर) थे। ३० मार्च सन् १९१० को जयपुर मे मृत्यु हो गई।

अपने बाल्यकाल मे ही राजा जयसिंह ने इच्छा व्यक्त की कि उनके स्व० पिता राजा अजीतसिंह की पुण्यस्मृति मे एक अस्पताल बनवाया जाय। तदनुसार १९०५ ई० मे "अजीत हास्पिटल" का निर्माण हुआ जो अब भी इस नाम से चल रहा है।

सन् १९०९ की बडे दिन की छुट्टियो मे जब वे खेतडी आये तब ही उनको राज्ययक्ष्मा रोग ने घेर लिया और ३ मार्च, १९१०ई०को जयपुर मे उनका देहान्त हुआ। गुलेरीजी ने उनके निधन पर 'सरस्वती' के तत्सामयिक मनस्वी सपादक आजार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को लिखा था —

"शरीर की गठन और गुणो के उपचय से यद्यपि वे हम लोगो से बढकर

होते जाते थे, तो भी सदा विनय से नम्र हुए रहते थे। कभी गुरुओ के सामने उन्होंने अग्रासन ग्रहण नही किया। हा, जाते-जाते यह अविनय कर गये कि हम लोगो को यहा पर तुषाग्नि मे अपने हृदय को पकाने को छोडा और स्वय अभय-अमर अशोक पद को चले गये।"

पडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने "सरस्वती" मे एक विस्तृत सपादकीय टिप्पणी लिखते हुए राजा जयसिहजी बहादुर के सबध मे लिखा था—"राजपूताना के राजाओ की पिछली पीढी और आगामी पीढी मे ऐसा होनहार और सद्गुणसम्पन्न युवक और कोई नही हुआ। उनके विनय, शील, विद्याभिनिवेश, सदा हसता हुआ मुख, देश-प्रेम और लोकोपकार के उच्च विचार, सभी का स्मरण इस अकाल मृत्यु की वेदना को और काल की कराल गति के अनुशोचन को कई गुना कर देता है। सस्कृत और हिन्दी की ओर उनका प्रेम बहुत था और दोनो का कितना ही उपकार उनके हाथो होता।

मेयो कालेजस्थ उनके सहपाठियो और मित्रो ने भी 'जयपुर हाउस" मे स्व० राजा जयसिह की स्मृति मे एक शिलालेख लगाया।

उनके उत्तराधिकारी राजा अमरसिहजी ने उनके दाह स्थान पर एक छतरी बनवाई जहा नियमित रूप से शिवपूजन होता है। पश्चात् खेतडी मे उनकी पुण्य-स्मृति मे एक विशाल भवन का निर्माण कराया जाकर उसमे "जयसिह हाई स्कूल" की प्रतिष्ठा की गई, जो अब हायर सैकेण्डरी स्कूल के रूप मे चालू है।

खेतडी के राजपरिवार के साथ पडित गुलेरीजी की घनिष्ठता निरन्तर बढती रही और उनके सबध प्राय निकटतम होते चले गये। यद्यपि वे १९०७ ई० मे जयपुर हाउस के मोतमिद पद पर प्रतिष्ठित हो गये थे फिर भी राजा जयसिह के प्रति उनका वही आत्मीय भाव बना रहा, यही नही, राजा अजीतसिह की दोनो पुत्रियो श्रीमती सूर्यकुमारी और श्रीमती चन्द्रकुमारी के साथ भी उनके पारिवारिक सबध यावज्जीवन बने रहे।

सन् १९१० ई० मे राजा जयसिह के निधन के बाद भी गुल्लेरीजी के प्रति उनकी इन दोनो बहिनो के श्रद्धा-भाव मे कमी नही हुई और वे भी सच्चे अर्थ मे उनके सुख-दु ख के साथी बने रहे। जब सन् १९१३ ई० मे खेतडी की ज्येष्ठा राजकुमारी और शाहपुरा की कुअरानी सूर्यकुमारी का असमय मे ही देहावसान हो गया तो गुलेरीजी ने उनकी स्मृति को अक्षुण्ण बनाने के सत्प्रयत्न मे अपनी प्रेरणा से उनके पति उमेदसिहजी द्वारा काशी नागरी प्रचारणी सभा के तत्वावधान मे "सूर्यकुमारी पुस्तकमाला" के प्रकाशन की व्यवस्था सम्पन्न करायी। इस पुस्तक-माला मे अनेक महत्त्वपूर्ण उपयोगी ग्रथ प्रकाशित हो चुके हैं।

(गुलेरी गरिमा ग्रन्थ—ले० प० झावरमल्ल शर्मा)

श्रीमती सूर्यकुमारी (राजा अजीतसिंह की ज्येष्ठा पुत्री)

बड़ी राजकुमारी श्रीमती सूर्यकुमारी का जन्म सन् १८८२ ई० (स० १९३९ भाद्र शुक्ला ४) को हुआ था। विवाह से पहले और पीछे तक भी अपनी प्रिय पुत्री को शिक्षिता बनाने की ओर राजा अजीतसिंहजी बहादुर ने विशेष लक्ष्य रक्खा। आनद मे हिन्दी की पूर्ण शिक्षा दिलाने के सिवाय सस्कृत, अग्रेजी और उर्दू भी पढायी। अग्रेजी भाषा सिखाने के लिए एक योरोपियन महिला मिस ड्राइवर शिक्षिका नियुक्त की गयी थी। डास-पेंटिग (नृत्य एव चित्र कला) की शिक्षा श्रीमती सूर्यकुमारी को विवाह के बाद मिस एटकिन्सन से दिलायी गयी थी। इसके अतिरिक्त राग-रागिनियो की पहचान तथा देशी सगीत हारमोनियम, सितार, मृदग इत्यादि का भी बहुत अच्छा अभ्यास कराया गया। सीना, बुनना तथा कसीदे के काम मे भी राजकुमारीजी ने निपुणता प्राप्त की थी। उनकी प्रकृति ही अध्ययनशील थी। वे सदा कुछ-न-कुछ सीखती ही रहती थी। उनका यह क्रम जीवनपर्यंत रहा। उस समय राजपूताने के राजघरानो मे अपनी पुत्रियो को इतनी शिक्षिता बनाना नयी बात थी। श्रीमती सूर्यकुमारी का विवाह सन् १८९४ ई० (सं० १९५१) मे शाहपुरा (राजपूताना) के राजाधिराज श्री उम्मेदसिंह के साथ हुआ। खेद है कि गुणवती सुशीला राजकुमारी श्रीमती सूर्यकुमारी ने उमर अधिक नही पायी। पिता और माता एव अन्त मे अपने एक मात्र स्नेहाधार सहोदर भाई के चिर वियोग का असहनीय दु:ख सहन करने के बाद वे क्षय-रोगाक्रान्त हो सन् १९१३ (श्रावण शुक्ला ७ सवत् १९७० वि० को दिवगत हो गईं।

श्रीमती सूर्यकुमारी का जीवन धर्म-भाव युक्त दया, उदारता और परोपकारमय था। हिन्दी के प्रति श्रीमती का कितना अनुराग था, यह जानने के लिए उनका हिन्दी पुस्तको का सग्रह पर्याप्त है जो शाहपुरा के राजमहल मे सुरक्षित हैं। वे हिन्दी लिखती भी सुन्दर थी। उनके बनाये हुए बहुत रजित चित्र (आइल पेंटिग) और दस्तकारी की चीजें उनकी कुशलता का परिचय दे रही हैं। पितृ-गृह मे स्वामी विवेकानन्द के उपदेशो को सुनने और पीछे उनके व्याख्यानो तथा लेखो को पढने के बाद श्रीमती सूर्यकुमारीजी की भक्ति अद्वैत वेदान्त पर जम गयी थी।

श्रीमती सूर्यकुमारी के स्मारक मे राजाधिराज श्री उम्मेदसिंह ने एक लाख रुपये उत्सर्ग किये थे। उन रुपयो के ब्याज की आमदनी मे से १७ हजार रुपये 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' को प्रदान कर आपने 'सूर्यकुमारी पुस्तकमाला' के प्रकाशन की व्यवस्था करायी। इस व्यवस्था के अनुसार 'सूर्यकुमारी पुस्तक माला' मे कई एक उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

इसके अतिरिक्त श्री राजाधिराज ने श्रीमती सूर्यकुमारी की स्मृति को चिर-

स्थायिनी वनाने के सदुद्देश्य से ३० हजार रुपये गुरु कुल विश्वविद्यालय कागडी (हरिद्वार) को 'सूर्यकुमारी हिन्दी गद्दी' के लिए और ५ हजार 'सूर्यकुमारी निधि' की स्थापना पूर्वक सूर्यकुमारी ग्रन्थावली के प्रकाशन प्रवन्ध के लिए दिये हैं और शाहपुरा के दरबार हाईस्कूल मे 'सूर्यकुमारी विज्ञान-भवन' की स्थापना की है, जो श्रीमती के जीवनकाल की प्रिय अभिलाषा थी।

श्रीमती चन्द्रकुमारी (राजा अजीतसिंह की कनिष्ठ पुत्री)

राजा अजीतसिंह की द्वितीय सन्तान श्रीमती चन्द्रकुमारी का जन्म सन् १८८८ (पौष शुक्ला १५ सवत् १९४५) को हुआ था। उनका लालन-पालन भी पिता-माता के सरक्षण मे वडे लाड-प्यार से हुआ। विशेषकर अपने जन्म के चतुर्थ वर्ष मे ही सहोदर राजकुमार जयसिंह का जन्म हो जाने से श्रीमती चन्द्रकुमारी वडी भाग्यशालिनी समझी गयी। उनका सबध राजा साहब ने स्वय देवलिया-प्रतापगढ के हिज हाईनेस महारावल सर रघुनाथसिंह के युवराज महाराजकुमार मानसिंह के साथ कर दिया था, किन्तु (परलोक गामी) हो जाने के कारण कन्या दान अपने हाथ से करने का वे सुयोग न पा सके। राजाजी के स्वर्गवास के वाद सवत १९५९ माघ कृष्णा ५ (सन् १९०२) को श्रीमती चन्द्रकुमारी का विवाह सम्पन्न हुआ।

श्री उम्मेदसिंह (शाहपुरा मेवाड़)

राजाधिराज श्री उम्मेदसिंह का जन्म सन् १८७७ ई (स १९३४ वि. मे हुआ। आपने मेयो कालेज अजमेर मे शिक्षा पायी है। उक्त कालेज के पुराने विद्यार्थी सघ के आप मत्री रहे हैं। अपने पिता के जीवनकाल मे आपने 'मुसाहब आला' की हैसियत से शासन कार्य का सचालन योग्यतापूर्वक किया सन् १८९७ ई० मे आपने श्री राजा अजीतसिंह बहादुर के साथ प्रथम बार विलायत यात्रा की थी। उनके ऊपर राजा का अत्यधिक स्नेह था। उनकी अस्वस्थावस्था मे भी प्राय वे साथ रहे। वे अपने पिता राजाधिराज सर नाहरसिंह के परलोक-वास के अनन्तर ता १० जुलाई सन् १९३२ (आषाढ शुक्ला ७, रविवार, सवत १९८९) को शाहपुरा की राजगद्दी पर वैठे। अपने राज्याभिषेक के समय प्राचीन पद्धति के अनुसार उन्होंने प्रजा एव धर्म का सरक्षण करने का सकल्प किया था। क्षत्रियो की उन्नति के उद्देश्य से सस्थापित क्षत्रिय महासभा के वे एक मुख्य स्तम्भ थे। उसके सभापति पद को भी वे सुशोभित कर चुके है। सगठन के प्रवल समर्थक और हिन्दू धर्म के वे एक माने हुए सरक्षक थे। उनके परलोकवासी पिता आर्य समाज के सस्थापक श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज के कृपापात्र प्रधान शिष्य थे। वे भी आर्यसमाज के अनुयायी भक्त हैं। हिन्दी साहित्य के प्रचार

मे उनकी सदा रुचि रहती है।

स्वर्गीय पडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी बी ए की सम्मति के अनुसार काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सूर्यकुमारी पुस्तक माला के प्रकाशन की व्यवस्था हुई थी और पुस्तक माला के सपादन का भार भी पडित गुलेरी ने उत्साहपूर्वक स्वय ग्रहण किया था। पुस्तकमाला के आरभिक परिचय मे वे लिखते हैं—

"· ····श्रीमती सूर्यकुमारी बहुत शिक्षिता थी। उनका अध्ययन बहुत विस्तृत था। उनका हिन्दी पुस्तकालय परिपूर्ण था। हिन्दी इतनी अच्छी लिखती थी और अक्षर इतने सुन्दर होते थे कि देखनेवाला चमत्कृत रह जाय। स्वर्गवास के कुछ समय पूर्व श्रीमती ने कहा था कि 'स्वामी विवेकानन्द के सब ग्रन्थो, व्याख्यानो और लेखो का प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद मैं छपवाऊगी।' बाल्यकाल से ही स्वामीजी के लेखो और अध्यात्म, विशेषत अद्वैत वेदान्त की ओर श्रीमती की रुचि थी। श्रीमती के निर्देशानुसार इसका कार्यक्रम बाधा गया। साथ ही श्रीमती ने यह इच्छा प्रकट की कि इस सबध मे हिन्दी मे उत्तमोत्तम ग्रन्थो के प्रकाशन के लिए एक अक्षय निधि की व्यवस्था का भी सूत्रपात हो जाय। इसका व्यवस्था—पत्र बनते-न-बनते श्रीमती का स्वर्गवास हो गया।

"राजकुमार श्री उम्मेदसिह ने श्रीमती की अतिम कामना के अनुसार लगभग एक लाख रुपया श्रीमती के इसी सकल्प की पूर्ति के लिये विनियोग किया। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के द्वारा इस ग्रथमाला के प्रकाशन की व्यवस्था हुई है। स्वामी विवेकानन्द यावत् निबन्धो के अतिरिक्त और भी उत्तमोत्तम ग्रन्थ इस माला में छापे जायेंगे और लागत से कुछ ही अधिक मूल्य पर सर्वसाधारण के लिए सुलभ होंगे। इस ग्रन्थमाला की बिक्री की आय इसी अक्षय निधि मे जोड दी जायेगी। यो श्रीमती सूर्यकुमारी तथा श्रीमान् उम्मेदसिह के पुण्य और यश की निरन्तर वृद्धि होगी और हिन्दी भाषा का अभ्युदय तथा उसके पाठको का ज्ञान-लाभ।"

राजस्थान में स्वामी विवेकानन्द के विचरण-स्थल

स्वामी विवेकानन्द ने राजस्थान मे विचरण करते समय वहा के अनेक स्थानो की यात्रा की। ऐसे कुछ स्थलो का विवरण अनुचित न होगा। इनमे वे सर्वप्रथम अलवर आये थे। अत अलवर के निकटस्थ स्थानो भर्तृहरि की तपस्या-स्थली, नारायण देवी का मदिर, पाडुपोल आदि भी गये। उन स्थलो का किंचित् विवरण इस प्रकार है

अलवर

निकुम्भ राजपूत अलवर के प्रथम अधिपति कहे जाते हैं जिन्होंने किला और पुराना शहर बसाया। सूर साम्राज्य काल मे हसन खा मेवाती ने ८४ ए० एच० मे किला बनवाया था और बादशाह सलीम ने किले मे तालाब का निर्माण कराया जिसे सलीम तालाब कहा जाता है। सूर साम्राज्य के बाद जाट और मराठो के आधीन रहा। १७७५ ए०डी० मे महाराजा प्रतापसिंह ने आधिपत्य करके अलवर स्टेट का निर्माण किया। क्षेत्र मे उत्तर से दक्षिण मे ३ मील (५ किलोमीटर) पूर्व से पश्चिम मे १ मील (पौने दो किलोमीटर) समुद्रतल से १९६० फीट ऊचाई है। महाराजा शिवदानसिंह ने सन् १८६८ ई० (सवत् १९२४ वि०) पुरजन विहार (जनता पार्क) बनवाकर शहर के सौंदर्य को बढाया। महाराजा मगलसिंह ने १८८५ ई० मे इस शहर का नवीनीकरण किया। किले की तलहटी मे सिटी पैलेस के पीछे एक सागर है। इस सागर का निर्माण १८०५ ई० मे प्रारम्भ हुआ और १८१३ मे कार्य पूर्ण हुआ। सगमरमर की १२ छत्रिया बनी हुई हैं।

मि० पोलट (Powlett) ने निकटवर्ती अजबगढ की घाटी का वर्णन करते हुए लिखा है, "दोनो तरफ पहाडियो के बीच पाल वृक्षो से आच्छादित प्राकृतिक सौंदर्य बडा ही लुभावना है। पानी के झरने हैं। जलभूमि से ज्यादा गहराई पर नही है, ऊचाई पर है! घने जगलो मे लकडी का बाहुल्य है।"

भर्तृहरि

अलवर-जयपुर मार्ग पर २२ मील (४४ किलोमीटर) दूर इन्दोक गाव के निकट महाराजा भर्तृहरि की साधना-स्थली, सरिसका की घाटी मे अवस्थित है। महाराजा भर्तृहरि ने जीवन के अन्तिम काल मे इस स्थान पर तपस्या की थी। पहाडियो के मध्य घने जगलो मे प्राकृतिक स्वास्थ्यवर्द्धक जल का झरना वहता है। प्रतिवर्ष अगस्त महीने मे वार्षिक मेले पर लाखो नरनारी भक्त, साधु-सन्यासी एकत्रित होकर भर्तृहरि के प्रति श्रद्धा-भक्ति दर्शाते हैं। घने जगल मे शेर, चीता, आदि जगली जानवरो का बाहुल्य है।

नारायणी देवी

अलवर के दक्षिण पश्चिम मे ६९ किलोमीटर (४६ मील) बलदेवगढ के निकट प्राकृतिक दर्शनीय स्थल, जहा गरम पानी का झरना (स्रोत) भी है। यह स्थान शेरगाह के लिए प्रसिद्ध है। किवदती है कि राजोरगढ के नाई के साथ जयपुर की नाई जाति मे जन्मी महिला का विवाह हुआ था। पितृगृह से आते समय मार्ग मे सर्पदंश से पति की मृत्यु हो जाने पर ग्वालो से चिता के लिए लकडी एकत्रित करने का अनुरोध किया ताकि सती हो सके। ग्वालो ने गायो को पानी पिलाने के बाद ही लकडी चुनने का वचन दिया। महिला ने विश्वास दिलाया कि इसी स्थान से जल का झरना बहेगा। ग्वालो के लकडी एकत्रित करने के वाद, चिता मे सती होनेवाले स्थान से झरना बहता है। वैशाख सुदी ११ को प्रतिवर्ष मेला लगता है जिसमे सब जातियो के लोग सम्मिलित होकर नारायणी देवी के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हैं।

पाण्डुपोल

अलवर से ४५ मील (६७ किलोमीटर) सरिसका की पहाडी तराई (घाटी) मे हनुमानजी का प्राचीन मदिर है। अगस्त के महीने मे वहा वार्षिक मेला लगता है। दो पहाडो के मध्य प्राकृतिक द्वार (गेट) बना हुआ है। हनुमानजी के प्राचीन मदिर के विषय मे किवदती है कि यह मन्दिर पाण्डवो ने बनवाया था।

सरिसका मे Wild Animal and Birds Protection Act १९५१ के अन्तर्गत गेम सेंचुरी स्थापित हुई जिसका क्षेत्रफल १६ घन मील है। सरिसका मे महाराजा के महल दर्शनीय हैं। दिल्ली-जयपुर मार्ग नेशनल हाईवे पर अलवर से २२ मील दूर जयपुर को जाते हुए प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण सरिसका के वन (जगल) मे टाइगर, पेंथर, साभर, नीलगाय, रीछ, जगली सूअर, चीते आदि जीव-जन्तु विचरण करते हैं। राजकीय महलो को विश्रामगृह बना दिया गया है।

जयपुर

ज्योतिषशास्त्र के महान पण्डित वास्तुकला के पारखी राजा जयसिंह ने १७२८ ई० मे जयपुर शहर को वसाया था। अयोध्या के भगवान रामचन्द्र के वंशज आम्वेर के कछवाहा राजवशजो मे राजा जयसिंह वडे प्रतापी वीर हो गये हैं। जयपुर योजनावद्ध तरीके से वसाया गया, भारतवर्ष मे प्रथम शहर था और इसके प्रमुख वास्तुकार वगाली सज्जन विद्याधर थे। १११ फुट चौडी सडकें छह त्रिकोणे ब्लॉको मे विभाजित कर ४ चोपडो एव रंगीन गुलाबी रग के मकानो के कारण जयपुर की गुलावी नगर के नाम से प्रसिद्धि हुई। पहाडियो के मध्य वसे जयपुर के चारो तरफ परकोटा (दिवार) है। पहाडी पर नाहरगढ इस शहर की पताका है। जयसिंह द्वारा निर्मित ज्योतिष मत्रालय आगन्तुको के लिए आकर्षण का केन्द्र है। सुप्रसिद्ध गोविन्ददेवजी एव चादपोल के हनुमानजी, मोतीडूगरी पर अवस्थित गणेशजी का मदिर दर्शनीय स्थल हैं। अलवर्ट हॉल एव सवाई मानसिंह द्वितीय म्यूजियम, सिटी पैलेस, हवामहल जयपुर की गौरवगाथा के साक्षी हैं। इतिहासकारो के प्रिय पात्र वादशाह अकवर के मुख्य सेनापति महाराजा मानसिंह ने उडीसा और वगाल की लडाई मे विजय प्राप्त की थी। जयपुर शहर से निकट ही पहाडी पर आम्वेर के प्राचीन राज प्रासाद मे काली का सुप्रसिद्ध मदिर है। महाराजा मानसिंह ने वगाल के जैसोर के महाराजा प्रतापसिंह को पराजित कर वहा की प्रसिद्ध काली मूर्ति लाकर आम्वेर मे पूजा-अर्चना हेतु प्रतिष्ठित कराई थी। जैसोर से ही परम्परागत पूजा-अर्चना हेतु वही के पारगत कुल पुरोहित लिवा लाये थे, उन्ही के वशज आज भी पुजारी हैं। जयपुर के दिवान मिर्जा इस्माइल ने इस शहर को अत्याधुनिक सुन्दर रूप देने मे प्रमुख भूमिका निभाई जिनके नाम से 'सर मिर्जा इस्माइल रोड' है।

जतर-मतर, हवामहल, रामनिवास वाग, जियोलोजिकल गार्डन, म्यूजियम एण्ड आर्ट गेलेरी, नाहरगढ (किला), गलताजी, सिसोदिया रानी के वाग और महल, सिटी पैलेस, चन्द्रमहल मुख्य दर्शनीय स्थल विदेशी पर्यटको के आकर्षण के केन्द्र हैं।

अजमेर

चौहान वशीय राजा अज १२वी सदी ए० डी० मे वडे प्रतापी हुए। अजमेर शहर और तारागढ किले के निर्माण करानेवाले राजा अज के नाम से ही अजमेर पडा है। ब्रिटिश शासन मे अजमेर-मेरवाड जिला कहलाता था। स्वतत्र भारत मे अजमेर और मेरवाड पृथक्-पृथक् जिले वने। अजमेर सभाग कमिश्नरी का प्रधान कार्यालय है। इतिहास साक्षी है कि अजमेर महान सूरमाओ और उनसे भी वढकर महान सन्तो की कर्मस्थली रही है। शौर्य के अवतार पृथ्वीराज चौहान,

हिन्दी के आदि कवि चन्दवरदाई, भ्रातृभाव के सदेशवाहक ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती, महर्षि दयानन्द सरस्वती, इतिहासकार महापण्डित गौरीशकर हीराचन्द ओझा, समाज-सुधारक हरविलास शारदा, स्वतन्त्रता के अग्रवाहक ठाकुर गोपालसिंह खरवा आदि के नाम इस नगर के साथ जुडे हुए हैं। अजमेर हिन्दुओं, मुसलमानो, जैनियो तथा आर्यसमाजियो की पुण्यभूमि है।

अजमेर शरीफ मे सूफी सत ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह है। प्रत्येक वर्ष देश-विदेश से लाखो लोग दीदार करने व चद्दर चढाने की रस्म अदा करने आते हैं।

तीर्थराज पुष्कर

यह अजमेर के उत्तर मे ७ मील दूर हिन्दुओ के पवित्र स्थानो मे (देवीपुराण-अध्याय ७४ के अनुसार) से एक है। धर्मशास्त्र और पुराणो के मतानुसार यहां दान-धर्म करने का बडा पुण्य होता है। पद्मपुराण के मतानुसार जव सृष्टि के सृजनकर्ता ब्रह्मा यज्ञ के लिए उपयुक्त स्थल की तलाश कर रहे थे, उनके हाथ से कमल का फूल जहा गिरा वही स्थान पुष्कर तीर्थराज के नाम से जगत् प्रसिद्ध हुआ। कमल के फूल की पखुडिया ६ मील के क्षेत्र मे तीन स्थानो पर गिरी जिन्हें ज्येष्ठा, मध्या, कनिष्ठा (छोटे) पुष्कर के नामो से जाना जाता है। रामायण के मतानुसार ऋषिराज विश्वमित्र ने तपस्या की थी। (वाल्मीकि रामायण, श्लोक २८, सर्ग ६२) मेनका अप्सरा ने तीर्थराज पुष्कर के पवित्र जल मे स्नान किया था (वाल्मीकि रामायण, श्लोक १५, सर्ग ६३) प्रति वर्ष वैशाख महीने मे लाखो श्रद्धालु स्नान करने के लिए आते हैं। राजस्थान के इतिहास के जनक कर्नल टाड ने पुष्कर झील का मानसरोवर के समान वर्णन किया है। पचकुण्ड और गोमुख प्रमुख स्थल हैं—मदिरो मे वाराहजी का मदिर, श्रीरगजी का मदिर प्रसिद्ध हैं।

किशनगढ़

किशनगढ जोधपुर के राव सूरजसिंह के कनिष्ठ (छोटे) भाई किशनसिंह के १६११ ए० डी० मे कस्बे का निर्माण कराने के कारण उन्ही के नाम से किशनगढ़ पडा है। विश्व मे छपाई के लिए प्रसिद्ध है। किशनगढ शैली की चित्रकला प्रसिद्ध रही है। १६४८ तक किशनगढ राजस्थान के जयपुर जिले का उपजिला रहा—तदुपरान्त १६५६ से अजमेर का उपभाग है। अजमेर से १८ मील दूर अजमेर-जयपुर मार्ग पर अवस्थित किशनगढ मैटल के कार्य के लिए भी प्रसिद्ध है। किशनगढ मे स्कूल ऑफ पेंटिंग्स स्थापित है।

जोधपुर

राव जोधाजी ने १४५६ ए० डी० मे नगर को बसाया और उन्ही के नाम पर जोधपुर नाम पडा। पुराने नगर के चारो ओर पक्का परकोटा एव अनेक प्रवेशद्वार हैं जिनमे नागौरी गेट, मरदिया गेट, जालौरी गेट और चांदपोल गेट प्रसिद्ध हैं।

मदिरो मे रणछोडजी का मदिर, रामदेवजी और गजाननजी के मुख्य है। जैनियो के भी प्रसिद्ध मदिर हैं। उम्मेद भवन पैलेस, भीमभारक और आबू के महल दर्शनीय स्थल हैं। महाराजा जसवतसिह स्मारक पूरा सफेद सगमरमर (मकराना) का वना हुआ है। वालसमन्द लेक नगर से ८ किलोमीटर दूर एव केलाना लेक दस किलोमीटर दूर रमणीय स्थल हैं। पद्म सागर, फतह सागर, गुलाब सागर, वाईजी का तालाव चार विशाल जलाशय (तालाब) हैं। राजस्थान हाईकोर्ट का मुख्यालय जोधपुर मे ही है।

माउंट आबू

आबू पर्वत अपने रमणीय प्राकृतिक सौंदर्य के लिए तो प्रसिद्ध है ही, साथ ही नयनाभिराम अतुलनीय देलवाडा मन्दिर भी यहा एक सुरम्य दर्शनीय स्थान है। इसका निर्माण तेरहवी शताब्दी मे गुजरात के दो जैन श्रेष्ठि बन्धुओ ने आठ करोड रुपये व्यय करके कराया था। अरवुदा देवी का मदिर, विमलाशाह का मन्दिर जैनियो के प्रसिद्ध मन्दिर हैं। विमलाशाह जैनियो के प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ-ऋषभनाथ की अनुयायी थी। मीनार के बाहरी भाग मे विद्या देवियो के चित्र वने हुए हैं। यह मदिर श्वेत सगमरमर का वना हुआ है और इसके पूर्ण होने मे चौदह वर्ष लगे थे। मदिर के दर्शन करके स्वामी विवेकानन्द झील के किनारे घूमते रहे।

स्वामीजी ने देलवाडा के हिन्दू मन्दिरो मे वलराम रसिया, वाल्मीकि ऋषि, गणेश मदिर और उत्तर-पूर्व मे स्थित अचलगढ किले मे हिन्दू देवस्थानो के दर्शन के उपरात मदाकिनी कुण्ड मे स्नान किया। गुरु शिखर पर जो ५६५० फीट ऊचाई पर है अत्रि ऋषि एव अनुसूया के मदिर-गोमुख पर ऋषि वशिष्ठ के मदिर देखे। कर्नल टाड ने आबू का वर्णन प्रमुखता से किया है। सेंट्रल पुलिस ट्रेनिंग कालेज (आई०पी०एस० अधिकारियो का प्रशिक्षण केन्द्र) सर्वे ऑफ इण्डिया के पश्चिम सर्किल के निदेशक का कार्यालय आबू मे ही है।

खेतड़ी

भूतपूर्व जयपुर राज्य के अतर्गत खेतडी का बडा ठिकाना था। खेतडी जयपुर से उत्तर-पश्चिम मे कोई १५० किलोमीटर पर स्थित सुन्दर नगर है। यह चारो ओर

पर्वतावलि से आविष्टित है। आम्बेर के राजा उदयकरण (१४२३-१४४५ वि०) के पुत्र बालाजी के पौत्र शेखाजी की सन्तति कछवाहो की शेखावत शाखा के नाम से प्रसिद्ध हुई और जितने भूभाग पर इन लोगो ने अधिकार किया, वह 'शेखा-वाटी' कहलाया। शेखाजी से आठवी पीढी मे शार्दूलसिह बडे प्रतापी हुए थे उन्होंने झुंझुनू पचपाना की स्थापना की थी। इनके पौत्र भोपालसिह (१८०२-१८२८ वि०) ने ही खेतडी ठिकाने को कायम किया था। जिस स्थान पर खेतडी नगर बसा हुआ है वह भोपालसिह के काका श्वसुर खेतसिह निर्वाण के अधिकार मे था। उसी से वह स्थान लेकर उसके नाम पर १८१२ वि० मे खेतडी नगर बसाया गया और पहाड पर भोपालगढ दुर्ग की स्थापना हुई।

राजा भोपालसिह से तीसरी पीढी मे अभयसिह (१७५७-१८८३ वि०) हुए। उन्होने ईस्ट इण्डिया कम्पनी से १८०३ ई० मे कोटपूतली का परगना इस्तमरारी पट्टे पर प्राप्त किया, बाद मे सन् १८०६ मे सैनिक सहायता के बदले मे वह फ्री गिफ्ट (नि शुल्क) कर दिया गया। इस प्रकार उन्होने अपने पैतृक राज्य की अभिवृद्धि की। अभयसिह से चौथी पीढी मे राजा अजीतसिहजी हुए जो राजा जयसिहजी के पिता थे, जिनको स्व० गुलेरीजी से अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जयसिह का जन्म स्वामीजी के आशीर्वाद से हुआ।

सीकर

सीकर राजपूताना जयपुर का एक शक्ति-सम्पन्न करद राज्य रहा है। इसको लोग 'सीकरवाटी' तथा फतहपुरवाटी भी कहते हैं। शेखावतो के आधीन होने के कारण शेखावाटी का प्रमुख भाग रहा है। स्वतन्त्रता के पूर्व सात परगनो मे विभक्त था—तहसील सीकर, फतहपुर, रामगढ, लक्ष्मणगढ, नेछ्पा, सिहरावट और रीगस। भूमि रेतीली (बालूमयी) और पानी गहरा है। बाजरा, मूग, मोठ, गुवार उपज के प्रमुख अग हैं। रीगस नीमकाथाना (ढूढार) क्षेत्र मे गेहू और चना भी पैदा होते हैं। सीकर शेखावाटी मे तो सबसे बडा नगर है। आबादी डेढ लाख है। जयपुर से १२५ किलोमीटर दूर उत्तरी रेलवे की छोटी लाइन पर प्रमुख रेलवे स्टेशन है। जयपुर-बीकानेर सडक मार्ग पर अवस्थित है।

रावसिह शिवसिहजी (वि० सम्वत् १७७८ मे सीकर की राजगद्दी पर बैठे) ने वि० सम्वत् १७८१ मे सीकर को नगर के ढग से बनवाया! नगर के मध्य गोपीनाथजी का मदिर बनवाया और नगर के चारो तरफ पक्की चहारदीवारी (परकोटा) बनवाई। राव शिवसिहजी ने कायमखानियो को पराजित कर फतेह-पुर पर अधिकार किया। विक्रम सम्वत् १८०५ मे इस असार ससार को त्याग दिया।

मालकेतु, शाकम्भरी, लोहार्गल, हर्ष के पहाड, खाटूश्यामी, जीणमाता आदि

प्रसिद्ध देवस्थान सीकर जिले मे ही है !

कोटपूतली

दिल्ली-जयपुर नेशनल हाई-वे पर जयपुर से १०५ किलोमीटर, दिल्ली से १६० किलोमीटर दूर स्थित कोटपूतली तोरावाटी जनपद का प्रमुख नगर है। आवादी अनुमानत. ७० हजार है। स्वतत्रतापूर्व कोटपूतली खेतडी राज्य के आधीन परगना था। खेतडी नरेश राजा अभयसिहजी को ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ओर से लार्ड-लेक द्वारा २०००० रु० वार्षिक इस्तमरारी पट्टे पर कोटपूतली परगना सन् १८०३ ई० मे मिला था। कृषि उपज मे गेहू, चना की प्रमुख पैदावारी है। राजकीय महाविद्यालय एव क्षेत्र का प्रमुख चिकित्सा केन्द्र है। राजा अजीतसिह के साथ स्वामीजी कोटपूतली पधारे थे। वुचारा डैम यहा से ८ किलोमीटर दूर पर्यटन का प्रमुख आकर्षण है।

जीणमाता

शेखावाटी के सीकर जिले के पहाडो मे सीकर से १४ मील दक्षिण मे जीणमाताजी का मन्दिर अरावली पहाड की शृ खला मे अवस्थित है। जयपुर से सीकर आनेवाले रेल-मार्ग पर गोरिया स्टेशन पडता है, उससे ८ मील है जीणमाताजी का मन्दिर। इसके पास ही पर्वतराज हर्ष है जो इस क्षेत्र की सबसे ऊची चोटी है। जीणमाता के पास ही स्यालू सागर नामक खारे पानी की झील है।

जीणमाता का मन्दिर पर्वत की घाटी मे है। इसके तीन ओर पहाड झुका हुआ है। पूर्व की तरफ अरण्य है जिसे स्थानीय वोली मे औरण कहते हैं। मन्दिर की दीवारो पर तान्त्रिको और वाममार्गियो की मूर्तिया लगी हुई हैं। मन्दिर का प्रवेशद्वार पूर्वाभिमुख है। मन्दिर के देवायतन का द्वार सभामण्डप मे पश्चिम की तरफ है। देवी की आठ भुजाओ वाली मूर्ति है। इस आदमकद मूर्ति की छवि देखते ही वनती है। सभा-मण्डप की पीठ पर दीवारो मे शिलालेख भी लगे हुए हैं। सभा-मण्डप की पीठ पर पूर्व की ओर भवरा की रानी का पहाड के नीचे घाटी मे ही एक मन्दिर है जहा पर जगदेव पवार का पीतल का सिर और ककाली का चित्र है। पश्चिम की तरफ एक महात्मा की प्राचीन तपोभूमि है, जिसे स्थानीय वोली मे घूणा कहते हैं। मन्दिर मे आठ शिलालेख हैं, जिनसे मन्दिर के निर्माणकाल का अनुमान लगाया जा सकता है। चन्देलो के गौरव का प्रतीक रैवासा का सुप्रसिद्ध दुर्ग भी जीणमाता के समीप ही पडता है।

स्वामीजी का स्वप्न साकार

स्वामीजी ने राजस्थान की तीन वार यात्रा की और विकास कार्यों मे रुचि ही नही दिखाई वल्कि सेवा और शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु अपने गुरुभाई अखण्डानन्दजी को कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया ।

राजस्थानी वेशभूषा

स्वामीजी के जीवन मे राजस्थानी परम्पराओ की छाप ही नही पडी, कुछ वातो को अपनाया भी । राजस्थानी साफा (टरबन), राजस्थानी चोगा (कमरखी) जो मठ के सन्यासियो की स्थायी वेशभूषा वनी, राजस्थान की ही देन है। जव स्वामीजी पहली बार राजस्थान १८९१ ई० मे आये तव गर्म हवा (लू) से वचाव के लिए साफा धारण किया । राजस्थान मे प्रविष्ट होने पर अलवरीय भक्तो के अनुरोध पर जयपुर मे स्वामीजी ने जो फोटो खिचवाया, उसमे सर पर कुछ भी धारण किया हुआ नही (नगे सर) था। स्वामीजी जव खेतडी पधारे उस समय गर्मी का मौसम था—गर्म हवा (लू) से बचने के लिए राजस्थानी साफा पहनना प्रारम्भ किया । शिकागो मे सर्वधर्म-परिषद की बैठक मे खेतडी से ही रवाना होकर बम्बई से अमेरिका के लिए प्रस्थान किया था। राजा अजीतसिंह ने अपने विश्वस्त प्राइवेट सेक्रेटरी मुशी जगमोहनलाल को अमेरिका यात्रा के लिए उचित प्रबन्ध कर देने का आदेश देकर स्वामीजी के साथ वम्वई तक भेजा । मुशीजी ने राजाजी की आज्ञा के अनुसार स्वामीजी के लिए आवश्यक सामग्री एकत्र की, उपयोगी कपडे बनवाये और जहाज की प्रथम श्रेणी का टिकट खरीदा ।

राजस्थानी वेशभूषा (साफा-चोगा-कमरखी) आदि कपडे जो मुशीजी ने बनवाये थे, उसी वशभूषा (कपडो) मे स्वामीजी ने सर्वधर्म-परिषद मे भाग लिया और यही वेशभूषा स्थायी रूप से अपनायी गई ।

पट्टे पर बैठकर भोजन करना

स्वामीजी ने विदेश से मठ के नियम बनाने के निर्देश अपने गुरुभाइयो को दिये उसमे भोजन राजस्थानी परम्परानुगत (लकडी के पट्टे) पर बैठकर करने का उल्लेख है।

स्वामीजी ने २७ अप्रैल, १८९६ मे इगलैण्ड से लिखे पत्र मे मठ की नियमावली हेतु निर्देश अपने गुरुभाइयो को सख्या ६ पर इस प्रकार उल्लेख किया है—

"भोजन का नियत समय होना चाहिए। सबके लिए आसन और नीची चौकी होनी चाहिए। जिससे वह आसन पर बैठ सकें और चौकी पर थाली रख सकें, जैसे राजपूताना मे चलन है।"...

खेतड़ी में रामकृष्ण मिशन की स्थापना

स्वामी विवेकानन्द के परम सहायक मित्र एव शिष्य स्वर्गीय राजा अजीतसिंहजी बहादुर (खेतडी) के प्रपौत्र राजा सरदारसिंहजी ने स्वामीजी की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के निमित्त 'जनानी ड्योढी' एव 'दीवानखाना' नामक दो महलो का दानपत्र रामकृष्ण मिशन बेलूडमठ के नाम रजिस्ट्री करा के मिशन के प्रतिनिधि स्वामी रगनाथानन्दजी को दिनाक २९ दिसम्बर, १९५८ ई० को यथाविधि समर्पित किया।

रामकृष्ण मिशन की प्रधान सचालक सभा ने राजस्थान मे इस प्रथम शाखा केन्द्र की स्थापना कर अपने चार्टर द्वारा १९६० मे पहली प्रबन्ध समिति की नियुक्ति की। 'दीवान खाना' का जीर्णोद्धार करके वर्तमान रूप मे विवेकानन्द स्मृति-मन्दिर का नाम दिया गया जिसका विधिवत उद्घाटन विवेकानन्द जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य मे राजस्थान के राज्यपाल डॉ० सम्पूर्णानन्दजी के द्वारा कार्तिक कृष्णा-सोमवार सवत् २०२० वि० तद्नुसार ११ नवम्बर, सन् १९६३ ई० को सम्पन्न हुआ। यह 'दीवानखाना' वही राजभवन है, जिसमे स्वामीजी ने अपनी सन् १८९१ ई०-१८९३ ई० की यात्राओ मे निवास किया था। अमेरिका से लौटने के बाद १८९७ ई० की अपनी तीसरी यात्रा मे खेतडी मे उनका शाही स्वागत हुआ था और वे अपने साथी गुरुभाइयो एव विदेशी शिष्य-शिष्याओ सहित सुखमहल मे ठहराये गये थे। 'वेदात' पर उनका भाषण राजा अजीतसिंहजी की अध्यक्षता मे हुआ था।

शिकागो (अमेरिका) की सर्वधर्मपरिषद मे (१८९३ ई०) स्वामीजी की सफलता का सवाद पाकर राजा अजीतसिंहजी ने एक विशेष दरबार किया और अभिनन्दन पत्र भेजकर अमेरिका वासियो को धन्यवाद देने के बाद स्वामीजी के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया। एक नर्तकी द्वारा 'प्रभु मोरे अनवगुण चित न

घरो' वाले भजन का प्रसग इसी भवन की ऊपरी मजिल के प्रांगण का है। इसी भवन के सर्वोपरि महल मे अब श्रीरामकृष्ण परमहस, माता शारदा एव स्वामीजी के चित्र—दर्शन और ध्यान करने के लिए सिंहासन पर विराजमान किये गये हैं। इसी स्थान पर स्वामीजी राजाजी को विज्ञान पढाते थे और विविध ज्ञान चर्चा, तथा मनोरजक बातें हुआ करती थी। स्वामीजी ने राजपडित नारायणदासजी से अष्टाध्यायी पढी थी।

खेतडी के विख्यात शाह पन्नालाल के दर्शनीय तालाव पर अमेरिका की ऐतिहासिक यात्रा से लौटने के बाद स्वामीजी के स्वागतार्थ राजकीय जलसा और भोज का आयोजन किया गया था। भोपालगढ सहित नगर मे सर्वत्र रोशनी (दीपोत्सव) की गई थी जिसमे १३।। (साढ़े तेरह) मन तेल लगा था। स्वामीजी ने जयपुर मण्डल मे पहले हाईस्कूल मे, जो उस समय राणावतजी के मन्दिर मे था, विद्यार्थियो को पुरस्कार वितरण किया था और राजाजी को रामकृष्ण मिशन की ओर से अभिनन्दिन पत्र भेंट किया था।

स्वामी रंगानाथानन्दजी का भाषण

स्वामी रगानाथानन्दजी महाराज, सचिव श्रीरामकृष्ण मिशन, नई दिल्ली ने प्राथमिक एस० टी० सी० ट्रेनिंग स्कूल के प्रशिक्षणार्थियो को ३० दिसम्बर, १९५८ को ११ बजे दीवाना खाना हाल मे एक भाषण दिया था। स्वामीजी खेतडी के दीवानखाना और जनानी ड्योढी के भवनो की, जिन्हे खेतडी के महाराज सरदारसिंहजी ने रामकृष्ण मिशन को दान मे दिया था, रजिस्ट्री कराने आये थे।

उस समय प्रशिक्षणार्थियो के अलावा सभा मे स्थानीय प्रशासनिक अधिकारी, स्थानीय हाई स्कूल के शिक्षक, खेतडी के वकील, स्थानीय वार के सदस्य, एस० टी० सी० ट्रेनिंग स्कूल के शिक्षक और उनके शिष्य वहा उपस्थित थे। खेतडी के वरिष्ठ अधिकारी रायबहादुर श्री कर्मचन्द टडन ने सभा की अध्यक्षता की।

स्वामीजी ने अपना भाषण अग्रेजी मे दिया लेकिन अन्त मे उन्होने स्कूली बच्चो की खातिर कुछ शब्द हिन्दी मे कहे।

उनके भाषण का सार इस प्रकार है—

"मैं आज आपके सामने इसलिए उपस्थित हू कि खेतडी के महाराज ने स्वामी विवेकानन्दजी और स्वर्गीय महाराज अजीतसिंहजी की याद को सदैव के लिए अविस्मरणीय बनाने के लिए जो भवन दान मे दिये हैं, उनकी रजिस्ट्री करवा सकू। रामकृष्ण मिशन ने यह दान इसलिए स्वीकार किया है और इन भवनो की देखभाल की जिम्मेवारी इसलिए अपने ऊपर ली है, क्योकि स्वामी विवेकानन्दजी इन भवनों के साथ भली प्रकार जुडे हुए थे और इस जगह और

इन भवनो मे कई बार रह चुके थे। इन भवनो की महत्ता इसलिए और भी बढ जाती है कि यही से स्वामी विवेकानन्द ने 'सर्वधर्म परिषद' मे सम्मिलित होने के लिए प्रस्थान किया था।"

स्वामीजी खेतडी २८ वर्ष की आयु मे आये थे। वे उस समय बिलकुल जवान थे। किन्तु वे बहुत बडे थे, उनके मन मे एक ही धारणा थी कि भारत बडा बने और वे भारत की और भारतवासियो की सेवा करके हमारे देश को एक बहुत बडा राष्ट्र बना सकें। उनको इस काम के लिए बहुत से लोगो की मदद की जरूरत थी और वे अपने मन मे सोचते थे कि पाच-छ सौ राजा-महाराजा भारत मे शिक्षा के प्रचार के लिए उनकी बहुत मदद कर सकेंगे और भारत की बढती गरीब आबादी का उत्थान कर सकेंगे। उन्हे यह देखकर बडा दु ख और मायूसी हुई कि ज्यादातर राजा केवल अपने ही सुख और ऐश्वर्य मे मस्त थे और गरीब जनता की भलाई के किसी भी काम मे उन्हे कोई दिलचस्पी नही थी, हिस्सा नही लेना चाहते थे। और नही वे इस प्रकार के किसी काम मे। देखते हैं कि केवल चार महाराजा, सबसे पहले खेतडी के दूसरे लिमडी के, तीसरे मैसूर के और चौथे रामनद के जो स्वामीजी की कसौटी पर खरे उतरते हैं और जिनकी प्रगतिशील विचारधारा व सेवा भाव से स्वामीजी ने उन्हे अपना मित्र भी बनाया, उनसे मदद भी ली और अपने मिशन को फैलाने मे उनकी सहायता स्वीकार की। इनमे वे खेतडी के महाराज अजीतसिंह को अपना प्रधान सहायक स्तम्भ मानते थे।

अमरीका को उन्होने भारत से बिलकुल ही उलटा पाया। वहा कोई राजा न था किन्तु जनता समृद्ध, सुखी और खुश थी। इसका कारण यह था कि वहा के लोग और अधिक मेहनत करना चाहते थे तथा और ज्यादा सुखी बनना चाहते थे। अमरीका के लोग कुशल कारीगर थे। वे अपना ज्ञान बढाना चाहते थे और अपने काम को बहुत प्यार से देखते थे। यहा आकर स्वामीजी को पता लगा कि क्यो लक्ष्मी भारत से भाग गई है, कारण केवल यही था कि भारत के लोग सुस्त और कामचोर हो गये थे। स्वामीजी बहुत उत्सुक थे कि भारत मे फिर से खुशहाली आये और यह तभी हो सकता था अगर भारतवासी हर प्रकार के काम को अपने ही देश मे अच्छी प्रकार करने लगें। अगर उचित शिक्षा से, ज्ञान से, काम के बारे मे लोग ज्यादा जान सकें और अपने व्यवहार के बारे मे भी बिलकुल ठीक हो व उनमे अपने काम के प्रति कार्य भावना और सेवा भाव हो तो फिर भारत के लोग अपने कार्यों मे बहुत अधिक सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

स्वामीजी के व्याख्यानो मे सच्चे व्यावहारिक धर्म की व्याख्या है। मानव की सेवा ही असली पूजा है। धर्म का मतलब नही कि आदमी सितारो की तरफ ही देखता रहे बल्कि धर्म का मतलब है कि आदमी अपने चरित्र पर बहुत मान

रखे, मन मे सेवा का भाव रखे और सारे ससार के लोगो से प्रेमभाव से मिले और रहे।

स्वामीजी के प्रवचन, पत्र और पुस्तकें बहुत प्रेरणादायक हैं। उनकी भाषा बिलकुल स्पष्ट और साफ समझ मे आनेवाली और पढनेवाले के मन पर सगीत का-सा जादू कर देने वाली है। कोई भी युवा या शिष्य उसे पढकर इन बातो से अनभिज्ञ नही रह सकता।

स्वामी विवेकानन्द महान शिक्षक थे। उन्होंने रचनात्मक और मानवतावादी शिक्षा की नई दिशा दी थी। उन्होने इस प्रकार की शिक्षा पर बल दिया जो भारत माता का शिक्षित सेवक बना सके। स्वामीजी की शिक्षा, दर्शन और जीवन महात्मा गाधी ने अपनाया और उसे व्यवहार मे लाए, जिन्होंने हमे सिखाया—मानव मात्र से प्यार करो और किसी का शोषण न करो। उनकी प्राथमिक शिक्षा के बारे मे जो नीति है वह उनकी (स्वामी विवेकानन्दजी की) नीति के अनुरूप है जिसका आधार यह है कि इनसान का व्यक्तित्व पूरी तरह फले-फूले और एकरूप हो।

स्वामीजी महान देशभक्त थे। अमरीका मे प्रवास के दौरान उन्होंने उस देश मे होटल के आरामदायक महगे बिस्तर पर सुख की नीद का आनन्द नही लिया। सारी रात वे रोते रहे। उन्हे अपने देश की गरीबी की याद आती रही कि किस तरह अपने देश मे लोग रोटी, कपडे तक के लिए तरसते रहते हैं। वो कीमती तकिया, जिस पर वे रात को सोये थे—सुबह उनके आसुओ से गीला हो गया था।

भारत सरकार अपने देश के लोगो के कल्याण के लिए बहुत काम कर रही है और पचवर्षीय योजनाओ के माध्यम से ऐसे काम किये जा रहे हैं कि जिनसे लोगो की उन्नति हो और देश मे खुशहाली आये। विकास परियोजना, सामाजिक परियोजनाए, शिक्षा की योजनाए और ऐसे कार्य जिन पर स्वामीजी ने विचार भी कर रखा था और कई यत्न भी किये थे अब भारत सरकार की ओर से किये जा रहे हैं। स्वामीजी चाहते थे कि भारत गणतत्र हो और इसका समाज उन्नतिमय हो। विज्ञान, और भारत की पुरानी सभ्यता से ज्ञान के भडार खुलें और आदमी उन्नति करे। स्वामीजी ने राष्ट्रीय शिक्षा योजना बनाई थी। प्रगतिशील ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। सच्चे शिक्षित वे हैं जो सारी उम्र ही ज्ञान प्राप्त करते रहते हैं और ज्ञान का प्रचार-प्रसार करते रहते हैं। भारत की प्राचीन सभ्यता और पश्चिम का ज्ञान दोनो ही मिलकर भारत को सच्चे अर्थों मे एक प्रगतिशील और अत्यन्त गौरवशाली राष्ट्र बना सकते हैं।

इस सस्था के प्रशिक्षणार्थी छोटे बच्चो की शिक्षा के प्रति जिम्मेवार होगे। प्राथमिक शिक्षा ही सही अर्थों मे प्राथमिक होनी चाहिए। वही आगे चलकर आने-

वाली शिक्षा की आधारशिला वननी चाहिए। शिक्षक को वच्चो मे अनुशासन और भारत के प्रति अगाध प्रेम की भावना अपना आदर्श प्रस्तुत कर विकसित करनी चाहिए। शिक्षक जो है वह काम सिखानेवाला कारीगर नही वह एक गुरु है और दोनो वातो का अन्तर केवल यह है कि वह व्यक्तिगत सम्पर्क से वच्चो के मन मे प्रेरणा पैदा करे । शिक्षक के मन मे एक तरह से धार्मिक जोश होना चाहिए कि वह जो भी काम कर रहा है वह अपने लिए नही, अपने शिष्यो के लिए भी नही वल्कि समाज और देश के लिए कर रहा है। भारत मे गणतत्र की कामयाबी के लिए समाजवादी व्यवस्था की उन्नति के लिए जरूरी है कि प्राथमिक शिक्षा के शिक्षक अपने शिष्यो को अच्छी तरह से विद्या का अध्ययन कराए। प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य यही है कि वच्चे इस प्रकार प्रशिक्षित हो कि वे इस महान देश के आदर्श नागरिक वन सकें। उसके वाद ही भारत सजग, तन्दुरुस्त, आध्यात्मिक रूप से समृद्ध और सारे ससार को प्यार करनेवाले लोगो का देश वन सकेगा। उसी रूप मे ही भारत शक्तिशाली, रचनात्मक और उत्पादकता वाले लोगो का देश वन सकेगा। काम के प्रति उदासीनता हट जाएगी । श्रम की महत्ता स्कूलो मे हाथ का काम सिखाए जाने से वढती जाएगी और उसी से लोगो के मन मे श्रम-जीवियो के प्रति इज्जत वढेगी ।

एक और वहुत वडा देश है रूस, जिसने प्राथमिक शिक्षा के गुणो को पहचाना है और प्राथमिक और हाई स्कूलो का पूरी तरह विस्तार किया है ।

प्राथमिक शिक्षा का सवसे पहला सिद्धान्त यह है कि वच्चो के मन मे काम के लिए प्रेम उत्पन्न होता है और काम करने मे गौरव का अनुभव करने लगते हैं। उनके मन से नीचे या ऊचे काम की वुरी भावनाए दूर हो जाती हैं। उनको इस वात का ज्ञान हो जाता है कि काम कोई भी हो पवित्र है और उसे करने मे आदमी को मान महसूस करना चाहिए।

जो काम नही करते, जो कामचोर हैं, उनके लिए कही भी कोई जगह नही, हरेक को अपनी रोटी खुद कमानी चाहिए। शिक्षा हर व्यक्ति को इस योग्य वनाए कि वह समाज के लिए लाभप्रद हो और देश की उन्नति और समृद्धि मे योग दे सके। हर व्यक्ति देश की खुशहाली वढाने मे योगदान दे।

प्राथमिक स्कूल के शिक्षक प्राचीन काल के ब्राह्मणो की तरह से हैं। ब्राह्मण इसलिए वडे गिने जाते थे कि उनके पास ज्ञान और चरित्र दोनो का समावेश होता था, उनको उनके सेवाभाव के लिए और अपने शिष्यो के प्रति प्यार के लिए ही आदर दिया जाता था। प्राथमिक स्कूल का शिक्षक वच्चे के लिए माता भी है, पिता भी है। वच्चा अपने शिक्षक मे प्यार का, और ज्ञान का एक भडार पाता है। दूसरे देशो मे स्त्रियो को ही छोटे वच्चो की शिक्षा का भार सौंपा जाता है और यह ठीक ही है। भारत मे शिक्षको को इस वात का ध्यान रखना चाहिए

कि उनके संरक्षण मे दिये गये बच्चे उस प्यार और मातृत्व की कमी महसूस न करने लगे जो उनका हक है और जो उनके व्यक्तित्व को पूरा करने के लिए अत्यावश्यक है। रूस मे एक तरह से बच्चो की पूजा होती है। भारत मे भी किसी समय हरेक छोटा बच्चा गोपाल था। आज के बच्चो पर केन्द्रित शिक्षा नीति मे बच्चो की पूरी तरह से देखभाल और इज्जत होनी चाहिए। यह सारी दुनिया को मालूम है कि बच्चो मे जो हीन भावना पैदा हो जाती है, वह स्कूल मे शिक्षको से व दूसरो से ममता की कमी के कारण ही पैदा होती है।

स्वामीजी ने आर्थिक कल्याण और लोगो की सुख समृद्धि को धार्मिक उन्नति से ऊपर माना है। उन्होंने चरित्र निर्माण पर कभी भी कम जोर नही दिया। 'प्राथमिक स्कूलो के शिक्षको और दूसरो को मैं यह सलाह देता हू कि वे स्वामीजी की लिखी पुस्तकें पढें और इस प्रकार वे स्वामीजी को अपना मित्र बनाकर अपने जीवन मे आगे बढें। रामकृष्ण मिशन शाखा की स्थापना प० झाबरमल्ल शर्मा के सतत् प्रयत्नो से सम्भव हो सकी।

रामकृष्ण मिशन (जयपुर-शाखा)

स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरुभाई एव सहकारी कार्यकर्ता स्वामी अखण्डानन्द को लन्दन से लिखे पत्र दिनाक १३ नवम्बर, १८९५ ई० को विशेष रूप से लिखा था कि 'राजपूताना मे केन्द्र स्थापित करने का विशेष प्रयास करो। जयपुर या अजमेर-जैसे किसी केन्द्रीय स्थान मे वह होना चाहिये।' स्वामीजी की मनोकामना नौ दशक बाद 'रामकृष्ण मिशन' के जयपुर केन्द्र का १९ अप्रैल, १९८८ ई० (अक्षय तृतीया) को विधिवत् उद्घाटन से पूर्ण हुई। इस केन्द्र के अन्तर्गत सेवा कार्य, (धर्मार्थ औषधालय, पुस्तकालय एव वाचनालय, ठाकुर सेवा-पूजा, उनके जन्मोत्सव) किये जायेंगे। इस शताब्दी के सबसे भयकर सूखा एव अकाल से जूझ रहे राजस्थान मे बीकानेर मे गो सेवा शिविर तथा बाडमेर मे सूखा राहत कार्य चल रहा है। गौतम मार्ग, सी-स्कीम, जयपुर मे १३ हजार वर्गमीटर क्षेत्र मे मिशन का केन्द्र है।

इस पुस्तक से पाठको को ज्ञात होगा कि राजस्थान के एक छोटे-से राज्य के अधिपति ने भारत के नये भावो का कितना स्वागत किया था, कितनी सहानुभूति दिखाई थी, कितनी सहायता पहुचाई थी। स्वामी विवेकानन्दजी ने अजीतसिंहजी के पास एक स्वरचित उत्साहवर्द्धक ओजपूर्ण पद्यमाला भी भेजी थी, उसे हम मूलरूप मे यहा उद्धृत कर इस प्रकरण को समाप्त करते हैं :—

HOLD ON YET A WHILE, BRAVE HEART

(*Written to the Raja Ajitsingh of Khetri*)

If the sun by the cloud is hidden a bit,
If the welkin shows but gloom,
Still hold on yet a while, brave heart!
The Victory is sure to come.

No winter was but summer came behind,
Each hollow crests the wave,
They push each other in light and shade,
Be steady then and brave.

The duties of life are sore indeed,
And its pleasures fleeting vain,
The goal so shadowy seems and dim,
Yet plod on through the dark, brave heart
With all thy might and main.

Not a work will be lost, and no struggle vain,
Though hopes belighted, powers gone,
Of thy loins shall come the heirs to all,
Then hold on yet a while, brave soul,
No good is e'er undone

Though the good and wise in life are few,
Yet theirs are the reins to lead;
The masses know but late the worth,
Heed none and gently guide.

With thee are those who see afar,
With thee is the Lord of might,
See blessings hover on thee great soul
To thee may all come right.

अग्रेजी से अनभिज्ञ पाठक इस कविता के हिन्दीरूप निम्नलिखित तुकवन्दी को पढकर मूल का भावार्थ समझ लें—

वीर-हृदय ! दृढ रहो कभी मत विचलित होना।

मेघो से यदि सूर्य कभी क्षणभर छिप जावे,
गगन-प्रान्त मे पूर्ण अधेरा यदि छा जावे।

वीर-हृदय ! दृढ बने रहो, मत विचलित होना,
निश्चय होगी विजय तुम्हारी धैर्य न खोना ॥

(यदि)शिशिर न आवे तो वसन्त का कहाँ पता है ?
प्रति तरग के पूर्व पुन गह्वर रहता है।

करते हैं साहाह्य-दान वे सदा निरन्तर,
एक-एक को अस्तु, रहो दृढ नित्य वीरवर ॥

जीवन के कर्त्तव्य कभी भी सुखद न होते,
पर विलास भी यहा सभी क्षणभगुर होते।

छाया-सम अस्पष्ट लक्ष्य भी दीख रहा हो,
अन्धकार मे वीर ! बढो सब शक्ति लगा दो ॥

नष्ट न होगा यत्न समर यह व्यर्थ न होगा,
आशाए मिट जायँ भले ही बल न रहेगा।

रहो बद्ध-कटि वीर ! सफल निश्चय ही होगे,
विफल न होंगे कर्मवीर ! यदि अटल रहोगे ॥

धीरज औ धीमान धरा मे यद्यपि कम हैं,
पर वे ही वर-वीर विश्व के नायक सम हैं।

वहुत काल उपरान्त जानती जनता उनको,
ध्यान न लाना इसे मार्ग बतलाना इनको ॥

साथ तुम्हारे सौम्य दूर-दर्शी सब ही हैं,
तथा तुम्हारे सग शक्ति के स्वामी भी हैं।

तुम्हे सहस्रो बार यही हू आशिष देता,
रहो बुद्धि-सम्पन्न वीरवर ! पुण्य-प्रणेता ॥

इति कथा

वग प्रदेश की रत्न-प्रसविनी वसुधरा ने एक नर-रत्न को जन्म दिया था और राजस्थान की वीर-प्रसविनी भूमि को कदाचित् सत्पात्र मानकर निखारने-सँवारने हेतु सौंप दिया था। वीर-प्रसविनी भूमि रत्नो की सच्ची पारखी निकली। उसने रत्न को सुधारा-निखारा, उज्ज्वल रूप दिया और भेज दिया विश्व के बाजार मे, मूल्याकन के लिए। क्या मूल्य पाया उस नर-रत्न ने, यह सर्वविदित है। नर-रत्न था स्वामी विवेकानन्द जो अपने जीवन के अन्तिम क्षणो तक उस भूमि को नही भूल पाया जिसने उसे विश्व के बाजार मे मूल्य पाने योग्य बनाने मे कोई कसर नही रखी थी।

स्वामीजी के मन मे राजस्थान के प्रति क्या भावना थी? उस भावना ने स्वामीजी को राजस्थान की कितनी यात्राएँ करवाईं, किन-किन स्थानो का भ्रमण करवाया, किन-किन महापुरुषो को आत्मीयो की श्रेणी मे रखा—इस सबका विवरण आप पढ चुके हैं। स्वामीजी ने अपने राजस्थान-स्नेह को अपने मन तक सीमित नही रखा, उसे वाणी से, सुस्पष्ट शब्दो मे व्यक्त भी किया। अपने गुरु-भाइयो, अपने अनुयायियो, अपने शिष्यो को यह बताने मे कभी संकोच नही किया कि भारत के धर्म-दर्शन की गरिमा को विश्व के सम्मुख रखने का जो थोडा-बहुत कार्य किया जा सका, वह तभी सभव हुआ जब राजस्थान ने उसके लिए यथेष्ट साधन जुटाए, यथावश्यक सुविधाए प्रदान की और यथोचित् प्रोत्साहन दिया।

स्वामीजी अपने पत्रो मे राजस्थान के अपने स्नेह-भाजनो को सदा याद करते थे। उनके नामो का उल्लेख करते थे। उनके राजस्थानी स्नेह-भाजनो मे प्रमुख थे खेतडी के राजा अजीतसिंह। स्वामीजी और राजाजी का मिलन-सयोग मणि-काचन सयोग था। स्वामीजी वग देश की विद्वद् भूमि मे जनमे थे, रामकृष्ण परम-हस जैसे महापुरुष के आशीर्वादभागी बने थे और तब निकले थे भारत के धर्म-दर्शन का झडा विश्व-भर मे गाडने, उत्तोलित करने। वे अपने लक्ष्य की सिद्धि मे कृतकार्य हुए। इसमे उनके बडे सहयोगी थे खेतडी नरेश अजीतसिंह। यह वह राजा था जिसने शिक्षा मे पिछडे राजस्थान मे जन्म लेकर भी उच्च शिक्षा पायी

थी। पर शिक्षा पाना एक बात होती है, उसका सदुपयोग दूसरी। विद्या वही सार्थक होती है जो विद्यार्थी को विनय सम्पन्न, गुणग्राही, परोपकारी बनाये। विद्या अजीतसिंह के पास आकर सार्थक हुई। राजा 'एकतश्चतुरो वेदा, एकतः सशर धनु'' वाला क्षत्रिय था। पर उसके ज्ञान मे निखार आया स्वामीजी की सगति से। स्वामीजी मे कदाचित् कोई अद्‌भुत आकर्षण था जो राजा को उनकी ओर खीचता ही चला गया।

स्वामीजी के आकर्षण ने राजस्थान मे केवल अजीतसिंह को ही आकर्षित नही किया, अन्य अनेक को भी किया। उन सबका विवरण आप पढ़ चुके हैं। पर यह आकर्षण भी एक-पक्षीय नही था। स्वामीजी भी राजस्थान के प्रति अत्यधिक आकर्षित थे। वे केवल जयपुर-अजमेर-अलवर जैसे बडे नगरो तक सीमित नही रहे, वे उस भूमि के देवी-देवियो, तीर्थस्थलो, पर्यटनक्षेत्रो मे भी उसी भावना से विचरे जिस भावना से राजस्थान का अशिक्षित भक्त जाता है। स्वामीजी की दृष्टि मे वे स्थान आस्था के योग्य थे। चाहे शेखावाटी की जीणमाता हो, चाहे हर्ष का पहाड, सबने स्वामीजी को आकर्षित किया। वे कहाँ गये, उनका वहाँ कैसा मन रमा इसका विवरण आप पढ चुके हैं।

स्वामीजी राजस्थान की सभ्यता से प्रभावित थे। उन्होने वहा की वेशभूषा अपनायी, खान-पान की पद्धतियाँ अपनायी, रहन-सहन की विधि अपनायी। यही नही आश्रम के अन्य आवासियो के लिए भी उसी को अपेक्षित माना। स्वामीजी ने अपने गुरु-भाइयो से भी आग्रह किया कि वे राजस्थान की कभी उपेक्षा न करें। उसी का परिणाम था कि उनके गुरुभाई अखण्डानन्दजी ने राजस्थान मे प्रभूत कार्य किया। उसका विवरण पढ ही चुके हैं।

पर राजस्थान ने भी अपने इस स्नेही स्वामी को नही भुलाया। जिस खेतडी की भूमि मे विविदिषानन्द विवेकानन्द बने थे उसी मे आश्रम के लिए राजप्रासाद (जनानी ड्योढ़ी एव दीवानखाना) रामकृष्ण मिशन को प्राप्त हो गया। यो राजस्थान का उस विश्ववंद्य स्वामी से सबध आज भी बना हुआ है, भविष्य मे भी बना रहेगा। यदि यह पुस्तक स्वामीजी और राजस्थान के परस्पर सबधो का सही स्वरूप अभिव्यक्त करने मे सफल रही तो लेखक अपने-आपको कृतकार्य मानेगा।

□□

अलवर मे स्वामीजी की जीवन चर्या

दिल्ली के गत गौरव को स्मरण कर स्वामीजी भावोन्मत्त प्राण नाच उठते थे। दिल्ली मे वे सांवलदास सेठ के स्थान पर ठहरे थे। कुछ दिनो बाद डाक्टर हेमचन्द्र सेन महोदय से उनका परिचयालाप हुआ। हेम बाबू स्वामीजी के अगाध पाण्डित्य और बुद्धिमत्ता से बडे प्रभावित हुए थे। उधर स्वामीजी के गुरु भाई मेरठ से उन्हें विदाई देकर भी अधिक दिनो उनसे अकेले नही रह सके और मेरठ से दिल्ली पहुँचकर उन्हे आ घेरा। स्वामीजी के हृदय मे नि सग—एकाकी भ्रमण की धारणा दृढता के साथ जम चुकी थी। भीतर ही भीतर यह अनुभव कर रहे थे कि कोई उच्च शक्ति अलक्षित रूप मे उन्हे नि सग भ्रमण करने की ओर प्रेरित कर रही है। जैसे कोई उन्हे आदेश कर रहा है। इस प्रकार कुछ दिनो गुरु भाइयो के साथ रहने के बाद फिर एक दिन वे अकेले चल पडे। इसी समय से उनका अज्ञातवास आरम्भ हुआ। स्वामी अखण्डानन्द अज्ञात अवधि मे ही अमेरिका यात्रा पूर्व एक आध बार—और एक बार स्वामी त्रिगुणानन्द एव एक बार ही स्वामी अभेदानन्द उनसे अचानक मिलने मे सफल हुए। स्वामी अखण्डानन्द स्वय अपने 'स्मृतिकण' मे लिखते हैं —

एक दिन दिल्ली से ट्रेन द्वारा प्रस्थानित होकर सन् 1891 की फरवरी को अलवर स्टेशन पर उतरे। राजपथ से अग्रसर होकर अन्त मे जब वे सरकारी डिस्पेंसरी के सामने पहुँचे, तब उन्हे दरवाजे पर एक बङ्गीय सज्जन खडे दिखाई दिये। उनमे 'डाक्टर' होने का अन्दाज लगाकर उन्होने बङ्ग भाषा मे पूछा —"महाशय एखाने साधु सन्यासीर थाकिवार कि एक टू स्थान हइते पारे ? "महाशय यहाँ साधु-सन्यासी रहने के लिए एक जगह हो सकता है ?" उपस्थित सज्जन वास्तव मे वहाँ के डाक्टर ही थे—नाम था—श्री गुरुचरण लस्कर। बहुत दिनो से विदेश मे है—बगला बोली सुनने को नही मिलती। इस स्थिति मे वे एक कमनीय वदन तरुण सन्यासी के मुह से अचानक बगला बोली सुनकर बडे आनदित हुए और ससम्मान प्रणाम कर बोले—'निश्चय, आसने आज्ञा हय, आसून' (निश्चय, आइये, आज्ञा कीजिये पधारिये।)

स्वामीजी को अपने साथ लेजाकर डिस्पेंसरी (दवा खाना) से थोडी दूर आगे बाजार मे—एक दुमजिला मकान दिखाया और बोले—"एईखाने थाकिते कष्ट हवे कि ?

'यहाँ रहने मे कष्ट होगा क्या ?'

स्वामीजी ने प्रसन्न होकर कहा—'किछ ना' (कुछ नही)।

डाक्टर साहब ने उसी समय कुछ प्रयोजनीय चीजें स्थान मे लाकर रख दी। स्वामीजी के पास उस समय एक गेरुआ वस्त्र, एक दण्ड, एक कमण्डलु और कबल मे बँधी हुई दो-चार पुस्तको के अतिरिक्त और कोई समान नही था। इतना प्रबन्ध करके डाक्टर लस्कर अपने एक मुसलमान मित्र के—जो स्थानीय हाई स्कूल मे उर्दू और फारसी के अध्यापक थे, पास पहुँचे और उनसे बोले—"मौलवी साहब, यह एक बगाली दरवेश यहाँ आये हैं, जल्दी आइये दर्शन कीजिये। ऐसे महात्मा के दर्शन दुर्लभ हैं। देखने को नही मिलते। आप इन से बातचीत कीजिये। मैं अपना थोडा सा काम पूरा करके आता हू।"—मौलवी साहब, उसी समय डाक्टर साहब के साथ चले आये और नगे पावो कमरे मे स्वामीजी के समीप उपस्थित हो भक्ति भाव से झुककर सलाम किया। स्वामीजी ने बडे प्रेम से उन्हे अपने पास बैठाया और 'धर्म' विषय बातचीत करते हुए बोले—कुरान की ये दो विशेषताएँ हैं कि, आज तक उस पर कोई कलम नही चला सका है। 1100 वर्ष पहले वह जैसा था, आज भी ठीक उसी रूप मे है। कही एक भी नयी बात नही घुमाई जा सकी प्राचीन पुस्तक की इस प्रकार विशुद्धता आज तक देखने मे नही आई। उधर डाक्टर साहब ने सरकारी डिस्पेंसरी मे पहुँचकर अपना काम निबटाया और समागत लोगो को स्वामीजी के आगमन का समाचार साथ ही सुनाते गये। यथासमय डाक्टर साहब भी अपना दैनिक कर्त्तव्य पूरा कर स्वामीजी को अपने आवास-स्थान पर लिवा ले गये और भोजनोपरात पुन. उसी नियत कमरे मे पहुँचा गये।

स्वामीजी के समीप लोक समागमन बढने लगा। दर्शनालोभियो मे मौलवी साहब के मुसलमान भाई-ब्रन्द भी—ईश्वरीय ज्ञान की बातें सुनने के लिए उत्सुकता पूर्वक पहुँचने लगे।

स्वामीजी धर्मोपदेश करते समय बीच-बीच मे उर्दू की गजल, हिन्दी भजन, बगला कीर्तन एव विद्यापति, चण्डीदास, रामप्रसाद के पद सुनाकर श्रोताओ को मत्रवत मुग्ध कर लेते थे। कभी उपनिषद, पुराण, कुरान और बाइबल आदि धर्म ग्रन्थो की वचनावली और साथ-साथ बुद्ध, शकर, रामानुज, चैतन्य, नानक, कबीर, तुलसीदास और रामकृष्ण, देव प्रभृति महापुरुषो के जीवन की नाना घटनाएँ प्रमाण स्वरूप उद्धृत करके धर्म का सजीव चित्र आँखो के समक्ष उपस्थित कर देते थे।

यो दो-चार दिन बीत गये। स्वामीजी के समीप पहुँचने वाले धर्मानुरागियो के विचार से वह स्थान छोटा होने के कारण अपर्याप्त समझा गया। उन्होने यह सलाह की कि, लोगो के लिए शहर के बीच मे स्थान रहने से स्वामीजी के दर्शन और सेवा करने मे सुविधा रहेगी। अतएव अवकाश प्राप्त इजिनीयर पण्डित शम्भुनाथजी का भवन उपयुक्त स्थान समझा गया। तदनुसार स्वामीजी को भक्तानुरोधवस पूर्व स्थान त्याग कर पण्डित शम्भुनाथ जी के मकान का निवास स्वीकार करना पड़ा। वहाँ प्रति दिन प्रात काल उठकर वे 9 बजे तक अपने स्नान-ध्यान-भजनादि पूरा करने मे सलग्न रहते थे। इसके बाद बाहर आकर सामागत लोगो से सलाप करते थे। पचास-चालीस तक आदमी उनकी प्रतीक्षा मे बैठे रहते थे। प्रति दिन का यही क्रम नियत सा था। स्वामीजी के सत्सङ्ग का लाभ उठाने वालो मे भेद भाव वर्जित साधारण, असाधारण, पण्डित, मूर्ख, युवा, वृद्ध, सिया-सुन्नी, वैष्णव, शैव सभी तरह के लोग देखे जाते थे—

दोपहर—मध्याह्नतक समुपस्थित जनसमूह सम्भाव से जमा रहता था। स्वामीजी के मुख को विराम नही था। जो कोई जो कुछ पूछता उसके प्रश्न का वे तुरन्त उत्तर देते थे। कभी भी ऐसा होता कि वे ज्ञान, भक्ति, वैराग्यादि उच्च विषयो मे अप्रतिहत गति से धारा प्रवाह बोले जा रहे हैं। ऐसे ही दुर्लभ प्रसग के बीच मे बाधा देकर एक अविवेचक श्रोता प्रश्न कर बैठा—'महाराज, आपका शरीर किस जाति का है?'—अवश्य ही और कोई होता तो सभवत वह ऐसे अप्रासगिक प्रश्न का उत्तर ही नही देता किन्तु स्वामीजी ने विना किञ्चित विरक्ति प्रकाश किये—तुरन्त उत्तर दिया—'यह कायस्थ शरीर है।' थोडी देर के वाद एक दूसरे आदमी ने पूछा—महाराज, आप गेरुआँ वस्त्र क्यो पहनते है? स्वामीजी ने उत्तर दिया—यह फकीर का भेष है। सफेद कपडा पहनने से गरीब लोग हमसे भीख माँगते हैं। लेकिन मैं तो फकीर हूँ। भीख कहाँ से दू? इसलिए मैंने गरीबो का भेष बनाया। माँगने वाला गरीब यह समझकर कि, यह खुद ही माँगने वाला है। इसके पास क्या है?

श्रोताओ मे से फिर कोई आवाज नही आई। इसके बाद फिर स्वामीजी का तत्त्व प्रवाह चलता रहा प्रसगवश शक्ति उपासना की वात उठी। जगजननी का महात्म्य कीर्तन करते-करते स्वामीजी के प्राण इस प्रकार नाच उठते कि, मुह मे दूसरी वात नही—केवल माँ! माँ!! ध्वनि, पहले उच्च कण्ठ से, बाद मे धीरे-धीरे, क्रमश अति अस्फुट स्वर मे वही ध्वनि बाह्य छोडकर अन्तर के अन्तरतम प्रदेश मे जा मिलती। साथ-साथ उनका सर्वाङ्ग स्थिर हो जाता एव दोनो आँखो से आँसू (नेत्र-जल) बह निकलते थे।

श्रोतागण उस भाव-दर्शन से मुग्ध विमोहित होकर उनके मुख को निहारते रहते। इसके बाद फिर स्वामीजी गाना आरम्भ करते। उनके मधुर कण्ठ स्वर से

नेत्रो का स्निग्धवारि मिलकर भक्तो के हृदय मे भगवत्प्रेम की भाव-धारा मे परि-प्लावित कर देता। कभी-कभी दार्शनिक प्रसग और तत्त्व कथा छोड़कर विभिन्न देश और जातियो की रीति नीतिसूचक अचरज भरी विचित्र कहानिया सुनाकर हँसी के हिलोर मे अनोखी उपदेश प्रणाली का अवलम्बन करते। इतने मे मध्याह्न के भोजन का समय हो जाता और गृहस्वामी पण्डित शम्भुनाथ जी भोजन के लिए स्वामीजी को भीतर लिवा ले जाते। भोजनोत्तर फिर बाहर आकर स्वामीजी देखते कि आस-पास के गाँव के लोग बैठे उनकी प्रतीक्षा कर रहे है। अतएव पुन वे उपदेशामृत वर्षाने लगते।

सायकाल जब स्वामीजी भ्रमण के लिए बाहर निकलते तब भी अन्ततः दश-बारह आदमी उनके साथ रहते। रात्रि को दैनिक कामो से छुटकारा पाने के बाद और भी अधिक लोग एकत्र हो जाते। उस समय स्वामीजी गाना आरम्भ करते और उपस्थित जनमण्डली भी अपने स्वर मे स्वर मिलाकर गाने के लिए कहते। खास बात यह थी कि, कोई एक बगला कीर्तन गान ले जाता। और यो दो-चार दिन के अभ्यास के बाद कितने ही लोग स्वामीजी के स्वर मे स्वर मिलाकर बगला कीर्तन गान गाने मे सफल हो जाते। बीच बीच मे नृत्य भी होने लगता था। स्वामीजी के साथ लोग भी नाच उठते।

अलवर—वैष्णव प्रधान स्थान है। वहाँ राधा-कृष्ण विषयक गीत बहुत गाये और सुने जाते हैं। एक दिन स्वामीजी ने भी अपने मधुर कण्ठ से गाया—

(आमि) गेरुया वसन अङ्गेते परिये शखेर कुडल परि।
योगिनीर वेशे याव सेई देई देशे यथाय निष्ठु हरि॥
(आमि) मथुरा नगरे प्रति घरे घरे।
खुजिब योगिनी हये।
यदि कोन घरे मिले प्रानवधु,
बाँधिब अञ्चल दिये।
आमि अपन वधुया आपनि बाँधिब,
राखिते मारिबे केऊरे
यदि दाखे केऊ त्यजिब ए जीउ
नारिवध दिब तारे।"

गाते-गाते स्वामीजी के नेत्रो से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। सबकी दृष्टि उस समय तेजस्वी साधु की अविचल मूर्ति की ओर। कोई सोचते हैं— अवश्य ही बाबाजी ने वृन्दावन चन्द्र के दर्शन पा लिए हैं। इसी लिए तो इतने प्रेम विभोर हो रहे हैं। अन्यथा हम लोग भी तो उसको पुकारते हैं। किन्तु कहाँ—हम लोगो को तो इतनी तन्मयता नही होती। कोई समझते हैं—यह ईश्वर की विभूति है। इन्होने निश्चय ही आत्म साक्षात्कार कर लिया है।

स्वामीजी जितने बगला-गीत गाते थे श्रोताओ की सुविधा के लिए गाने से पहले उनका हिन्दी मे अर्थ समझा दिया करते थे। उन गानो को कितने ही लोग कण्ठस्थ कर लेते थे। कोई-कोई भूल जाने के डर से लिख लिया करते थे। इस प्रकार आनद से दिन बीतने लगे। कितने दिन निकल गये किसी ने इसका कोई हिसाब नही रखा—विचार भी नही किया। इसी आनद मे किसी-किसी दिन रात के 4 बज जाते थे। सब लोग अपने अपने घरो को जाने लगते, तब स्वामीजी की महिमा का वखान करते जाते। एक ने कहा—बाबाजी का हृदय आनद से भरपूर है—मुह सदा हँसी से खिला रहता है। दूसरा बोला—अरे साहब, ऐसा सुन्दर लोक पाठ क्या कभी और किसी के कण्ठ से सुना है? तीसरा उनके कण्ठ मे नाद है। यह सुनकर एक ने कहा—इतना ही नही—उनमे मुग्ध कर लेने वाला कोई विशेष विद्युतिक शक्ति है।

एक बोला—"और देखा, प्रकृति कितनी मधुर है एक आदमी अहमक की तरह अनाप शनाप बात पूछ उठा उस पर भी नाराज नही हुए—और उसकी बात का पूरा जवाब दिया। इस पर एक ने अपनी सम्मतियाँ प्रकट की—'इनमे रागद्वेष का लेश भी नही, सिद्ध पुरुष है देखते हो—इच्छा होती है कि दिन रात इनके पास बैठे रहे। उन पास पहुँचने वाले सभी व्यक्ति यह अनुभव करते कि हमारे प्रति स्वामीजी का स्नेह अधिक है किन्तु स्वामीजी के हृदय मे कोई भेद-भाव नही था। हाँ, गरीब दीन दरिद्र के प्रति उनकी प्रीति अधिक दिखाई देती थी। अलवरी प्रेमी मे पूर्वोलिखित मौलवी साहब मुख्य थे। एक दिन स्वामीजी को अपने घर पर लेजाकर भोजन कराने की उनकी प्रबल आकाक्षा हुई। उन्होने मन मे सोचा—स्वामीजी तो एक ऊँचे फकीर हैं उनके मन मे कोई भेद-भावना नही, इसी विचार मे कई दिन निकल गये। एक दिन शाम सदा की भाँति मौलवी साहब स्वामीजी के दर्शन करने के लिए पहुँचे और सबके सामने हाथ जोडकर बोले—पडित जी, आप अगर इजाजत दें तो मैं कल स्वामीजी को अपनी झोपडी पर ले जाकर भिक्षा कराना चाहता हू उसके लिए मैं ऐसा बदोबस्त करूँगा कि किसी को कुछ कहने की गुंजाइश नही रहेगी। बैठक का सब सामान हटाकर पानी से अच्छी तरह धुला दूगा। ब्राह्मण के घर से पीतल के बर्तन और बाजार से रसोई का सामान मँगवाकर ब्राह्मण से भोजन तैयार कराया जायेगा और स्वामीजी मेरे घर मे बैठकर सेवा ग्रहण करेंगे और यह अधम यवन दूर से उनको भोजन करते देखकर कृतार्थ होगा। मौलवी साहब ने ऐसी नम्रता और सौजन्य से अपनी बात कही कि उनकी आत्मपरता मे किसी को भी कोई सदेह नही हुआ और पण्डितजी हँसकर उनसे हाथ मिलाकर बोले—दोस्त—स्वामी के लिए जात-पाँत क्या? तुम्हारी जैसी मर्जी लेकिन मैं समझता हूँ तुमको इतनी तकलीफ उठाने की कोई जरूरत नही और—तुमने जैसा बन्दोवस्त करने की बात की है—इसमे स्वामीजी

की बात छोड दो—खुद मैं भी तुम्हारे घर पर बिना हिचकिचाहट के भोजन कर सकता हूँ। पडितजी का कथन पूरा होते ही सब हँस पडे और मौलवी साहब को लेकर विनोद होने लगा। दूसरे दिन मौलवी साहब की अभिलाषा पूर्ण हुई। स्वामीजी ने उनके घर पर जाकर भोजन करने मे आनन्द माना यह देखकर दूसरे प्रेमियो का भी उत्साह बढा और यही सब अपने-अपने घर ले जाकर स्वामी जी की भिक्षा कराके कृतार्थ हुए।

धीरे-धीरे अलवर-नरेश दीवान मेजर रामचन्द्र जी के कानो तक यह बात पहुँची कि शहर मे दर्शनीय एक विलक्षण साधु आये हुए हैं। यह जानकर दीवान साहब स्वय उपस्थित हुए और स्वामीजी को बडे आदर के साथ अपनी हवेली पर लिवा ले गये। थोडी देर बात-चीत करने पर दीवान साहब ने यह अनुभव किया कि यदि महाराज मगल सिह से इन महात्मा को मिलाया जाय तो उनकी अग्रेजो की चाल-ढाल ग्रहण करने अन्धानुकरण प्रवृत्ति पर प्रभाव पडना सभव है। यही सोचकर उन्होंने महाराज की सेवा मे इस आशय का पत्र भेजा "यहाँ एक बहुत बडे अग्रेजी के विद्वान सन्यासी आये हुए हैं। श्रीमान इनसे वार्त्तालाप कर अवश्य प्रसन्न होगे। महाराज मगलसिह उस समय शहर से बाहर दो-तीन मील दूरी पर बनी हुई अपनी कोठी मे अवस्थान कर रहे थे। दीवान साहब का पत्र पाकर दूसरे दिन ही वे शहर मे आये और दीवान जी की हवेली पर स्वय उपस्थित होकर स्वामीजी से भेंट की।

"स्वामीजी महाराज, सुना है, आप तो बहुत बडे विद्वान है आसानी से खूब रुपये पैदा कर सकते हैं। ऐसा न करके भीख मागते क्यो घूम रहे हैं ?" पहला प्रश्न महाराज ने यही किया। उत्तर मे स्वामीजी ने कहा—क्या 'महाराज, बता सकते हैं, कि, आप राजकाज की परवा न कर रात-दिन साहबो के साथ खान-पान करने और शिकार खेलने मे क्यो लगे रहते हैं ? अलवर नरेश के दरबारियो के लिए स्वामीजी का यह स्पष्ट उत्तर नयी बात थी और वे मन ही मन आश्चर्य कर रहे थे। किन्तु महाराज ने स्वामीजी का कथन धीरता के साथ सुना और पश्चात् थोडा सोचकर बोले—'मैं ऐसा क्यो करता हूँ, कह नही सकता, परन्तु हाँ, मुझे वह पसन्द है।'

तो बस, ठीक है, इसी तरह मुझे भी फकीरी लेकर घूमना पसन्द है।

महाराज ने फिर पूछा—अच्छा, बाबाजी महाराज ये सब जो मूर्ति पूजा करते हैं, उसमे मेरा कतई विश्वास नही है। इसके लिए मेरी क्या दशा होगी ?" यह कहकर महाराज हँस पडे। स्वामीजी को ऐसा मालूम दिया मानो महाराज मूर्ति पूजा पर कटाक्ष कर रहे हैं। अतएव उन्होने कहा—"मालूम होता है, महाराज मजाक कर रहे हैं।"

उत्तर मे महाराज बोले— नही स्वामीजी ! यह बात नही है। देखिये वास्तव

मे मैं दूसरे लोगो की तरह काठ, मिट्टी, पत्थर, धातु इन सबकी पूजा नही करता—तो क्या अगले जन्म मे मेरी अधोगति होगी ? इस पर स्वामीजी ने विशेष कुछ नही कहा, इतना ही बोले—'जिसका जैसा विश्वास।'

यह प्रश्नोत्तर सुनकर स्वामीजी के भक्तो के हृदय पर बडा धक्का लगा और वे अपने मन मे सोचने लगे कि, यह क्या बात हुई ? स्वामीजी ने महाराज की बात पर अन्त मे यह क्या उत्तर दिया ? इससे तो महाराज की श्रद्धा हीनता की भावना को ही सहारा मिलेगा। न जाने कैसे स्वामीजी ने यह ठकुर सुहाती बात कही। यह तो उनका निज का भाव नही है। उपस्थित जनो मे सभी लोग मूर्ति पूजा मे दृढ विश्वास रखने वाले तथा श्रीकृष्ण के भक्त थे। स्वामीजी की कृष्ण भक्ति भी उनमे से अनेको ने अपनी आँखो देखी थी। किसी किसी दिन स्वामीजी को श्रीविहारीजी के सामने प्रेम से गद्‌गद्‌ होकर आँसू बहाते देखने का अवसर पा चुके थे। अतएव इस समय स्वामीजी के कथन से उनके हृदय मे सदेह की भावना पैदा हो गई।

ठीक इसी समय स्वामीजी ने सबको अपने प्रत्युत्पन्नमतित्व और निर्भीकता से स्तंभित कर दिया। सामने दीवाल पर अलवर महाराज का एक फोटो टँगा हुआ था। उस पर नजर पडते ही स्वामीजी ने एक हजूरी को इस चित्र पट को उतार कर लाने को आदेश दिया। तदनुसार वह उस फोटू को दीवाल पर से उतार कर स्वामीजी के सामने लाया। इस पर स्वामीजी ने पूछा यह किसका चित्र है ? दीवान साहब ने उत्तर दिया—

हमारे महाराज का। सभी इस विचार मे पड गये कि, स्वामीजी का मत क्या है ? पर कोई कुछ भी अनुमान नही कर सका। कुछ क्षणो के बाद ही स्वामीजी ने कहा, दीवान जी, इस चित्र पर थूकिये यह सुनते ही सब भय से काँप उठे। ओह! महाराज के सम्मुख ही उनकी शान के खिलाफ यह बात स्वामीजी ने फिर उनकी ओर देखकर कहा—आप सब मे से कोई भी हो—इस चित्र पर थूके। किसी को भी इसके लिए आगे बढते नही देखा तो स्वामीजी बोले—क्यो क्या बात है ? यह तो एक कागज मात्र है। इस पर थूकने मे आप लोगो को इतनी आन है ?" सुनते ही सन्नाटा-सा छा गया—दीवान जी हक्के बक्के रहे और सभी भय के मारे कभी महाराज के मुँह की ओर और कभी स्वामीजी की ओर ताकने लगे। किसी के मुह से कोई बात नही निकल पाती। इतने मे दीवान साहब ने डरते-डरते कहा—स्वामीजी, आप यह क्या फरमा रहे हैं यह हमारे महाराज का फोटो—प्रतिकृति है इसके प्रति हम लोग ऐसा असम्मान प्रदर्शन कैसे कर सकते है ? स्वामीजी बोले—क्यो, महाराज तो सशरीर इस चित्र मे विद्यमान नही हैं ? इसमे तो न उनका हाड-मास-रक्त है, और न बोलचाल यह तो केवल एक कागज का टुकडा है, तिस पर भी आप लोग उस पर थूकने मे इतना भय और सकोच क्यो कर रहे हैं ? फिर भी—किसी ने कोई उत्तर नही दिया। और इस

स्तब्ध और क्षुब्ध वातावरण मे स्वामीजी स्वय ही बोले— डरते क्यो हो ? इसी लिए न, इस फोटो मे आप लोग महाराज का सादृश्य अर्थात् प्रतिबिम्ब देख रहे हैं और अतएव इसके ऊपर थूक डालने मे आपको यह अनुभव होता है कि जैसे स्वय महाराज के शरीर पर थूक डाल रहे हैं। यह सुनते ही दीवान जी और उपस्थित व्यक्तियो के जी मेंजी आया और उन्होने कहा—हुक्म महाराज, यही बात है ।—इस पर स्वामीजी महाराज की ओर मुडकर बोले—महाराज, देखिये, यद्यपि यह चित्र है, आप नही हैं—एक कागज का टुकडा भर है, तथापि ये लोग इसको ठीक आपके समान ही समझते हैं कारण इसमे आपका प्रतिबिम्ब विद्यमान है। इस लिए एक हिसाब से इस चित्र के साथ आपका कोई भेद नही है। उसकी ओर देखते ही आपकी स्मृति का इनके मन मे भाव सचार हो जाता है। इन्हे ऐसा अनुभव होता है जैसे आप स्वय सामने विद्यमान है। यही कारण है कि, सभी लोग प्रकृत महाराज के प्रति जैसे सम्मान प्रदर्शन करते हैं, वैसे ही इस चित्र-पट को भी आदर की दृष्टि से देखते है।

भगवद्भक्त भी पत्थर एव धातु निर्मित देव देवी की मूर्ति को इसी भाव से देखते हैं। वे पत्थर किवा धातु समझकर इन सब मूर्तियो की उपासना व पूजा नही करते उसके भीतर ईश्वर अथवा ईश्वर की किसी लीला का भाव प्रत्यक्ष करते हैं। मूर्ति केवल मन मे आराध्य देवता की स्मृति दिलाकर अथवा उसके किसी गुण का स्मरण करा के भाव उद्दीप्त करती है। यही वास्तविक प्रतीमोपासना का तत्त्व है। मैंने बहुत स्थानो मे भ्रमण किया है किन्तु कही भी मूर्तिपूजक को यह कहते नही देखा है कि 'हे पत्थर मै तुम्हारी उपासना करता हू, हे धातु मेरे ऊपर दया करो। महाराज, समाज ही उस एक पूर्ण परब्रह्म सत्ता की उपासना करते हैं एव वह भी भक्ति के भाव और आकाक्षा के अनुरूप उसके समक्ष आत्म-स्वरूप व्यक्त करता है। पाषाण व धातु मूर्ति दिखते ही ईष्ट का मन मे ध्यान आता है इसीलिए भक्त मूर्ति इतना सम्मान करता है। मैं तो इसी भाव से देखता हूँ। महाराज ! दूसरो की बात कह नही सकता।

महाराज मगलसिह, इतनी देर तक एकाग्रचित्त से स्वामीजी के वचन सुनते रहे। जब स्वामीजी का कथन पूरा हो चुका तब हाथ जोडकर बोले—भगवन्, आपने जो कुछ कहा है, उसका अक्षर-अक्षर सत्य है। इतने दिनो मैं अन्धकार मे था। कुछ भी नही समझ सका था। आज मेरी आँखें खुल गईं !

स्वामीजी चलने के लिए खडे हो गये—यह देखकर महाराज मगल सिह बोले—"महाराज मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिये।" तत्क्षण उत्तर मे स्वामीजी ने कहा—राजन्, परमात्मा के बिना कोई किसी पर अनुग्रह नही कर सकता। वह असीम करुणासिन्धु है। आप उसकी शरण ग्रहण करें। वह निश्चय ही आप पर कृपा करेंगे। स्वामीजी के पधार जाने के बाद महाराज मगल सिह कुछ क्षण मौन

भाव से बैठे रहे। तदनतर बोले—दीवान जी, ऐसा महात्मा और कभी नही देखा—इनको कुछ दिनो ठहरा न सकोगे ? दीवान जी ने यथा साध्य महाराज का आदेश पालन करना स्वीकार किया और कहा—कह नही सकता महाराज कारण यह एक अति तेजस्वी और स्वाधीनचेता व्यक्ति है। यहा रहने के इच्छुक नही होगे। फिर भी मैं जहाँ तक हो सकेगा प्रयत्न करूँगा।

पश्चात् अवसर पाकर दीवान जी ने अलवराधीश के अभिप्राय से स्वामीजी को अवगत करने के साथ कुछ दिनो अलवर मे और विराजने को विशेष अनुरोध किया। इस पर स्वाजीजी दीवान जी के अनुरोध की रक्षा मे उनके स्थान मे अवस्थान पूर्वक आतिथ्य ग्रहण करने के लिए सहमत हो गये, इस शर्त्त पर कि, जो धनी, दरिद्र, पण्डित, मूर्ख सभी तरह के लोग बिना समझ के उनके पास आते हैं, इसके बाद भी वे उन लोगो के यातायात मे किसी प्रकार की रोक-टोक या बाधा नही रहेगी।

स्वामीजी दीवान जी की हवेली मे पहुँचकर वहाँ अपना आसन लगा लिया और दीवान जी ने उनकी इच्छा के अनुसार सब सुविधाए कर दी।

उस समय स्वामीजी के सम्पर्क मे आने वाले बहुत व्यक्तियो के जीवन की गतिविधि बदल गई। वे सभी जन उन्हे इतना प्यार करने लगे थे कि, जब स्वामीजी अलवर से अन्यत्र जाने की बात उठाते तभी उनके चेहरो पर उदासी आ जाती और वे हाथ जोडकर कहते कि, महाराज दया कर कुछ दिनो यहाँ और ठहरिये। आपको छोडने की इच्छा नही होती। दयालु स्वामीजी का अपने अलवरी भक्तो के प्रेमवश वहाँ से प्राय महीने भर जाना नही बना।

कुछ दिनो की घटना है। एक वृद्ध प्रतिदिन ही उनके समीप उपस्थित होकर आशीर्वाद और कृपा का प्रार्थी हुआ करता। स्वामीजी ने उसको कुछ उपदेश देकर तदनुसार कार्य करते रहने के लिए बल दिया था किन्तु वह आदमी उनके उपदेशानुसार जपादि न करके अपनी आदत से लाचार रहा—वह जब तब आता, यही कहता मुझ पर कृपा कीजिये—मुझे आशीर्वाद दीजिए। बहुत दिनो तक उसका यह क्रम चालू रहा। उसकी यह आदत स्वामीजी को अच्छी न लगी। एक दिन दूर से ही उसको आता हुआ देखा, उसके हाथ से छुटकार पाने के लिए उन्होने अचानक—गभीर भाव धारण कर लिया। वूढे ने पहुँचते ही वही अपना राग आलापना शुरू किया और सैकडो व्यर्थ बातें कह डाली। किन्तु स्वामीजी बिलकुल चुपचाप निर्वाक निश्चल बने बैठे रहे। यहाँ तक पहले से आये हुए जिन लोगो से वार्त्तालाप कर रहे थे, उनकी बातो का उत्तर देना बन्द कर दिया। कोई भी उनके इस आकस्मिक मौनावलवन के कारण का अन्दाज न लगा सका। इसी भाव मे डेढ घटा बीत गया—स्वामीजी पत्थर की सी मूर्ति बने बैठे रहे। उनकी पलकें भी न झपी। अन्त मे जब वह आदमी क्रुद्ध होकर बडबडाता हुआ—वहाँ से उठकर

चला गया। तब स्वामीजी बच्चो की तरह बडे जोर से हँसे और उनके साथ उपस्थित लोग भी हँस पडे। यह देखकर एक युवक ने पूछा—बाबाजी महाराज, उस बूढे के साथ आपने यह मजाक क्यो किया? स्वामीजी ने सस्नेह दृष्टि से उनकी ओर देखकर कहा—बाबा, तुम्हारे जैसे युवको के लिए मैं अपने प्राण विसर्जन करने मे भी कुण्ठित नही, क्योंकि तुम लोग बालक हो, मैं जो कहूँगा। प्राणपण से उसे कार्य मे परिणत करने का प्रयत्न करोगे — ऐसा करने की शक्ति भी तुम मे है। किन्तु यह बूढा आदमी जिसने जीवन की तीनो अवस्थाएं इन्द्रिय—सेवा मे बिता दी, अब ऐहिक एव पारमार्थिक उभय विध-पथो के पक्ष मे अक्षम और अपटु है, सुतरा इस समय यह सस्ते मे फाँकी देकर ईश्वर दया खोज रहा है यदि सहज मे ही उसे प्राप्त कर सके। पुरुषार्थ बिलकुल है नही। किन्तु पुरुषत्व वर्जित व्यक्ति के ऊपर क्या ईश्वर की दया होती है। समझकर देखो—अर्जुन जैसा महावीर कुरुक्षेत्र मे पौरुष खोने पर उद्धृत हो गया था, तो श्रीकृष्ण ने गीता का उपदेश देकर उसके पुरुषार्थ को जगाया। जिसमे पुरुषार्थ नही,—वह तो तमोगुण आच्छन्न है। तमोगुणी मे क्या धर्म होता है? उसे पुरुषार्थ मे अवलम्बन से रजोगुणी बनाना होगा। स्वधर्मपालन, निष्काम कर्म-साधन आदि द्वारा सत्वगुण लाभ करना होगा। तब धर्म लाभ होगा। जो गृही स्वधर्म पालन नही करता किसी निष्काम कर्म का अनुष्ठान नही करता उसमे निवृत्ति आवेगी कहाँ से और कैसे? वह है निवृत्ति—अथच प्रवृत्ति का कोई कार्यानुसार करेगा नही—वह महातमोगुणी है। चोर होकर चोरी कर सकता है—मेरे मत से ऐसा दृढ दुष्ट आदमी भी अच्छा है, कारण उसका पुरुषकाय आत्मशक्ति मे विश्वास है, एक दिन वही दृढता आत्म निर्भरता, उसको कुपथ से सुपथ लौटाकर ले आवेगी और असत्य की जगह सत्य तथा प्रवृत्ति की जगह निवृत्ति को उसके हृदय में प्रतिष्ठित किन्तु दुर्बल व्यक्ति के द्वारा कोई कार्य सिद्ध नही हो सकता चाहे उसका उद्देश्य कितना ही साधु हो और कितना ही सत्सग करे।

स्वामीजी के उपदेशानुसार अलवर के कितने ही नवयुवको ने सस्कृत भाषा पढना आरम्भ किया। समय-समय पर स्वामीजी स्वय यह शिक्षा देते और कहते—सस्कृत विद्या की खूब चर्चा करो परन्तु साथ-साथ सत्य विज्ञान के अनुशीलन द्वारा हमारे राष्ट्रीय इतिहास को वैज्ञानिक भित्ति पर प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न करो। कारण सम्प्रति इस देश का इतिहास अतिशय असम्पूर्ण एव घटनाओ के पौर्वापर्य रक्षण के विषय मे उदासीन है और अगरेज लेखको ने इस देश के जो त्रस्त इतिवृत्त लिखे हैं, उनमे हमारे अध पतन के चित्रो को ही साफ रगो मे चित्रित किया गया है। उनको पढने पर हृदय मे दुर्बलता उपस्थित होती है। वे विदेशी इतिहास लेखक इस देश के आचार, व्यवहार, धर्म, दर्शन, सामाजिक रीति—सभी विषयो से अनभिज्ञ रहे। उनके द्वारा इस देश का निरपेक्ष इतिहास रचित होना कभी

सभव नही। सुतरा उनकी रचना मे जो शत-शत भ्रम प्रमाद तथा अपसिद्धात दिखाई दें, इसमे आश्चर्य का विषय क्या है ? फिर भी यूरोपीय विद्वानो ने हमे शिक्षा दी है कि, कैसे पुरातत्त्व आलोचना और प्राचीन वृत्तान्त सग्रह किया जाता है। इस समय हमे इन सब मार्गों मे स्वाधीन भाव से विचरण करना उचित और प्रयोजनीय है। वेद, पुराणादि—भारत के प्राचीन इतिहास समूह का पाठ करो और उसकी सहायता से भारत के एक यथार्थ इतिहास सकलन करो। शिवाजी के जीवन का अनुसधान करो—देखोगे वह एक राष्ट्र, जाति—प्रतिष्ठाता महाशक्ति-शाली पुरुष था, अगरेज-ऐतिहासिक-चित्रित दस्यु नही। वास्तव मे वैदिक काल से बुद्ध के अन्तर्धान के बाद एक सहस्र वर्ष—पर्यन्त का हमारा कोई धारावाहिक इतिहास नही मिलता।

अवश्य ही अब इस विषय मे एक नवयुग का प्रवर्त्तन हुआ है किन्तु भारत का इतिहास भारत-सतान कर्तृव्य ग्रथित होना उचित है। तुम लोग विस्मृति-सागर के उस लुप्तरत्न का उद्दार करने के लिए बद्धपरिकर हो जाओ। वही प्रकृत जातीय शिक्षा का द्वार उन्मुक्त करेगा और उसकी क्रमोन्नति के साथ देश मे प्रकृत देशानुराग जाग्रत होगा।

अलवर निवासी युवक स्वामीजी के विशेष स्नेह के पात्र बन गये थे। वे उनके कल्याण के लिए नियत प्रार्थना करते और उनके हृदय मे स्वदेशानुराग की अग्नि प्रज्वलित थी। और उन युवको ने उनको अपने नेता और गुरु-स्वरूप वरण किया था।

एक दिन स्वामीजी ने पूछा—'यहाँ निकट मे कोई साधु है कि नही।' उत्तर मे एक युवक ने कहा—'थोडी दूर पर एक वृद्ध ब्रह्मचारी हैं।' स्वामीजी ने कहा मुझे उसके पास ले चलो और उसके साथ दर्शन-मेला कराओ।

आदेशानुसार युवक स्वामीजी को साथ लेकर चल पडा। मालूम होता है, ब्रह्मचारी जी वैष्णव थे और वैदान्तिक साधुओ से विशेष नाराज थे। कारण स्वामीजी ने आश्रम मे प्रवेश करते जब देखा, तभी से गेरुवावस्त्रो की निन्दा और और सन्यासियो पर अयथा आक्रमण करने लगे। स्वामीजी जब पास पहुँच गये तब ब्रह्मचारी जी बोले—तुमने यह गेरुआ क्यो पहना है ? मैं गेरुआधारी संन्या-सियो को अपनी आँखो से देखना नही चाहता। स्वामीजी कोई वाद-प्रतिवाद न कर विनीत भाव पूर्वक ईश्वर और धर्म विपय मे किंचित कोई उपदेश करने का उनसे निवेदन किया। इस पर ब्रह्मचारी ने थोडे प्रसन्न होकर कहा—अच्छा, चलो, आपके ऊपर मेरी उतनी नाराजी नही है, तुम कुछ खाओगे ? हाथ जोडकर स्वामीजी बोले—ना, अभी भिक्षा करके आ रहा हूँ। इस समय और कुछ आहार करना आवश्यक नही आप कृपा कर तत्त्वकी बात कहिये, मैं सुनूगा और ब्रह्मचारी जी स्वामीजी का कथन सुनते ही फिर आग बबूला हो उठा और चिल्लाकर

बोला—तो जा दूर हो—कुछ खायेगा नही तो दूर हो जा। स्वामीजी ब्रह्मचारी के समीप से उठे प्रणाम करके चल दिये। जो व्यक्ति उन्हे साधु का दर्शन कराने लाया था, वह क्षुब्ध और भयभीत होकर अपने मन मे सोच रहा था कि, इस बात से उस पर स्वामीजी रुष्ट हो गये होगे। परन्तु स्वामीजी ने इस घटना को एक विनोदमूलक माना अतएव असन्तुष्ट होने के वदले उनका मुखमण्डल प्रसन्न दिखाई दिया। ब्रह्मचारी के निकट जव तक वैठे थे—उन्होने किसी तरह अपनी हँमी को दबाये रखा किन्तु मार्ग मे पहुँचते ही वे हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये देखकर उनका सहचर भी बिना हँसे न रह सका। स्वामीजी बोले—अच्छा साधु दिखाया बाबा! कितने तीखे मिजाज का आदमी और गाली गलौज की वौछार रे बाबा!" यो उस दिन हँसते-हँसते वे अपने स्थान पर लौटे।

स्वामीजी की गुणावली चरित्र-महिमा और नि स्वार्थ प्रेम ने सवको मुग्ध कर लिया था। प्रति दिन जो लोग उनके पास आते थे उनमे से कोई किसी दिन अनुपस्थित रह जाता तो वे व्याकुल हो उठते थे। और जब किसी को भेजकर उसकी कुशल समाचार न मगा लेते तब निश्चिन्त नही होते।

एक दिन एक गरीब ब्राह्मण बालक आया, जिसका उपनयन सस्कार की अवस्था बीत जाने पर भी उपनयन नही हुआ था। पूछताछ करने पर पता चला कि, जब पेट के लिए अन्न का जोगाड भी नही बैठता तब उपनयन सस्कार की क्या बात? यह बात स्वामीजी के हृदय मे चुभ गई। उनके पास जो कोई आया, उसी को उन्होने कहा—मुझे एक भिक्षा चाहिए। अर्थाभाव से इस दरिद्र ब्राह्मण बालक का उपनयन नही हो रहा है। तुम जैसे गृहस्थगण का कर्त्तव्य है कि, इस विषय मे उसकी सहायता करें। कुछ चन्दा सग्रह करके उसका यह कार्य सिद्ध कर दो साथ-साथ यदि हो सके तो उसकी शिक्षा की भी व्यवस्था कर दो। इतने बडे ब्राह्मण बालक के लिए वर्णाश्रम सस्कार विहीन रहना बडी निन्दा की वात है। फलतः उनके अनुरोध पर भक्तो ने आपस मे चन्दा सग्रह करना आरम्भ कर दिया था। किन्तु शीघ्र अलवर से प्रस्थान कर जाने के कारण उक्त ब्राह्मण बालक का उपनयन सस्कार सम्पन्न होना वे स्वय देख नही सके थे किन्तु इस बात को वे भूले नही। प्राय एक मास बाद भी उन्होने अलवर के एक मित्र को जो पत्र लिखा उसके आरम्भ मे ही यह जिज्ञासा की थी कि, उस ब्राह्मण बालक का उपनयन सस्कार हुआ कि नही?

इस प्रकार प्राय दो महीने व्यतीत होने पर स्वामीजी ने कहा—और यहा रहना नही होगा। यह सुनकर उनके कई शिष्यो ने अपने अपने घर भिक्षा करने के लिए निमत्रित किया। स्वामीजी जब एक दिन एक शिष्य के घर पर पहुँचे तब वह स्नान कर रहा था। स्वामीजी महाराज के विराजने पर शिष्य ने प्रश्न किया—"वावाजी, तेल मालिश से क्या कुछ लाभ है?"

स्वामीजी ने कहा—'है क्यो नही।' एक छटाँक तेल अच्छी तरह रमाने पर एक पाव घी खाने का काम करता है।

आहारादि के पश्चात् नाना कथा-प्रसग मे शिष्य ने प्रश्न किया—'स्वामीजी महाराज, आप कहते हैं कि, चारो ओर हमे खास नजर रखनी चाहिए, सत्यनिष्ठ, अकपट परोपकारी, कर्मठ और असीम साहसी होना चाहिए—'सब बिना हुए गृहस्थ स्वधर्म का पालन नही कर सकता चित्त शुद्धि नही होती किन्तु नौकरी करना तो दासत्व है, उसमे ये सब भाव नही आते देखता हू। उमसे हमे तो अर्थोपार्जन करना होगा। अन्यथा निष्काम कार्यों का अनुष्ठान कैसे करेंगे? आज कल का व्यवसाय तो जिस प्रकार हो गया है। उसके लिए तो आवश्यक है। उसके बाद सरलता नही रहती।—तो महात्मा जी कौन-सा काम करने से सब दिशाए अक्षुण्ण रहती हैं?

स्वामीजी ने उत्तर दिया—देखो इस विषय मे मैंने भी बहुत विचार किया है किन्तु देखता हू चरित्र रक्षित रखकर अर्थ उपार्जन करना कोई नही चाहता है इस विषय को लेकर कोई नही सोचता किसी के मन मे एक समस्या नही उठती। हमारी शिक्षा के दोष से ही यह स्थिति आ पहुँची है। जो हो, मैं तो समझ-बूझ-कर 'खेती बाडी' करना ही अपने मन से बडा अच्छा मानता हू। खेती बाडी की बात कहने पर अब मन मे आता है—तब लिखना पढना क्यो सीखा है? खेती की बात कहते ही प्रथम मन विचार आता है कि, क्या देश भर के लोगो को फिर किसान बनकर खडा होना होगा। देश के लोग किसान तो हैं ही—ऐसा न होने पर ही हमारी दुर्गति है।—महाभारत पढकर देखो, जनक ऋषि एक हाथ हल पर दे रहे हैं और एक हाथ मे वेद अध्ययन करते हैं। हमारे देश मे ऋषियो ने सभी ने यह काम किया है आज कल फिर देखो—अमेरिका खेती बाडी करके ही इतना बडा हुआ है। निहायत किसान-बुद्धि से नही। विद्वान बुद्धिमान की बुद्धि से खेती करनी होगी। गाँवो के लडके दो पृष्ठ अगरेजी पढकर शहर मे भागकर आते हैं। गावो मे अनेक जगह जमीन है उसमे उनका पेट नही भरता, मन की तृप्ति नही होती। शहरी बनकर नौकरी करनी होगी। अन्यान्य जातियो की तरह हमारी हिन्दु जाति भी इसी लिए बढ नही पा रही है। हमारी मृत्यु सख्या इतनी अधिक है कि, यदि इसी भाव से जन्म-मृत्यु चलती रही तो हम मानो मरने को बैठे हैं। इसका एक कारण है कि उत्पादन ठीक परिमाण मे नही होता। शहर मे निवास करने की झोक अधिक है और थोडा पढना-सुनना करते ही किसान का बेटा स्वधर्म त्याग कर गोरो की गुलामी करने को दौडता है। गाव मे निवास करने से परमायु बढती है—रोग तो प्राय होता ही नही। छोटे-मोटे खराब गाँव भी अच्छे हो जायँ यदि लिखे-पढे लोग वहाँ बास करें और विज्ञान की सहायता से खेती बारी करने पर उत्पादन बेशी होने लगे—किसानो की आँख खुल जायँ।

उनकी भी थोडी बहुत बुद्धि का विकास हो, लिखना-पढना करने की इच्छा जगे। और यह हमारे देश मे सबसे अधिक आवश्यक है, यह भी हो जाय।

शिष्य ने आग्रहपूर्वक पूछा—वह क्या स्वामीजी।

स्वामीजी फिर बोलने लगे—"यह छोटी जातियो और बडी जातियो के मध्य मे भाई-भाई के भाव से मेल-जोल हो। यदि तुम लोगो की तरह के कुछ लिखना पढना सीखकर गांवो मे बस कर खेती बारी करें, और किसानो के साथ अपनो की तरह व्यवहार करें, घृणा न करें। ऐसा होने पर देखोगे वे इतने वशीभूत हो जायेंगे कि, तुम्हारे लिए प्राण देने को भी तैयार रहेंगे। इस समय जनसाधारण को शिक्षा देना—हमारे लिए इस समय अत्यावश्यक है। छोटी जातियो के बीच मे धर्म के ऊँचे-ऊँचे भाव फैलाना, परस्पर मे सहानुभूति, प्रेम, और उपकार करना सिखाना यह सब बहुत थोडे आभास मे ही हो जायगा।

शिष्य ने फिर प्रश्न किया - यह कैसे होगा ?

स्वामीजी ने कहा—क्यो, देखो ना गांवो मे छोटी जाति वालो से मेल जोल पर कितने आग्रह के साथ भद्र लोगो का सग करना चाहते है। ज्ञान पिपासा तो सभी मनुष्यो मे रहती है। इसी लिए तो एक भद्रजन को पाकर वे उसे घेर कर बैठ जाते हैं और उसकी बातें अपने गले उतारते रहते हैं। इस सुयोग से यदि कोई भद्र पुरुष अपने घर मे उनको बुलाकर सन्ध्या समय कहानियो के मिस शिक्षा देना आरम्भ करें तो राजनैतिक आन्दोलन करके जो काम हजार वर्ष मे भी न किया जा सके। उससे शतगुणा अधिक फल दश वर्ष मे सामने आ जायेगा। अगले दिन—अर्थात् 28 मार्च को स्वामीजी अलवर से विदा हुए।

अलवर मे विदा होकर स्वामीजी पाण्डुपोल के पथ पर अग्रसर हुए। पाण्डु-पोल अलवर से 18 मील है। स्वामीजी का पहले सकल्प था—पदव्रज से जाने का। किन्तु अपने प्रेमी भक्तो और मित्रो के अनुरोध पर उन्हे रथ द्वारा यात्रा करनी पडी। अलवर निवासी भक्तो की टोली उनके साथ चल रही थी। भक्तो के 50-60 मील तक साथ चलने की अनुमति प्राप्ति के लिए प्रार्थी हुए थे—जिनको स्वामीजी ने बहुत टालना चाहा किन्तु वे सब अपने आग्रह पर डटे रहे। अन्त मे उनके क्षुब्ध होने की सम्भावना देखकर स्वामीजी ने अनुमति दे दी।

पाण्डुपोल पहुँचकर रात्रि उन्होंने वहाँ के प्रसिद्ध हनुमान जी के मन्दिर के प्रागण मे बिताई। दूसरे दिन सवेरे उन्होने गोयान रथ छोड दिया और अपनी मण्डली सहित 16 मील दूरवर्ती 'टहला' गाँव की पद यात्रा प्रारम्भ की। रास्ता पहाडी पथरीला और जगली हिंस्र जीव-जन्तुओ से परिपूर्ण रहने पर भी सब साथी स्वामीजी की मधुर कहानियां और मनोहर सगीत श्रवण करने का आनन्द लेते हुए प्रफुल्ल अन्त करण से चल रहे थे।

यथा समय 'टहला' पहुँचकर वहाँ के नीलकण्ठ महादेव के प्राचीन मदिर मे

विश्राम किया। समुद्र मन्थनकाल मे देवासुर सग्राम के फलस्वरूप विष उद्गीर्ण होने पर किस प्रकार देवाधीदेव महादेव ने उसका पान कर नीलकठ और मृत्युञ्जय आख्या प्राप्त की थी। यह वर्णन करते-करते स्वामीजी ने उस पौराणिक वृत्तात की एक सुन्दर व्याख्या सुनाई। उन्होंने कहा—समुद्र ही माया समुद्र है। यह रूप गन्धादि मय बिचित्र जगत् है माया की रचना। यहाँ इन्द्रिय तृप्ति कर नाना प्रकार भोज्य पदार्थ हैं वही सब पदार्थ जितने भोगकर हैं। परिणाम मे उनसे ही हलाहल उद्गीर्ण होगा। वह हलाहल आत्म ज्ञान का परिपक्व पाकर उनके समीप उपस्थित हुआ।

परन्तु सर्वत्यागी सन्यासी के निकट वह व्यर्थ है, निस्तेज है। भूमानन्द मे मग्न सन्यासी माया के कुहक से प्रतारित नही होता वरञ्च देवादिदेव शकर की भाँति वह इन्द्रिय भोग तत्पर जीव कुल की मरणादि भयावह अवस्था मे सहाय करता है और उनके उद्धार साधनार्थ अपने प्राण उत्सर्ग करता है। वह माया का विनाश करके मृत्यु के कवल से जगत् की रक्षा करता है। मायाजयी पुरुष मृत्यु को भी जीतने मे समर्थ है। यह कहकर स्वामीजी थोडी देर मूर्ति के सम्मुख ध्यानस्थ रहे।

मार्ग मे स्वामीजी भक्तो को गीता-वेद-पुराण, कुरान, बाइबिल भगवान बुद्ध और महावीर की कीर्ति गाथा सुनाते जाते। पाटलीपुत्र मे बुद्ध के सान्निध्य मे एक सभा हुई जिसमे सम्राट, सेनापति, सचिव, बडे-बडे धनकुबेर, नागरिक सभी उपस्थित थे। बुद्ध भगवान से उनके शिष्य आनन्द ने प्रश्न किया—भगवन्! सभा मे उपस्थित लोगो मे सबसे सुखी कौन हैं? बुद्ध भगवान ने सबसे पीछे बैठे फटे कपडो मे बैठे व्यक्ति की ओर सकेत करके कहा—सबसे सुखी व्यक्ति वह है। सभा मे उपस्थित सभी चकित। बुद्ध ने सम्राट, सेनापति, सचिव, धनकुबेर सभी से प्रश्न किया आपको क्या चाहिए। सभी ने अपनी विविध प्रकार की माग-इच्छाए प्रकट की। यही प्रश्न उस गरीब (फटे कपडे पहने) व्यक्ति से किया—तुम्हे क्या चाहिए—मागो। उसने उत्तर दिया भगवन—मेरी एक ही चाह है कि मेरे मन मे कोई चाह पैदा न हो। बुद्ध ने कहा वेश-भूषा, खान-पान, रहन-सहन से कोई व्यक्ति सुखी नही होता! सुख तो उसके भीतर रहता है।

इसी तरह भगवान महावीर के जीवन पर कथा-कहानी सुनाई। सह-अस्तित्व के सदेशवाहक महावीर को बताया। अहिसा और अनेकान्त मे विश्वशाति निहित है। भगवान महावीर सत्य, अहिंसा, और ब्रह्मचर्य, तप और अपरिग्रह जैसे महान आदर्शों के प्रतीक थे। उनके दर्शन मे किसी पूर्वाग्रह अथवा हठवाद को स्थान नही। विचार मे अनेकान्त आचार मे अहिंसा, वाणी मे स्यादवाद तथा प्रत्येक आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व ही उनका दर्शन था! स्वामीजी सब बातो का दृष्टात देते हुए सुनाते।

स्वामीजी के 28 मार्च को अलवर से प्रस्थानित होने के कुछ समय बाद ही मुसलमानो का रमजान (नया वर्ष) पडने वाला था। स्वामीजी ने रोजे का विस्तार से महत्त्व बताया। यह महीना अन्य महीनो से उत्तम है। अल्लाह का फरमान है—'अस्सौमाली व अना अजजी विही' अर्थात् रोजा मेरे लिए है और मैं ही उसका बदला दूगा। रोजा अन्त साधना है, इसका बाहर से नही, अन्दर से, हृदय से सम्बन्ध है। पैगम्बर साहब का कहना है कि जिस व्यक्ति ने रोजा रख कर झूठ बोला, झूठ पर अमल करना न छोडा तो अल्लाह को इस बात की जरूरत नही कि उसने खाना-पीना छोड (वृत) रखा है। केवल खाना-पीना छोडना रोजा नही है। रोजा रखने का वास्तविक उद्देश्य कि मनुष्य प्रत्येक बुराई से, पाप से दूर रहे। यह महीना सब्र का महीना है' हमदर्दी करने का महीना है। इस महीने अल्लाह की रहमत, कृपा दृष्टि मिलती है, माफी मिलती है जहन्नम से, नरक की आग से मुक्ति मिलती है।

दूसरे दिन प्रात काल वहाँ से प्रस्थानित होकर 18 मील अवस्थित 'नारायणी' नामक स्थान पर पहुँचे। यहाँ की देवी का नाम नारायणी है। यहाँ प्रति वर्ष देवी का एक बहुत बडा मेला होता है—जिसकी पूजा के लिए राजस्थान के विभिन्न भागो से बहुत सख्यक श्रद्धालु नरनारी आते हैं। यहाँ से स्वामीजी ने अपने प्रेमी भक्तो को विदा किया तथा स्वय अकेले पैदल 16 मील का मार्गतिक्रमणक कर 'बसुवा' नामक स्टेशन पर पहुँचे। इसी स्टेशन से रेल मे सवार होकर जयपुर की यात्रा की। आगे के स्टेशन 'बाँदीकुई' एक भक्त खडे आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे भी आपके साथ ही गाडी मे चढ गये। तदनन्तर जयपुर पहुचकर उक्त सज्जन ने स्वामीजी से एक फोटो उतरवाने का आग्रह पूर्ण निवेदन किये अलवर निवासी प्रेमियो ने खास तौर पर इस सज्जन को स्वामीजी का एक फोटो उतरवाकर भेजने के लिए लिखा था इस लिए वह अडकर बैठ गया। अगत्या शिष्य मण्डली के सन्तोषार्थ अपनी इच्छा न होने पर भी उन्हे फोटो उतरवाना पडा व वही उनके परिव्राजक वेश का पहला चित्र है।

परिशिष्ट

प्रेरक पत्र

प्रो० राइट के कागजो मे एक पत्र : जिसे महाराज खेतडी ने स्वामी जी को ७ अप्रैल, १८९४ को खेतड़ी से भेजा था : इससे स्पष्ट है कि राजा अजीतसिंह जी स्वामीजी को प्रेरणादायक सत्परामर्श देते रहते थे।

मेरे प्रिय गुरु,

मुझे आपका पत्र दिनाक २८ फरवरी को प्राप्त हुआ, बहुत प्रसन्नता हुई। आपने मुझे अपरोक्ष रूप मे आपको एक से अधिक बार पत्र न लिखने के लिए दोषी ठहराया, निश्चय ही मुझे इस बात को मान लेना चाहिए, परन्तु इसके साथ मुझे यह कहने की अनुमति भी दें कि मैं आपको पत्र लिखने मे असमर्थ था क्योकि कुछ महीनों तक आपने शिकागो मे लम्बी अवधि तक रहने का निश्चय किया था। इसके बाद मैं अधिक समय तक बम्बई, द्वारिका, विरावल, गिरनार आदि की यात्राओं पर रहा और उसके बाद मैं रामपुर नवाब साहब के विवाह मे सम्मिलित होने के लिये चला गया। फिर भी, मैं सोचता हूँ कि मैं इसके लिए आपसे क्षमा प्रार्थी हूँ।

मैं सोचता हूँ कि जो स्वय बुद्धिमान हो उसे सलाह की आवश्यकता नही है, परन्तु मैं यह विश्वास के साथ कहता हूँ कि आपको अपने देश के लोगो के आक्षेपो चुगलियों से निराश नही होना चाहिए। ध्यान इस बात पर देना चाहिए कि क्रय-विक्रय वेलायाम् काचः काचः मणिर्मणिः (क्रय और विक्रय के समय यह बात सत्य प्रतीत होती है कि काच काच है, हीरा-हीरा है।) पश्चिम के सभ्य-नेक लोगों से सहायता लेकर अपनी मातृभूमि को बेहतर बनाने के अपने चिर संकल्पित विचार से यदि आपके जैसा व्यक्ति छोडने की बात करता है तो वह कभी भी इसे पूरा करने की कोशिश नहीं कर सकता। यद्यपि मैं हमेशा आपको अपने साथ रखना चाहता हू क्योंकि कौन जानता है कि कौन कितने दिन तक

जीवित रहे। परन्तु मुझे फिर भी स्वार्थी नही होना चाहिए और आपको यह कहता हू कि अपने प्यारे भारत के निर्धन और पददलित लोगो की स्थिति को श्रेष्ठ बनाने का प्रयत्न करते रहो जिससे ऐसी क्षमता वाले व्यक्ति पैदा हों जिन्हे वैसा ही आत्मा का ज्ञान प्राप्त हो जैसा कि पहले के लोगो को तब प्राप्त हुआ जब आजकल के भाप और विद्युत की मशीनो के आविष्कार का कही धुंधला-सा आभास भी नही था। वह युग वर्तमान पाश्चात्य सिद्धान्तो के आधार पर अधकार-मय युग समझा जाता है, जो ऐसा मानते हैं कि मानव समाज उन दिनो बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था मे था।

आपके दर्शनो की मेरी उत्कट इच्छा है इसलिये लिख रहा हू कि आप जल्दी वापिस आओ, परन्तु इसके साथ ही उसी समय कोई बात मेरी लेखनी को इसके विपरीत यह भी लिखने को विवश कर रही है कि आपको वही ठहरने को कहूँ कि जहाँ के लोग मनुष्यो मे हीरो के समान हैं।

स्वामी अखडानन्द जी आजकल यहाँ पर हैं उन्होने अलग से आपको पत्र लिखा है, जो इसके साथ सलग्न है। जगमोहन जयपुर मे है परन्तु मुझे विश्वास है कि वह यह सुनकर बहुत खुश होगा कि मैंने उसका आपको प्रणाम बिना उसकी प्रार्थना के लिख दिया है।

हमने अन्त मे उस शेर को पकड ही लिया है जो खेतडी मे घूमता-फिरता था और जिसने पचास भैसो को मार डाला था।

मेरे हार्दिक दण्डवत् सहित
आपका
अजीत सिंह

हावडा

राजाजी,

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आप और कुमार स्वस्थ हैं। जहा तक "मेरा सम्बन्ध है मेरा हृदय बहुत दुर्बल हो गया है। मेरे विचार मे स्थान परि-वर्तन से कोई लाभ न होगा क्योकि जहां तक मुझे याद है गत 14 वर्षों मे मैं 3 महीने से अधिक किसी भी स्थान पर लगातार नही रहा। इसके विपरीत यदि दैवयोग से मैं किसी एक स्थान पर महीनो तक रह सकू तो इससे कुछ लाभ होने की आशा करता हूं। मुझे इसकी चिन्ता नही है क्योकि मैं यह अनुभव करता हू कि इस जीवन मे मेरा कार्य पूरा हो चुका है। मेरी जीवन-नौका अच्छाई-बुराई और सुख-दुख के बीच से कठिनता से गुजरी है। इससे जो महान शिक्षा मैंने

ग्रहण की है वह यह है कि जीवन दु खमय है—दुख के अतिरिक्त और कुछ नहीं। जगदम्बा ही जानती है कि किसमे भला है। हममे से प्रत्येक ही कर्म के हाथो बधा है। यह कर्म स्वय प्रतिफलित होता है। इससे अन्य कोई उपाय नही है। जीवन मे एक ही वस्तु है जो किसी भी कीमत पर पाने योग्य है और वह है प्रेम। खूब घना एव अनन्त प्रेम—आकाश की भाति विशाल और समुद्र की भाति गहन। प्रेम ही जीवन की एक बहुत बडी उपलब्धि है। जो इसे पाता है वही धन्य है।

सदैव प्रभु-चरणो मे
विवेकानन्द

द्वारा ऋषीवर मुखर्जी चीफ जज
१७ सितम्बर, १८९८

राजा जी,

मैं यहां दो सप्ताह से अस्वस्थ हू। अब कुछ पहले से अच्छा हू। "मुझे धन की आवश्यकता है।" यद्यपि अमेरिकन मित्रगण मेरे लिए जो कुछ कर सकते हैं कर रहे हैं तब भी मुझे उनसे हमेशा मागते लज्जा का अनुभव होता है विशेषतया रोग के कारण कुछ अनिश्चित व्यय होता है। मुझे ससार मे एक व्यक्ति से मागने मे शर्म नहीं आती और वह आप ही हैं। आप दें या न दें मेरे लिए समान ही है। यदि सम्भव हो तो कृपया कुछ धन भेज दें। आपके क्या हाल हैं? मैं अक्टूबर के मध्य मे नीचे जा रहा हूं।

जगमोहन लाल से कुमार साहब के सम्पूर्णतया स्वस्थ होने की बात जानकर बहुत प्रसन्नता हुई। यहा मैं सकुशल हू और आपकी कुशलता की कामना करता हू।

सदैव आपका
विवेकानन्द

बेलूड मठ, जिला—हावडा, बगाल
२६ अक्टूबर ९८

राजाजी,

मैं आपके स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे अधिक चिन्तित हू। यहा लौटते समय रास्ते

मे आपसे मिलने की बहुत ही इच्छा थी किन्तु स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण मुझे शीघ्र ही लौटना पड़ा। मुझे सन्देह है कि मेरे हृदय मे कुछ विकार हैं।

जो भी हो, मैं आपके स्वास्थ्य के बारे मे जानने को बहुत ही उत्सुक हू। यदि आपकी इच्छा हो तो मैं आपसे मिलने खेतडी आ जाऊगा। मैं अहर्निश आपके कल्याण की प्रार्थना करता हूं। यदि कुछ आपत्ति आ जाय तो निरुत्साहित न हो। जगदम्बा आपकी रक्षक हैं। मुझे अपने सब समाचार लिखें, क्योकि आप जानते ही हैं कि मैं सदा आपके कल्याण के लिए अपना जीवन भी देने को तैयार हू। कुमार साहब का क्या समाचार है?

प्रेम और आशीर्वाद सहित,

आपका सदैव प्रभु के नाते
विवेकानन्द

वेलूड़ मठ
२२ नवम्बर, १८९८

राजाजी,

जगमोहनजी द्वारा प्राप्त आपके कृपा पत्र एवं निम्बार्क भाष्य के लिये बहुत धन्यवाद।

यह खूब जानते हुए कि मुझे आपके समक्ष अपने मन की बात कहने मे तनिक भी लज्जा का अनुभव नही होता है, मैं आपको इस जीवन मे अपना एक मात्र मित्र मानता हू आज मैं आपसे अपने एक आवश्यक कार्य के लिए निवेदन करता हू। यदि यह आपको उचित लगे तो ठीक, अन्यथा एक मित्र के नाते मेरी इस मूर्खता के लिये क्षमा करें।

आपको तो ज्ञात ही है कि जब से मैं लौटा हूं अस्वस्थ ही हू। कलकत्ता मे आपने अपनी मित्रता का, मुझे व्यक्तिगत सहायता देने का तथा इस असाध्य रोग के बारे मे चिन्ता न करने का आश्वासन दिया था। यह रोग स्नायविक उत्तेजना के कारण हुआ है और जब तक चिन्ता, उद्वेग और उत्तेजना से मैं मुक्त नही होऊंगा किसी भी प्रकार का परिवर्तन मुझे लाभप्रद नही होगा।

इन दो वर्षों मे भिन्न-भिन्न जलवायु मे रहने का प्रयोग करने पर भी मेरा स्वास्थ्य गिरता ही जा रहा है और अब तो मैं लगभग मृत्युद्वार पर ही खडा हूं। मैं आपके वचन उदारता एव मित्रता के नाते आपसे यह निवेदन

करता हू । एक पाप सदैव मेरे हृदय मे चुभता रहता है और वह यह है कि मैंने इस ससार मे एक सेवा नही की । मैंने अपनी मा की उपेक्षा की इसका मुझको महान खेद है । फिर जब से मेरा छोटा भाई बाहर गया है (महेन्द्रनाथ उस समय पढाई के लिये विदेश गये हुये थे) तब से वे भयकर रूप से विदीर्ण हो गई हैं । अब मेरी अन्तिम इच्छा यह है कि मैं कम-से-कम कुछ वर्षों के लिए तो अपनी मा की सेवा करू । मैं अपनी मा के साथ रहना चाहता हू और अपने परिवार को नष्ट होने से बचाने के लिये अपने छोटे भाई का विवाह करना चाहता हू । इससे निश्चय ही मेरे व मेरी माँ के अन्तिम दिन सरलता से व्यतीत होगे । अभी तो वे एक झोपडी मे रहती हैं मैं अपनी माँ के लिये एक छोटा-सा सुन्दर घर बनाना चाहता हू और अपने सबसे छोटे भाई के लिए कुछ व्यवस्था करना चाहता हू । मुझे उससे एक अच्छा उपार्जन करने वाले व्यक्ति होने की बहुत कम आशा है । क्या एक ऐसे व्यक्ति के लिये जिसे आप प्यार करते हैं व जिसे मित्र कह कर सम्बोधित करते हैं, ए र कार्य करना श्री रामचन्द्र के वशधर के लिये बहुत होगा? मैं नही जानता कि मैं और किससे यह बात कहू । यूरोप से मुझे जिस कार्य के लिए धन मिला था उस धन की पाई-पाई मैंने उस कार्य के लिए दे दी है और अपने लिए मैं दूसरो के आगे झोली भी नही फैला सकता हू । मैंने अपनी पारिवारिक समस्या केवल आपके सामने खोलकर रखी है । इसे और कोई न जानने पाये । मैं क्लान्त हृदयरोगी मृत्यु के समीप खडा आपसे निवेदन करता हू कि अपने महान और उदार स्वभाव के अनुसार यह अन्तिम महान कार्य सम्पन्न करने की कृपा करें । अभी तक किये गये असख्य उपकारो पर इस एक और उपकार द्वारा आप मेरे अन्तिम जीवन को सुसाध्य एव सरल बना देंगे । जिस प्रभु की मैंने अपने जीवन भर सेवा की है वे ही आप पर व आपके स्वजनो पर विशेष कृपा करें ।

सदैव आपका
विवेकानन्द

पुनश्चः-यह बिल्कुल व्यक्तिगत पत्र है । आप मुझे तार से सूचना दें कि यह कार्य आप कर सकेंगे कि नही ।

बेलूड मठ
हावडा
१-१२-९८

राजाजी,

आपका तार पाकर मुझे वर्णनातीत आनन्द हुआ। यह आपके उदार चरित्र के अनुकूल ही है। मैं जो चाहता हू उसे आपके सामने विस्तार से रखता हू। ।

"कलकत्ते मे छोटे से छोटा मकान बनाने का कम से-कम खर्च १०,०००/- रुपये है इतने रुपये से शहर के किसी कोने मे ४ या ५ व्यक्तियो के रहने योग्य एक छोटा मकान खरीदना या बनाना शायद ही सभव हो।"

आपके द्वारा मेरी मां को उदारतापूर्वक प्रेषित १००/- रुपये महीने की राशि उनके खर्च के लिये यथेष्ठ है। दुर्भाग्यवश मेरे इस रोग के कारण बढते हुए खर्चे के लिये भी यदि आप १००/- रुपये महीना और भेज दें तो मैं पूर्ण सुखी होऊगा। मुझे आशा है कि यह कष्ट मैं आपको अधिक दिन न दूगा क्योंकि मैं कुछ ही वर्ष और जीवित रह सकूंगा। मैं आपसे एक और निवेदन करूगा कि यदि सभव हो तो मेरी मा के लिए भेजे जाने वाले १००/- रुपए की राशि स्थायी कर दी जाय जिससे मेरी मृत्यु के उपरान्त भी मेरी मा यह राशि प्राप्त करती रहे और यदि किसी कारण आपके प्रेम और दया से मुझे वचित भी होना पड़े तो भी एक निर्धन साधु के प्रति कभी किये गये अपने प्रेम को याद कर मेरी वृद्धा निर्धन मा को आपसे यह धनराशि मिलती रहे।

कर्म की शक्ति स्वतः सिद्ध है ऐसा जानते हुए जहा इतने शुभ कार्य आपने किये हैं वहा एक यह छोटा-सा कार्य भी कर दीजिए। इस शुभ कर्म का फल तुम्हे सदा ही सपरिवार प्राप्त होता रहेगा। जहां तक मेरा प्रश्न है—मैं इससे अधिक क्या कहू कि मैं ससार मे जो कुछ भी कर सका हू वह सब लगभग आपकी ही सहायता से कर पाया हू। आपके कारण ही मेरे लिये यह सभव हो सका कि मैं, एक महान चिन्ता से मुक्त हुआ और ससार से सघर्ष करते हुये कुछ कार्य कर, सका। हो सकता है कि प्रभु ने तुम्हें मेरे मन से पुन यह भार उतारकर भविष्य मे होने वाले महान कार्यों का यत्र बनाने का निश्चय किया है।

आप इस कार्य को करें या न करें एक बार जिससे प्रेम कर लिया है वह सदा के लिए ही हो गया। अभी तक आपने जो मेरे लिए किया है मैं उसका ऋणी हू। मेरा प्रेम, आशीर्वाद एवं प्रार्थनाए आपके साथ रात-दिन हैं। 'जगदम्बा' जिसका

यह विश्व खेल है और जिसके हाथो में हम यन्त्र मात्र हैं, आपकी सदा रक्षा करें।

सदैव आपका
विवेकानन्द

आबू
३० अप्रैल १८९१

प्रिय गोविन्द सहाय

क्या तुम उस ब्राह्मण बालक का उपनयन संस्कार करा चुके हो ? क्या तुम सस्कृत का अध्ययन कर रहे हो ? कितनी प्रगति कर सके हो ? मैं सोचता हू कि तुम प्रथम भाग तो अवश्य ही समाप्त कर चुके होगे। —क्या तुम्हारी शिव पूजा भली प्रकार हो रही है ? यदि नही तो करने का प्रयत्न करो। प्रभु के साम्राज्य की पहले खोज करो। शेष सब तो स्वत: ही प्राप्त हो जायेंगी। प्रभु का अनुसरण करो। तुम्हारी सभी मनोकामनाए पूर्ण होगी।—दोनो कमाण्डर साहबो को मेरा आन्तरिक सम्मान प्रकट करना। उच्चपदाधिकारी होते हुए भी उन दोनो ने मुझ जैसे फकीर पर दया दिखाई। "वत्सगण, रहस्य मतवाद मे नही बल्कि साधना मे निहित है। सत् बनना तथा सत्कार्य करना इसी मे सम्पूर्ण धर्म निहित है। वह नहीं जो केवल 'प्रभु' 'प्रभु' की रट लगाता है, परन्तु वह जो परम-पिता की इच्छानुसार कार्य करता है।

"तुम लोग अलवर वासी जितने भी हो, सभी युवको का एक अच्छा गुट हो और मुझे आशा है कि निकटतम भविष्य में तुममे से ही बहुत से समाज के अलकार स्वरूप और मातृभूमि के लिये वरदान स्वरूप हो जायेंगे।"

आशीर्वादक
विवेकानन्द

पुनश्च: "यदि बीच-बीच मे संसार से तुम्हे थोडा बहुत धक्का भी खाना पड़े तो विचलित न होना। पलभर मे वह दूर हो जायेगा तथा सारी स्थिति पुन ठीक हो जायेगी।"

नामानुक्रमणिका

